डॉ. अपर्णा शर्मा

डॉ. (श्रीमती) अपर्णा शर्मा (ज. 1961) ने मेरठ विश्वविद्यालय, मेरठ से एम.फिल. की उपाधि 1984 में, तत्पश्चात् पी-एच.डी. की उपाधि 1991 में प्राप्त की। आप निरंतर लेखन कार्य में रत हैं। डॉ. शर्मा की एक शोध पुस्तक : भारतीय संवतों का इतिहास (1994), एक कहानी संग्रह : खो गया गाँव (2010), एक कविता संग्रह : जल धारा बहती रहे (2014), एक बाल उपन्यास : चतुर राजकुमार (2014), तीन बाल कविता संग्रह, एक बाल लोक कथा संग्रह आदि दस पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। साथ ही इनके शोध-पत्र, पुस्तक समीक्षाएँ, कविताएँ, कहानियाँ, लोक कथाएँ एवं समसामयिक विषयों पर लेख विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे हैं। आपकी बाल कविताओं, परिचर्चाओं एवं वार्ताओं का प्रसारण आकाशवाणी, इलाहाबाद एवं इलाहाबाद दूरदर्शन से हुआ है। साथ ही कवि सम्मेलनों व काव्यगोष्ठियों में भागेदारी बनी रही है।

"अक्सर महिलाओं द्वारा लिखित कथा लेखन को स्त्री कथा लेखन कहकर जैसे दोयम दर्ज़े का मान लिया जाता है। जबकि वस्तुस्थिति यह है कि महिला कथाकारों का लेखन किसी भी नज़रिये से पुरुष लेखन से कमतर नहीं है। अपर्णा शर्मा का कहानी संग्रह 'देहरी कैसे लांघूँ' से गुजरना इस सुखद एहसास से गुजरना है। इस संग्रह की कहानियाँ समसामयिक अनिवार्यताओं के बीच से उद्‌भूत हुई हैं एवं उन्हीं के साथ क्रमशः विकसित हुई हैं। संग्रह की कहानियों में समसायिक अनिवार्यताओं को एक ऐसा बड़ा फलक प्रदान किया गया है कि वैयक्तिक चेतना भी व्यापक सन्दर्भों और प्रश्नों से टकराती है। अपर्णा शर्मा मूलतः मध्य वर्ग कि चितेरी हैं लेकिन यह मध्यवगीय चेतना युगीन यथार्थ को चित्रित करने में कोई अवरोध पैदा नहीं करती। इन कहानियों में अनुभूति का रचाव गहनता लिए हुए है लेकिन यह गहनता कहीं भी दुर्बोध नहीं है। इन कहानियों से गुजरना अपने समकालीन जीवन से जैसे पुनः परिचित होना है।"

—प्रो. कुमार पंकज
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

"डॉ. अपर्णा शर्मा की कहानियाँ समाज में व्याप्त अपसंस्कृति, मूल्यहीनता और नैतिक पतन की न केवल पहचान कराती हैं, वरन वृहत्तर पाठक समाज के समक्ष समाधान भी प्रस्तुत करती हैं। इन कहानियों में मानव मन के अंतर्द्वंदों को सुना जा सकता है तथा भारतीय परंपरा एवं संस्कृति के अनेक उज्ज्वल पक्ष अपनी समग्रता में इनमें उपस्थित हैं। संवेदना और विचार पक्ष की दृष्टि से बेजोड़ होने से इन कहानियों में हृदय और बुद्धि का मणिकांचन संयोग है। अपर्णा शर्मा का सीधा और सरल शिल्प अमर कथाकार प्रेमचंद की बरबस याद दिलाता है।"

—डॉ. अखिलेश शंखधर
मणिपुर विश्वविद्यालय, इम्फाल

देहरी कैसे लांघूँ

डॉ. अपर्णा शर्मा

Kautilya

देहरी कैसे लांघूँ

डॉ. अपर्णा शर्मा

देहरी कैसे लांघूँ

देहरी कैसे लांघूँ

डॉ. अपर्णा शर्मा

ISBN : 978-93-87809-64-2

मूल्य : ₹ 199.00

पहला संस्करण : 2019

प्रकाशक एवं मुद्रक : कौटिल्य बुक्स
309, हरि सदन, 20, अंसारी रोड
दरियागंज, नई दिल्ली-110002
फोन : 011-47534346, +91 99115 54346

आवरण-चित्र : कौटिल्य स्टूडियो

Dehri Kaise Langhun
By Dr. Aparna Sharma

साश्रुधि श्रीमती राजबाला शर्मा

एवं

पूज्य प्रो. ब्रह्मदत्त शर्मा

के चरणों में

सादर समर्पित

डॉ. अपर्णा शर्मा की अन्य कृतियाँ

भारतीय संवतो का इतिहास	*(शोध ग्रंथ)*	**1994**
खो गया गाँव	*(कहानी संग्रह)*	**2010**
पढ़ो-बढ़ो	*(नवसाक्षरों के लिए)*	**2012**
सरोज ने सम्भाला घर	*(नवसाक्षरों के लिए)*	**2012**
जलधारा बहती रहे	*(कविता संग्रह)*	**2014**
चतुर राजकुमार	*(बाल उपन्यास)*	**2014**
विरासत में मिली कहानियाँ	*(कहानी संग्रह)*	**2014**
मैं किशोर हूँ	*(बाल कविता संग्रह)*	**2014**
नीड़ सभी का प्यारा है	*(बाल कविता संग्रह)*	**2014**
जागो बच्चो	*(बाल कविता संग्रह)*	**2014**

अनुक्रम

शुभेच्छा

कहानी मनुष्य के सुख-दुःख की अभिव्यक्ति का ही नहीं, उसकी आशाओं, आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति का भी एक बहुत ही आत्मीय और लोकप्रिय माध्यम रही है। मनुष्य के सुखों-दुखों का स्वरूप बदलता है तो उसकी आकांक्षाओं और उसके सपनों का स्वरूप भी बदलता है।

आज कहानी के आख्यान में प्रश्न केवल संवेदना का नहीं है, संवेदना को मूर्त रूप देने वाले तथ्यों का भी है। डॉ. अपर्णा शर्मा की कहानियों में लेखिका की दृष्टि वर्तमान समाज के विसंगतिपूर्ण तथ्यों की ओर रहते हुए, मानवीय संवेदना के उन धरातलों पर भी रहती है जहाँ संवेदनशीलता को सीधा मुकाबला समाज में व्याप रही संवेदनहीनता से करना अपेक्षित है।

अपर्णाजी के इस संग्रह ''देहरी कैसे लांघूँ'' की कहानियों में विषयगत और अनुभवगत वैविध्य है। इन अनुभवों का सम्बन्ध सिर्फ किसी एक पीढ़ीगत जीवन से नहीं है बल्कि अलग-अलग पीढ़ियां किस तरह की विडम्बनाओं और त्रास से आज जूझ रहीं हैं और किन परिस्थितियों में आज का व्यक्ति फंसा हुआ है—इन सब बातों को लेकर इन कहानियों की कथा वस्तु को बुना गया है।

इन कहानियों में जिस जीवन यथार्थ को लेखिका ने अपने अनुभवों का अंग बनते दिखाया है वह यथार्थ इकहरा नहीं है। समकालीन कहानी ने हमको यह तमीज दी है कि यथार्थ की इकहरी समझ हमारे काम की नहीं रह गई है। आज भूमंडलीकरण के दौर में हम यह भी देख रहे हैं कि जो वास्तविकताएँ पहले नितांत अलग-अलग करके देखी जा सकती थीं अब कई बार इतनी हमशक्ल बनकर आती हैं कि जुड़वां प्रतीत होने लगती हैं। पहले हम कहानियों को

ग्रामीण जीवन का यथार्थ, शहरी जीवन का यथार्थ या मध्य वर्गीय जीवन का यथार्थ, निम्न वर्गीय जीवन का यथार्थ वगैरह के अलग-अलग चौखटे सहजता से बना लिया करते थे। अब यह इतना आसान नहीं रह गया है और न ही अपेक्षित। डॉ. अपर्णा शर्मा की कहानियों को पढ़ते हुए यह तथ्य भी हमारे सामने उजागर हो जाता है।

इन कहानियों के केंद्र में जो पात्र या चरित्र हैं, न वे किसी एक वय विशेष के हैं, न किसी एक वर्ग विशेष के। परिवार के अपने परिसर से भी लेखिका अपने पात्र चुनती है और परिवार के दायरे के बाहर के समाज से भी लेखिका के पात्र अनुभवात्मक क्रिया-प्रतिक्रिया करते दीखते हैं।

आज जीने की प्रक्रिया में व्यक्ति को कभी-कभी वास्तविकता को जानते हुए भी उस पर भ्रम का पर्दा डालना होता है। इस संग्रह की पहली कहानी ही इस तथ्य को उद्घाटित करती प्रतीत होती है।

अपर्णाजी की कहानियों के पात्र केवल बाहर के ही द्वंदों से ही, बल्कि अंतर्द्वंदों से भी गुजरते हुए अपने जीने का मार्ग चुनते हैं।

ये कहानियां अपने शिल्प में कलात्मकता के नाम पर बहुत शिल्पगत प्रयोग नहीं करतीं, इसलिए जटिलता से बचते हुए पाठकों के लिए संप्रेष्य बनी रहती हैं।

आशा करता हूँ, हिंदी कहानी के वैशिष्ट्य और सामाजिक सरोकारों को सहज सम्प्रेषणीय रूप में पाने के रचनात्मक अवसर इन कहानियों के पाठकों को मिलेंगे।

शुभकामनाओं के साथ,

–प्रो. राजेंद्र कुमार
पूर्व आचार्य एवं विभागाध्यक्ष
हिंदी एवं अन्य आधुनिक भारतीय भाषा विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज–211002 (उ.प्र.)

भ्रम

''हॅलो...हॅलो...। कौन प्रतिमा?''

''जी, माँजी चरण स्पर्श।''

''सौभाग्यवती रहो। सब कैसे हैं?''

''जी सब ठीक हैं।''

''पप्पू, सोनी ठीक है?''

''जी ठीक हैं। स्कूल गए हैं।''

''रामचन्द्र कैसा है?''

''जी वे भी ठीक हैं।''

''बात कराओ।''

''वो माँजी अभी घर ढूंढ़ने निकल गए हैं। दो महीने से मकान मालिक ने बहुत आफत कर दी है। रोज घंटों घूमते हैं। कोई ठीक घर मिल ही नहीं रहा है।''

''अरे मूर्ख है। कितनी बार कहा है एक घर खरीद ले। नहीं तो जमीन लेकर बना ही ले। इसको समझ में कुछ नहीं आता। अभी आए तो मेरी बात करवाना।''

''जी ठीक है, माँजी चरण स्पर्श।''

''ठीक है, ठीक है, खुश रहो।''

अट्ठावन साल की पुनिया ने अट्ठारह की उम्र में नौकरी शुरू की थी। अब उसका शरीर सूख गया था, आँखे धंसने लगी थीं, थोड़ा ऊँचा भी सुनती थी। बहुतों ने समझाया रिटायरमेंट ले लो। पर पैसे का मोह बड़ी चीज है।

सेवानिवृत्ति तो दूर की बात, उसे तो उस नियम के आने का इंतजार था जिसमें अध्यापकों की सेवानिवृत्ति उम्र पैसठ साल होने वाली थी। उसने जबसे इस नियम के बारे में सुना था तब से पोता-पोती को हर फोन पर कहती-खूब मन लगाकर पढ़ो। मैं सारा खर्चा दूँगी।''

पुनिया सुबह शाम फोन का इंतजार करती रही। बेटे को फोन करने की फुर्सत चार दिन बाद मिली। पुनिया को बेटा मोबाइल तो खरीदकर दे गया था पर उसकी समस्या थी कि अभी खुद नम्बर मिलाकर बात करना नहीं आया था और किसी गैर के सामने घर के मसलों पर चर्चा करना उसे पसंद नहीं था। बेटे का फोन आता तो घर बाहर की ढेरों बातें कर लेती। मन हल्का हो जाता। यहाँ देहात में छोटा सा पुस्तैनी घर था और थी उसकी नौकरी। इन्हीं दो के लिए वह रह रही थी। रामचन्द्र उसका इकलौता बेटा था जो नौकरी की खातिर दूर जाकर बस गया था। पति का साया बहुत पहले ही उठ गया। पुनिया अकेली हो गई। अड़ौस-पड़ौस में कामचलाऊ बोल चाल भर थी। बाकी उसका एकमात्र सहारा स्कूल का चपरासी बंतू था। निहायत कंजूस होते हुए भी पुनिया लम्बे समय से न जाने किस ममता के वशीभूत बंतू की भूरपूर मदद करती थी। सबको आश्चर्य होता था। बंतू का पिता भी पुनिया के स्कूल में चपरासी था। अधिक दारू पीने से उसकी असमय मृत्यु हो गई। बंतू उस समय बारह साल का था। माँ बेटे असहाय हो गए। तब पुनिया ही उनका सहारा बनी। बंतू की माँ पुनिया के घर में काम करती और पुनिया उनके खाने पहनने का खर्च उठाती। फिर पुनिया की मदद से ही बंतू को यह नौकरी मिली। हालाँकि अब बंतू को पैसे का अभाव नहीं था। पर पुनिया का संरक्षण आज भी उसके लिए महत्त्व रखता था। बंतू की माँ अनपढ़ तो थी ही फिर बुढ़ापे ने उसे और असहाय बना दिया। उसका अधिकांश समय अब घर में कटता था। बंतू को जब भी कोई समस्या होती वह पुनिया के पास दौड़ता। वह पुनिया की सलाह के बगैर कोई निर्णय नहीं ले सकता था। नौकरी के बाद अब बंतू को घर बनाने और घर बसाने की चिंता थी। पुनिया भी उसके लिए काफी फिक्रमंद थी। वह घर के लिए बंतू को आर्थिक मदद कर रही थी और साथ ही ऐसी लड़की की तलाश में थी जो बंतू से अच्छे से निभा सके व उसके सम्पर्क में भी बनी रही।

समय यूँ ही कट रहा था। पुनिया की पगार अब उसकी उम्मीद से कई गुना अधिक थी। उसकी बचत, सेवानिवृत्ति के बाद मिलने वाला पैसा लाखों में था। यहाँ तक की जर्जर पुराना यह खानदानी मकान, इसकी भी कीमत अब

लोग लाखों में आँक रहे थे। पुनिया को लगता आज उसके पास इतना पैसा है कि वह अपने परिवार के लिए हर खुशी खरीद सकती है। इसी विचार ने उसे विगत तीन साल से बेचैन कर दिया था। बेटे के हर फोन पर वह उससे एक ही बात कहती कि वह एक अच्छा सा मकान खरीद ले। जितना भी लगेगा मैं दूँगी। जब से बंतू का नदी किनारे की बस्ती में दो कमरे का पक्का मकान बन गया था तब से पुनिया की बेचौनी और बढ़ गई थी। उसे लगता कि जब उसकी सलाह और सहायता से बंतू का घर बन गया है तब उसके अपने बेटे का क्यों नहीं? बंतू को पुनिया ने जो आर्थिक मदद दी थी वह भले ही बंतू के लिए बहुत बड़ी बात हो पर पुनिया के लिए तो मामूली सी रकम ही थी। जिसे उसने इस भाव से दे दिया था कि कभी खाता कमाता लौटा देगा और यदि न भी लौटाए तो मुझे कोई खास फर्क न पड़ेगा। कम से कम इस बहाने बंतू का आना जाना बना रहेगा। जिंदगी में एक गरीब की मदद हो गई। पुनिया जब ऐसा सोचती तो उसका हौसला और बढ़ जाता उसे लगता कि अपने बेटे के लिए तो वह इससे बहुत अधिक कर सकती है। तब भला वह किराए के घरों में मारा-मारा क्यों फिरता है। कितनी बार कहा है एक अच्छा सा घर खरीद ले। सुनता ही नहीं। पिछली बार गई थी तो दो तीन घर पसंद कर आई थी। उस समय तो रामचन्द्र ने खूब हाँ में हाँ मिलाई और बाद में सब भूल गया। पुनिया अपने आप से ही बातें करती हुई कहती—''इस बार जाऊँ तो घर खरीदवाकर ही लौटूं। बहुत हो गया भटकाना।''

कड़क ठण्ड का समय था। तराई क्षेत्र में इसका एहसास पहाड़ों से भी अधिक होता है। हफ्तों सूर्यदेव के दर्शन मुश्किल हो जाते हैं। घने कोहरे में वाहन चलते नहीं रेंगते हैं। घर से बाहर निकले नहीं कि हवा कपड़ों की पर्तों को पार कर सीधी बदन में चुभती है। इसी कारण स्कूल कालेजों का शीतकालीन अवकाश भी अच्छा खासा होता है। छुट्टियाँ शुरू हुई तो पुनिया बेटे के पास चली गई। पहुँचकर उसने पहले ही दिन एलान कर दिया कि वह घर खरीदवाने ही आई है।

पुनिया जब जिद्द पर अड़ती तो रामचन्द्र उसे अपने मिलने वालों के यहाँ ले जाता। उनके निजी या किराए के मकानों को पुनिया देखती। किसी को पसंद और किसी को नापसंद करती। कुछ बिकाऊ मकानों को भी देखा। पुनिया को जो पसंद आए उन्हें खरीदना रामचन्द्र के वश की बात नहीं थी। वह पुनिया की जमा पूँजी और अपनी हैसियत को अच्छी तरह जानता था। जमीन मकान की खरीददारी

घंटों या दिनों में नहीं की जाती है उसमें महीनों और सालों लग जाते हैं। पुनिया को मुश्किल से एक माह रुकना था। रामचन्द्र अपनी असमर्थता उजागर कर माँ को दुःखी करना नहीं चाहता था। वह पुनिया का मन रखने को कह देता—''आप पसंद कर लो। जो भी अच्छा लगेगा उसी की बात कर लेंगे।'' एक महीना बीत गया पुनिया अपनी ड्यूटी पर लौट आई। मकान का मामला अटका ही रहा।

पुनिया की उम्र और शारीरिक कमजोरी बढ़ने के साथ-साथ उसकी बेटे, पोतों के प्रति चिंताएँ भी बढ़ रही थी। हर बार फोन पर बात करते हुए वह बेटे-बहू से घर खरीद लेने का आग्रह करती। माँ की अधीरता ने रामचन्द्र को मकान खरीदने के निर्णय तक पहुँचा दिया। उसने पैतृक घर, माँ के पैसे और अपनी जमा पूँजी का हिसाब लगाया। इसमें वह या तो जमीन खरीद सकता था या किसी अनधिकृत बस्ती में कोई छोटा घर। बहुत कोशिश के बाद रामचन्द्र ने नाले के किनारे बसी एक घनी बस्ती में एक घर खोज लिया। मकान अधिक पुराना नहीं था। मकान मालिक किसी कारणवश मकान बेचकर किसी दूसरे शहर में जाना चाहता था। तीन मंजिलों में रामचन्द्र को बीच की मंजिल लेना तय हुआ। रामचन्द्र ने माँ को खुशखबरी दी—''माँ एक घर मिल गया है। मैं जल्दी ही ले लूँगा। तुम पैसे का हिसाब लगा लेना।''

अगले ही दिन पुनिया ने कॉपी, पेंसिल लेकर हिसाब लगाना शुरू कर दिया। उसने स्कूल के क्लर्क को भी अपने फंड आदि का हिसाब लगाने को कहा। उसने अपने गहनों आदि का भी हिसाब लगाया। यदि जरूरत पड़ी तो दे देगी। वैसे ईश्वर ने चाहा तो इतने से ही काम बन जाएगा।

एक दिन रामचन्द्र आया और पैसा लेकर अगले ही दिन लौट गया। पुनिया की स्कूल में व्यस्तता थी। वह उसके साथ न जा सकी। खुशी व व्यस्तता में वह यह भी पूंछना भूल गई कि रामचन्द्र ने उसके देखे घरों में से कौन सा लिया है।

''रामचन्द्र का शहर में अपना मकान हो गया है।'' पुनिया चहक कर सबको बताती। जैसे ही छुट्टियाँ शुरू हुई पुनिया ने शहर का टिकट कटवाया और बेटे के पास जा पहुँची। स्टेशन से घर तक वह रामचन्द्र से घर के बारे में सैकड़ों सवाल करती रही और रामचन्द्र उसे हाँ हूँ कहकर टालता रहा। पुनिया घर पहुँची। बहू उसका स्वागत करने को घर के बाहर ही खड़ी थी। बच्चे घर के सामने खेल रहे थे। पुनिया आनंद से भर गई। घर देख कर उसकी आँखे चमकने लगी। यह तो उससे भी बढ़कर था जैसा घर वह अपने बेटे को दिलवाना चाहती थी। उसकी जीवन भर की मेहनत सार्थक हो गई। बेटा वास्तव में उतना

नासमझ नहीं था जैसा वह समझती थी। पुनिया ने बेटे बहू के सिर पर हाथ रखकर ढेरों आसीस दिए। बच्चों को जी भरकर पुचकारा। फिर वह सुस्ताने के लिए कुर्सी पर बैठ गई। कुछ देर बाद बहू बोली—''आओ माँजी, अन्दर चलें।''

पुनिया उठी और बहू के साथ चल पड़ी। बहू उसका हाथ पकड़े सीढ़ियाँ चढ़ने लगी। पुनिया को लगा बहू पूरा घर घुमाना चाहती है। अतः थकी होकर भी उसने विरोध न किया और हाथ टेकती हुई सीढ़ियाँ चढ़ने लगी। घर खोलकर बहू ने पुनिया को पलंग पर बैठा दिया। पुनिया की आव-भगत होने लगी। ढेरों बातें, हँसना बोलना। खाना खाते निबटते तक पुनिया बुरी तरह थक गई। वह वहीं पलंग पर पैर फैलाकर लेट गई।

अगले दिन पुनिया देर से उठी। वह भी थकी-थकी सी। बहू ने तब तक सारा काम निबटा लिया। पुनिया भी नित्य क्रिया से निवृत्त हुई। खा पी कर खूब बातें कीं। शाम को बहू काम से लगी और बालक खेलने निकल गए। पुनिया बालकनी में बैठी खेलते बालकों को देखती रही। आस-पास दुमंजले, तिमंजले सुन्दर रंगे पुते घर, साफ गली और दूर तक दिखती सड़क पुनिया को खूब भाया। वह बुदबुदाती हुई बेटे को आशीर्वाद देने लगी। तभी उसे ख्याल आया—'नीचे घर में कौन रह रहा है?' इसी के मिनट भर बाद वह अपनी नासमझी पर खुद को धिक्कारती सी बुद-बुदाई—''अरे शहर में तो एक-एक घर में चार-चार परिवार रहते ही हैं। यहाँ भी किराएदार होंगे।'' फिर उसे ऊपरी मंजिल का ख्याल आया 'वहाँ भी किराएदार होगा।' सोचकर पुनिया संतुष्ट हो गई।

कुछ दिन में पुनिया को एहसास हुआ घर के पीछे बड़ा गंदा नाला है। सुबह तेज दुर्गंध उठती है। अगर उधर के खिड़की दरवाजे बंद न रखे जाय तो साँस लेना मुश्किल हो जाय। मौका मिलते ही उसने रामचन्द्र को डपटा—''नाले किराने घर क्यों लिया। इतना नहीं जानते सुबह ताजी हवा घर में आनी चाहिए। यहाँ तो साँस लेना दूभर है।''

रामचन्द्र ने हँसकर बेटे से कहा—''जा दादी को पार्क में घुमा ला। ताजी हवा मिल जाएगी।'' पोता दादी का हाथ पकड़कर सडक पार ले गया। कुछ दूर पर पार्क था। पुनिया काफी देर तक वहाँ टहलती रही। लौटते में मन्दिर दर्शन भी हो गया।

पुनिया नित्य नियम से सुबह पाँच बजे उठती, नहाती और कपड़े बालकनी में लटका देती। फिर घंटा भर हरी भजन। नीचे के मंजिल वाले एतराज करते। बहू कपड़े ऊपर समेट लेती। पुनिया के कपड़े मुस जाते। वह झुंझलाती। बहू

छुट्टी के दिन ढेरों कपड़े धोती। बालकनी में एक के ऊपर एक फैला देती। पुनिया उसकी नासमझी पर तरस खाती—''अरी इन्हें एक-एक कर फैला।''

बहू—''कपड़े ज्यादा हैं माँजी।''

पुनिया—''तो छत पर फैला।''

बहू जवाब न देती। पुनिया को लगता आलसन है। एक दिन का काम चार दिन फैला रहे बस।

एक सुबह पुनिया बालकनी में कपड़े फैला रही थी। नीचे से आवाज आई—''माँजी इन्हें ऊपर ही रखो। पानी टपकता है।''

पुनिया—''तो क्या थोड़ी देर में सूख जाएँगे।'' तभी रामचन्द्र ने आकर माँ के कपड़े ऊपर समेट लिए। पुनिया ने उसे नाराजगी से देखा। रामचन्द्र ने आहिस्ता से समझाया—''नीचे बैठकर वे लोग चाय पीते और बात करते हैं। ऊपर से पानी टपकेगा तो खराब लगेगा। तुम यहीं तार पर अपने कपड़े फैला लिया करो।''

पुनिया बड़बड़ाती कमरे में आ गई—''किराएदार का इतना रौब सहना अच्छा नहीं है।''

पोता हँसता हुआ बोला—''दादी वे भी मकान मालिक हैं हमारे जैसे।''

पुनिया ने उसे डपटा—''चल चुप कर। सुबह-सुबह दूसरे को मालिक बनाने चला।'' बहू कुछ कहना चाहती थी पर रामचन्द्र ने मुँह पर उँगली रखकर उसे चुप रहने का इशारा कर दिया। पुनिया कुछ देर में शांत हो गई।

बच्चे घर के सामने खेलते। जरा शोर होता तो नीचे वाले खिड़की से झाँक कर मना कर देते। साइकिल, स्कूटर फौरन हटवा देते। पुनिया को बुरा लगता। पुनिया बहू पर बिगड़ती—''कैसे को घर दे दिया है? हर समय दादागिरी दिखाते हैं। तुम कुछ बोलती क्यों नहीं?''

बहू धीरे से जवाब देती—''पड़ौस में निभाना पड़ता है माँजी।''

पुनिया देर तक देहाती भाषा में बड़बड़ाती रहती। बहू को आधी बात समझ में न आती। बाकी वह अनसुना कर देती।

रामचन्द्र के छोटे बेटे को प्यार से सब छुटकू कहते थे। थोड़ा जिद्दी था। अब महीने भर दादी के दुलार ने उसे और मनमौजी बना दिया था। एक सुबह बहू उसे पढ़ने को कह रही थी। वह खेलने की जिद्द कर रहा था। पुनिया ने समझौता करवाते हुए कहा—''सुबह से पढ़ तो लिया है बहू। कुछ देर खेलने दे। फिर पढ़ लेगा।''

सहारा पाते ही छुटकू नीचे भागा। पुनिया पलंग पर अधलेटी-सी बैठ गई। थोड़ी देर में उसे झपकी आ गई। अचानक छुटकू के रोने से वह जागी। छुटकू

रोता हुआ कह रहा था—''नीचे वाली आण्टी ने मेरे सारे दोस्तों को डाँट कर भगा दिया और मुझसे भी कह रही थी शाम पाँच बजे से पहले खेलने मत आना।''

पुनिया उठ बैठी। गुस्से में बोली—''बालक अपने घर के सामने खेल भी न सके। यह क्या बात।'' वह उठकर बालकनी की ओर चली। बहू समझ गई आज ये नीचे वालों को जरूर भला बुरा कहेंगी। उसने बढ़कर पुनिया को रोक लिया और बोली—''माँजी जरा सी बात के पीछे पड़ौस में झगड़ा ठीक नहीं है। सुख दुःख में पड़ौसी ही काम आते हैं।''

पुनिया को बात समझ में आ गई—''ठीक ही कहती है। मैं तो चार छः दिन में चली जाऊँगी। इन्हें तो हमेशा रहना है। बैर करने से क्या फायदा। पर बालक खेलने को मचल रहा है। उसके लिए कुछ तो उपाय सोचना चाहिए।'' वह छुटकू का हाथ पकड़कर चुपचाप छत की ओर चली। छुटकू बूझता ही रहा—''दादी ऊपर क्यों ले जा रही हो?''

पुनिया सीढ़ियाँ चढ़ती हुई बोली—''चल तू मैं छत पर खेलेंगे।''

जब तक छुटकू उसे बताता छत पर नहीं खेल सकते। तब तक पुनिया छत के दरवाजे पर पहुँच गई। वहाँ ताला लगा था। पुनिया बोली—''यहाँ तो ताला है। जा अपनी माँ से चाबी ले आ।''

छुटकू बोला—''चाबी हमारे यहाँ नहीं है दादी। छत की चाबी तो ऊपर की मंजिल वाली आण्टी के पास रहती है।''

अब पुनिया के लिए बर्दास्त के बाहर हो गया। वह सीढ़ियाँ उतरकर नीचे आई। इत्तेफाक से रामचन्द्र उसके सामने पड़ गया। पुनिया उसे डपटते हुए बोली—''तेरे घर में तू मकान मालिक है या तेरे किराएदार। एक बालकों को नीचे नहीं खेलने देती और दूसरी छत पर ताला लटकाए है।''

रामचन्द्र चुप रहा। बहू बोली—''माँजी हम न मकान मालिक हैं न किरायेदार। हमारा तो बस इतना ही घर है जिसमें हम रह रहे हैं।''

पुनिया ने प्रश्नसूचक दृष्टि से रामचन्द्र को देखा। वह चुप खड़ा रहा। पुनिया फिर गरजी—''बोलता क्यों नहीं? तूने घर खरीदा है या किराए में लिया है?''

इसके पहले कि रामचन्द्र कोई जवाब देता छुटकू बोल पड़ा—''खरीदा है दादी। मैं इन्हें पहले ही कह रहा था आँगन वाला घर खरीदो। मैं अपने आँगन में खेल लिया करूँगा। इन्होंने मेरी बात नहीं मानी।''

बहू ने छुटकू को डांटा—''चुप कर, बड़ों के बीच में बच्चे नहीं बोलते।''

इसी बीच मौका पाकर रामचन्द्र वहाँ से खिसक गया। वह गली पार कर अपने दोस्त के घर चल पड़ा। उसके मन में ढेरों विचार आ जा रहे थे। वह

माँ को कैसे संतुष्ट करे। उसे अपनी सही हालत बताए तो कैसे? माँ तो यही समझती है कि उसने मुझे जो पैसा दिया है और मेरे वेतन की बचत एक बड़ी रकम है। मुझे उससे एक बड़ी कोठी खरीद लेनी चाहिए थी। पर असलियत तो यह है कि यह फ्लैट लेने में भी कर्ज में दब गया हूँ। वह यह कहाँ जानती है कि जिस हिसाब से उसका वेतन बढ़ा है उससे कई गुना तेजी से पैसे की कीमत गिरी है। अब माँ से यह सब कहने बैठे तो वह तो यही कहेगी कि मैंने गाँव का घर क्यों न बेक दिया या उसके गहने क्यों न ले लिए। पर मुझमें इतना साहस नहीं है कि मैं उन गहनों को बेक दूँ जिन्हें माँ ने तंगी के दिनों में भी अपने से अलग न होने दिया था या जीते जी माँ को उसके पुरखों के दिए घर से निकाल कर बेघर कर सकूँ। इसीलिए दस बार सोच-विचार कर ही यह फ्लैट खरीदा है। न हो खेल की जगह न सही। कहने को घर तो अपना है। हर दो चार साल पर कोई यह तो न कहेगा—''हमारा घर खाली करो।'' रामचन्द्र विचारों को मथता कदम दर कदम आगे बढ़ता रहा। दो चार घंटे अभी उसमें घर लौटकर माँ का सामना करने का साहस नहीं था।

उधर पुनिया बहू से उलझ रही थी—''यह रामचन्द्र तो सदा मुझे बहकाता ही रहा। बहू आज तुम मुझे पूरी बात साफ-साफ बताओ। सच क्या है?''

बहू धीरे से बोली—''सच यही है माँजी। हमने इस घर की यही एक मंजिल खरीदी है। निचली मंजिल नीचे वालों की और ऊपर की मंजिल ऊपर वालों की है। इस शहर में भी अब घर बड़े शहरों जैसे बिकने लगे हैं। पूरा घर खरीदने के बहुत पैसे लगते हैं।''

पुनिया बोली—''यह कैसा घर हुआ? न जमीन अपनी न छत। बालक जाय तो जाय कहाँ।''

कुछ देर में बहू अपने काम में लग गई और पुनिया चुपचाप आँखें बंद कर लेट गई।

चार छः दिन बाद पुनिया अपनी नौकरी पर लौट गई। घर से स्टेशन आते और शहर छोड़ते पुनिया उससे कई गुना दुःखी थी जितनी आते समय आनंदित थी। सब कुछ जानने के बाद अब वह रामचन्द्र को दोष नहीं दे सकती थी। उसके बेटे के घर की समस्या ज्यौं की त्यौं थी। गाड़ी चली। रामचन्द्र ने हाथ जोड़ दिए। पुनिया ने दोनों हाथ उठाकर बेटे को आशीर्वाद दिया। दोनों अपने-अपने रास्ते चले गए।

ग्लानि

दीपाजी दुःखी थीं, बहुत दुःखी थी। रात दिन ग्लानि से भरी रहती। कॉलेज के सभी सहयोगी और शैक्षिक प्रशासन के भी बहुत से लोग अब उनके दुःख को समझने लगे थे। उनके मायूस चेहरे के बारे में वे कोई सवाल नहीं करते थे। सीधे हमदर्दी पर उतर आते थे। दीपाजी के दुःख की जड़ कॉलेज प्रशासन के एक निर्णय में निहित थी। कॉलेज ने केंद्रीय विभाग के साथ न रहकर राज्य के साथ रहने का फैसला लिया था और दीपाजी ने कॉलेज प्रशासन के विपरीत अपनी सहमति केन्द्र के साथ दर्ज करा दी थी। स्टॉफ के लोग खुश थे क्योंकि वे कॉलेज प्रशासन से सहमति बनाकर चल रहे थे। कॉलेज उनकी हजार गलतियों को माफ कर देता था पर इनके लिए सौ अडंगे थे। कॉलेज में इनके लिए पहले जैसा माहौल नहीं रह गया था। पहले जहाँ सहकर्मी इनका हँसकर स्वागत करते थे। बच्चों व घर परिवार का हालचाल लेते थे वहीं अब कन्नी काटने लगे थे। सामने पड़ने पर हाय-हैलो होती और शीघ्र ही इनकी स्थिति पर चर्चा होने लगती। बातें जल्दी ही ऊबाऊ हो जाती। अधिकांश तो इन्हें दूर से ही तिरछी निगाहों से देखते हुए आपस में बतियाते। इन्हें इस सभी में कटाक्ष की बू आती। अतः जितनी जल्दी हो सके ये घर लौटने का प्रयास करतीं। परन्तु दीपाजी को घर आकर भी चैन न मिलता। मन सदैव दुःखी बना रहता। कॉलेज में इनके लिए कार्य लगभग समाप्त कर दिया गया था। स्वेच्छा से एक सत्र क्लास पढ़ाती भी रहीं परन्तु प्रधानाचार्य ने उपस्थिति रजिस्टर में हस्ताक्षर ही नहीं करने दिए। ऐसे में वे क्या करतीं?

वैसे दीपाजी नितांत अकेली नहीं थीं उनके जैसी स्थिति में पाँच और लोग थे। बस गनीमत यह रही कि कॉलेज प्रशासन सौ अडंगे लगाकर भी उनका

वेतन नहीं रोक पाया। वेतन सभी को प्रतिमाह सही समय से मिल जाता था। सब वेतन लेते और मौज करते। उन्होंने विद्यालय आना ही छोड़ दिया था। विद्यालय जाना तो दीपाजी ने भी लगभग छोड़ ही दिया था। परन्तु ग्लानि इनका पीछा नहीं छोड़ रही थी। मुफ्त का वेतन लेना दीपाजी को कतई अच्छा नहीं लगता था। हाँ यह बात अलग थी कि वे पहली तारीख को ही बाबू को फोन कर अपने वेतन लेने की तारीख और समय सुनिश्चित कर लेती थी।

प्रशासन में कुछ तबादले हुए और कॉलेज शैक्षिक प्रशासन में एक नए ऑफिसर आए। सीधा सरल स्वभाव और समाज को समर्पित जीवन। बेचारी दुःखी दीपाजी अपना वेतन लेने माह की दूसरी तारीख को पहुँच गई। अपनी करुण कथा नए ऑफिसर को भी सुना दी। विगत वर्षों में यह दीपाजी का स्वभाव ही बन गया था। इसी से अड़ौस-पड़ौस व काफी रिश्तेदार भी उनकी स्थिति जान गए थे। वे ऊपरी मन से इनके दुःख में भागीदारी करते हुए भी मन में ईर्ष्या रखने लगे थे।

दीपाजी ने जब अपना दर्द नए ऑफिसर के सामने सुनाया तो वे द्रवित हो गए और एक सुझाव दीपाजी को दे बैठे। समझाते हुए बोले—''आप कुछ समाज सेवा का कार्य कर दीजिए। हमारी संस्था द्वारा एक विद्यालय असहायों की सेवार्थ बगैर किसी शुल्क के चलाया जाता है। आप सप्ताह में चार दिन वहाँ दो-दो घंटे अध्यापन कर दें। बेचारे गरीबों का भला हो जायगा। साथ ही आपको भी आत्मिक सुख मिलेगा। बिना कार्य चार वर्ष से वेतन पाने का आपकी आत्मा पर बन रहा बोझ कुछ हल्का हो जायगा।''

दीपाजी का उदासी से लटका चेहरा रोष और आत्म-सम्मान से भर गया। वे वेतन में पाई मोटी गड्डी को पर्स में सम्भाल कर रखते हुए सोफे से खड़ी हो गई और बोली—''सर अब हम इतना भी गलत नहीं कर रहे हैं। देखिए पैसे के लिए हर जगह क्या-क्या नहीं हो रहा है? आखिर तो हम सब कुछ अपने बच्चों के लिए ही कर रहे हैं। उन्हीं को घर छोड़कर समाज सेवा के नाम पर जहाँ तहाँ घूमते फिरे तो क्या फायदा?''

इतना कहकर दीपाजी ने दरवाजे से बाहर निकलते हुए सर को दोनों हाथ जोड़ दिए। घर पर बच्चे उनका इंतजार कर रहे थे। सर के प्रत्युत्तर की न उन्हें आवश्यकता थी न ही सुनने का समय।

अरी दादी

बारात चलने वाली थी। मेहमान तैयार होकर धीरे-धीरे बाहर इकट्ठे हो रहे थे। बिट्टू को भी महँगा सूट पहनाकर सजा दिया गया। वह पिछले दो दिनों से बुआ, नानी का हाथ पकड़े घूम रहा था। उसकी माँ मीना भाई की शादी में व्यस्त थी। उसे बिट्टू की सुध लेने की फुर्सत नहीं थी। घर की महिलाएँ एक से बढ़कर एक सजने सँवरने में लगी थी। बारात चलने के कुछ घंटे पहले बुआ, नानी भी व्यस्त हो गई। उन्हें थोड़ा मेकअप कराना और साड़ी सेट करानी थी। उन्होंने बिट्टू को नौकर के हवाले कर दिया। इस समय नौकर को भी सैकड़ों काम थे उसने बिट्टू को बाई के सुपुर्द कर दिया। बाई को बारात जाने के लिये तैयार होना था। साथ ही बीच-बीच में उसे काम के लिये आवाज लग जाती थी। इस समय बिट्टू को सम्भालना उसके लिये मुमकिन नहीं था। वह गलियारे में बिट्टू को छोटे साहब के हवाले करने आई। परन्तु छोटे साहब यह कहते हुए आगे बढ़ गए कि मुझे बहुत काम है। बाई ने यह सुना नहीं। उसने बिट्टू को उसके चाचा की ओर चलता कर दिया और घर में आकर बरात जाने की तैयारी में लग गई।

बिट्टू कुछ देर भौचक्का सा लाइट, डी.जे. और आगंतुकों को देखता रहा। तभी उसकी नजर एक छोटे से कुत्ते पर पड़ी। वह उसके साथ खेलने लगा। वह कभी पिल्ले की पूँछ पकड़ कर खींचता तो कभी कान। पिल्ला हल्का सा गुर्राता। बिट्टू उसे छोड़ देता। पिल्ला थोड़ी दूर हट जाता। बिट्टू उसे अपने पास आने का इशारा करता हुआ बोलता—''डॉगी आओ, डॉगी आओ।'' पिल्ला फिर उसके पास आ जाता और अपनी छोटी पतली दुम तेजी से हिलाने लगता। कभी-कभी बिट्टू के हाथ से मार खाकर भी पिल्ला उसके पास ही रहता। बिट्टू ने अपने हाथ का बिस्कुट उसे खिला दिया था। यही लालच उसे बिट्टू के पास

से हटने नहीं दे रहा था। वह अपने कान छुड़ाने को हल्की सी कै-कै की आवाज करता। बिट्टू जोर से हंस पड़ता। बिट्टू देर तक डॉगी के साथ खेलता रहा।

बारात पूरी तरह सजधज कर मुख्य सड़क की ओर बढ़ने लगी। 'मुन्नी बदनाम हुई' के बाद 'चिकनी चमेली' की कान फोड़ देने वाली आवाज पर लोग थिरक रहे थे, झूम रहे थे। कुछ ने रंग जमाने के ख्याल से पैग भी लगाये थे।

महिला हों या पुरुष सभी वीडियो कैमरे के सामने अपने महंगे कपड़ों, चमचमाती आर्टिफिशल ज्वैलरी, मेकअप और डांस को प्रदर्शित करने की होड़ में थे। वे एक दूसरे को धकिया रहे थे। बिट्टू की छः वर्षीया बहन सोनी भी बड़ों के बीच जगह बनाते हुए डांस पार्टी में पहुँच गई। वह टी.वी. शो में सिखाए स्टैप्स पर डांस कर रही थी। बड़ों के डांस में उसके हिसाब से ढेरों कमियाँ थीं। वीडियो कैमरा कुछ देर के लिये सोनी की ओर मुड़ गया। बड़े भी उसके डांस की तारीफ कर रहे थे। उसके ऊपर नोट लगाये जा रहे थे। सोनी अपनी पूरी तन्मयता से नाच रही थी। गाना खत्म हुआ और म्यूजिक की आवाज कम हुई तो सोनी के कानों में किसी के रोने की आवाज आई।

बारात आगे बढ़ी और सोनी पीछे दौड़ी। वह महिलाओं के पास आकर नानी, बुआ की खोज करने लगी। दो-तीन आंटियों के हाथ को जोर से झकझोर कर उसने चिल्लाती सी आवाज में नानी, बुआ के बारे में पूंछा। मुश्किल से वह उन तक पहुँच पाई। उसने उनके साड़ी के पल्लू को जोर से खींचा। वे नीचे झुकी तो सोनी ने उनके काम के पास मुँह ले जाकर तेज आवाज में बिट्टू के विषय में बुझा। उन्होंने हाथ के इशारे से और बोलकर बताया कि वे उसके बारे में नहीं जानती। उन्होंने तो उसे नौकर के सुपुर्द कर दिया था।

इतनी भीड़ में सोनी नौकर को कहाँ ढूँढ़ती? वह भीड़ में इधर-उधर दौड़ती हुई कभी मौसी, कभी नानी तो कभी बुआ से बिट्टू और नौकर के विषय में बूझने लगी। कोई भी उसे सही जवाब नहीं दे रहा था। एक आण्टी ने सोनी को डांट भी दिया—''अरे तू इतनी फिक्रमंद क्यों हो रही है वह आगे बारात में किसी के पास होगा।'' सोनी कुछ देर शांत रहकर फिर बिट्टू को खोजने लगी। तभी उसे गली से बच्चे के रोने की आवाज महसूस हुई। इस बार उसने किसी से कुछ भी न कहा। सीधे घर की ओर दौड़ने लगी। सोनी पीछे अँधेरे की ओर भाग रही थी और बारात तेज रौशनी और म्यूजिक के साथ आगे बढ़ रही थी।

बारात विवाह मण्डप में पहुँच गई। मंडप के बाहर एक घंटा जमकर डांस हुआ। दूल्हा स्टेज पर पहुँच गया। स्टेज के सामने के लम्बे रास्ते पर कालीन बिछा था। दोनों ओर लाइट वाले खूबसूरत गमले सजे थे। दुल्हन अपनी सखियों के

साथ आहिस्ता-आहिस्ता कदम बढ़ाती स्टेज की ओर बढ़ रही थी। वीडियो कैमरा उसके हर कदम और अंदाज को कैद कर रहा था। दुल्हन स्टेज पर आई, जयमाल डाली और दूल्हा-दुल्हिन को अलंकृत ऊँची कुर्सियों पर बैठा दिया गया। रिश्तेदार बारी-बारी से आकर उन्हें आशीर्वाद देने और फोटो खिंचवाने लगे। दूल्हे के कहने पर बहन मीना भी फोटो खिंचवाने बढ़ आई। परन्तु बच्चे कहीं नहीं थे। उनकी पूँछताछ शुरू हुई, ढूँढ़ा गया वे मिल नहीं रहे थे। किसी ने कहा—''आप तो फोटो खिंचवाइये। बच्चों के साथ फिर एक पोज हो जाएगा।'' पोज हो गया। स्टेज से उतर कर मीना और उसके पति बच्चों के लिये एक दूसरे को दोष देने लगे।

मीना ने पति को उलाहना देते हुए कहा—''आज के दिन मेरे पास इतना काम है। आप बच्चों की सुध भी नहीं रख सकते?''

वे बोले—''तुम समझती हो हम मर्दों की कितनी जिम्मेदारियाँ हैं। अब बच्चों को भी हम ही सम्भाले तो तुम महिलाएँ क्या करोगी?''

बुजुर्ग ताई समझाने लगी—''झगड़ते क्यों हो? अभी मिल जाएँगे। यही कहीं होंगे।''

नानी बोली—''सोनी को ढूँढ़ लो, बिट्टू तो अपने आप मिल जाएगा। वही उसका हाथ पकड़े कहीं घूम रही होगी।''

तभी किसी ने कहा—''उधर शायद खाने के पण्डाल में हों।''

सोनी की मौसी बोली—''सोनी को तो खाने से अधिक नाचने का शौक है। देखना अभी स्टेज पर आ जायगी।'' कई लोगों की बातों के बीच बच्चों को ढूँढ़ने की बात आई गई हो गई। सब एक दूसरे पर टाल कर नाच-गाना, बातों और काम में मश्गूल हो गए।

खाना समाप्ति पर आ गया। फेरों की तैयारी होने लगी। बिट्टू और सोनी अब भी नजर नहीं आ रहे थे। मीना को एक बार फिर बच्चों की सुध आई। उसने सामने खड़े अपने छोटे भाई को हाथ के इशारे से बुलाया और उससे बच्चों के बारे में पूंछा। वह बोला—''कमाल है, अभी तक बच्चे मिले नहीं और आप लोग बड़े मजे से घूम रहे हैं।''

इस बार बिट्टू और सोनी के न मिलने का शोर जोर से उठा क्योंकि डी. जे। का बंद हो गया था। चारों ओर-पण्डाल के अन्दर-बाहर, खाने व नाचने के स्थानों, झरनों और फव्वारों के आस-पास, लान, कमरों आदि में बिट्टू और सोनी की तलाश होने लगी। खबर लड़की वालों के घर भी पहुँच गई। वहाँ भी इन्हें खोजा गया। सब बच्चों को करीब से देखा परखा जाने लगा। अब बिट्टू की नानी और माँ को हर बच्चा सोनी और बिट्टू नजर आ रहा था।

पंडित जी ने कहा—''आप बच्चों की तलाश करते रहें और साथ ही फेरों का काम भी शुरू करा दें। मुहूर्त निकल रहा है।'' दूल्हा-दुल्हन को मण्डप में बैठा दिया गया। छः सात लोग उनके पास बैठ गए। शेष बच्चों की तलाश में लगे रहे। पण्डाल करीब-करीब खाली हो गया था। स्थानीय लोग अपने घरों को चले गए थे। मेहमान और घर के लोग पण्डाल में कुछ झुंडों में एकत्र हो गए थे। वहाँ तरह-तरह की बातें हो रही थी। एक बुजुर्ग महिला बोली—''अरे माँ की इतनी लापरवाही भी अच्छी नहीं। घंटों से बच्चों को पता नहीं और यह आराम से घूम रही है।''

उसका समर्थन उसकी एक हम उम्र ने किया—''इतने बड़े परिवार में भला किसी को तो बालकों की जिम्मेदारी लेनी चाहिए थी।''

तभी किसी ने सलाह दी—''घर जाकर तो देखो कहीं वहीं न छूट गए हों।''

चार लोग गाड़ी में बैठकर घर की ओर रवाना हुए। पूरा घर, छत, रसोई, बाथरूम, स्टोर और कमरों सहित तलाशा गया। परन्तु बच्चों का कहीं पता न चला। आस-पास के घरों को भी खटका कर देख लिया गया। सब जगह निराशा ही हाथ लग रही थी। अब मामला गम्भीर हो गया था।

रात के दो बज चुके थे। बिट्टू की माँ को अब वास्तव में बच्चों के खोने का एहसास होने लगा था। उसे रूलाई आने लगी। पर वह उसे दबाये कभी नौकर, कभी बिट्टू की नानी और कभी बिट्टू के पापा पर अपना गुस्सा निकाल रही थी। कुछ बड़े लोग उसी को बेवकूफ बता व डाँट रहे थे। तो कुछ दिलासा दे रहे थे। अब उम्मीद की जा रही थी कि बच्चे किसी स्थानीय रिश्तेदार के साथ चले गए होंगे। इसको निश्चित करने के लिये एक साथ कई मोबाइल काम करने लगे। सब पर एक ही तरह के सवाल पूँछे जा रहे थे। परन्तु सभी जगह से निराशाजनक जवाब मिल रहा था।

भाँवर व देवपूजन का कार्य सम्पन्न हुआ। बारात दुल्हन को लेकर घर आ गई। खुशी के साथ दुःख भी था। जहाँ-जहाँ बैठे लोग बच्चों की चर्चा कर रहे थे। अब थाने में रिपोर्ट लिखवाने के अतिरिक्त और कोई रास्ता नहीं था। बिट्टू की नानी उसकी माँ पर बिगड़ रही थी—''तुमको अपनी सास को बुला लेना चाहिए था। कम से कम बच्चों को तो सम्भाल लेती।''

इस समय वह भी झल्ला रही थी—''मैं तो बुलाना चाहती थी। परन्तु सबसे ज्यादा एतराज आपको ही था कि वह देहातन हमारे मेहमानों में नहीं जँचेगी। मैं तो महसूस करती हूँ कि वह दिखने में चाहें जैसी हों बच्चों की देख-भाल तो जी जान से करती हैं। छोटेपन में बिट्टू उन्हीं की गोद में सबसे अधिक आराम

से सोता था। फिर आपको ही परेशानी होने लगी कि बच्चे मैनर्स नहीं सीख रहे हैं। आपके समझाने से ही सोनी भी उनसे चिढ़ने लगी।''

सोनी के नाना थोड़ी तेज आवाज में बोले–''अच्छा अब बंद करो यह बहसबाजी। जिरह का समय नहीं है। दिमाग लगाओ कि बच्चे कहाँ हो सकते हैं। जितना जल्दी हो उन्हें ढूँढ़ने की कोशिश करनी चाहिए।''

नौकर, बाई और घर के अन्य काम वालों से बारी-बारी से पूँछताछ हो रही थी। बिट्टू के पापा और मामा उन्हें फटकार लगा रहे थे। वे अपनी-अपनी सफाई में कार्य की अधिकता के तर्क दे रहे थे और बच्चों के खोने का कसूरवार एक दूसरे को ठहरा रहे थे। बच्चों के अपहरण की आशंका भी की जा रही थी। यह कब और किसकी मदद से हुआ होगा इस संबंध में कयास लगाये जा रहे थे। नई दुल्हन को बच्चों के खोने की थोड़ी जानकारी पहले मिल चुकी थी। अब पूरी घटना सुनकर और घर के गमगीन माहौल को देखकर वह सिसकने लगी। कुछ महिलाएँ उसे चुप कराने का प्रयास करने लगी। तभी बाहर कोई जोर से चिल्लाया–''अरे जल्दी आओ। बच्चे मिल गए हैं। ये यहाँ हैं।''

यह बिट्टू के मामा के दोस्त की आवाज थी। जो टैंट वाले को बरामदे में ढेर लगे रजाई गद्दों को वापसी के लिये गिनवा रहे थे। उनकी आवाज सुनकर सब उधर दौड़े।

दो गद्दों को एक ओर झुकाकर कोने में छिपकर बैठने की थोड़ी जगह बनाई गई थी। दो गद्दे नीचे बिछे थे। यहीं कोने में बिट्टू दुबका गहरी नींद में सोया था। सोनी उसे गोद में समेटे किसी बुजुर्ग महिला सी पैर सिकोड़े लेटी थी। उसके शरीर पर केवल फ्रॉक व कच्छी थी। अपना स्वेटर और पैंट उसने बिट्टू को पहना दिये थे। मीना दौड़ कर बच्चों से लिपट गई। सबके तेज बोलने से बच्चे कुलबुलाने और आँखें मलने लगे। सोनी बोनी–''आप सब बिट्टू को छोड़कर बरात में चले गए थे। यह सामने गली में नाली में गिरा हुआ था। वहीं से अँधेरे में जोर-जोर से मम्मी-मम्मी चिल्ला रहा था। इसके सारे कपड़े भी भीग गए थे।''

मीना ने बच्चों को गोद में समेट लिया। थोड़ा रुककर सोनी बोली–''मैंने इसे नाली से निकाला और अपने कपड़े पहना दिये। ठंड से बचाने को इसे यहाँ छिपाया।''

बिट्टू की नानी आगे बढ़कर बोली–''अरी दादी'' और सोनी का सिर सहलाने लगी।

पतिव्रता

अरुण और मैनी के हिन्दुस्तान आने की खबर से अरुण का पूरा परिवार उनके स्वागत को उत्सुक हो गया। दो साल पहले अरुण ने अमेरिका में अपनी सहकर्मी मैनी से शादी कर ली थी। मैनी का परिवार हिन्दुस्तानी था। वे अभी दो पीढ़ी पहले ही अमेरिका में बस गए थे। अरुण और मैनी की शादी से दोनों के परिवार खुश थे। वे पहली बार हिन्दुस्तान आ रहे थे। इसीलिये मैनी का अरुण के रिश्तेदारों और मित्रों से परिचय कराया जाना जरूरी था और साथ ही विदेशी बहू को कुछ दिन स्वदेशी रीति रिवाजों की जानकारी दिया जाना भी। अरुण के परिवार के सभी लोग अपने-अपने तरीके से योजना बना रहे थे। उसकी बहनें विशेष उत्साहित थीं। वे भैया-भाभी के साथ एक-एक दिन कैसे एन्जॉय करना है इसकी तैयारी कर रही थी। माँ भी बहू के आराम, पसंद और जरूरतों का सामान जुटा रही थी। दादी का ध्यान केवल बहू के रंग रूप और संस्कारों पर था। उसे पूरा यकीन था कि उसका लाडला पोता कभी गलत चुनाव कर ही नहीं सकता है। उसने निश्चय ही सुन्दर सुघड़ बहू चुनी होगी।

अरुण और मैनी के स्वागत के लिये पूरा परिवार हवाई अड्डे पर पहुँच गया। अरुण ने बड़ों के पैर छुए। उसने मैनी को भी ऐसा करने का इशारा किया। मगर माँ ने आगे बढ़कर उसे रोक दिया और मैनी को गले लगा लिया। वे बोली–''नहीं अभी ऐसे नहीं। नई बहू का स्वागत होने के बाद ही वह किसी के पैर लगती है।''

दादी घर के दरवाजे पर खड़ी बहू का बेताबी से इंतजार कर रही थी। उन्होंने मुख्य द्वार और गलियारे में शुभ चिन्हों वाली सुन्दर रंगोली सुबह ही

बनवा दी थी। पूजागृह में कुल देवता की स्थापना कर नवदम्पत्ति से पूजन कराने की व्यवस्था भी कर ली थी।

जैसे ही द्वार पर गाड़ी रुकी। दादी आगे बढ़ी। उन्होंने सम्भाल कर बहू को गाड़ी से उतरवाया। अरुण के साथ बहू की आरती कर दोनों को घर में लाया गया। देवपूजन के बाद जलपान और थोड़ी देर की औपचारिक बातचीत के बाद अरुण और मैनी अपने कमरे में चले गए। चार छः दिन हल्की-फुलकी रस्में चलती रही। माँ जो भी जिस तरह मैनी को समझाती वह बिना संकोच और झुझलाहट के कर देती। दादी और माँ खुश होती। दादी हर बार कहती–''संस्कारित है।'' अरुण की बहनें मैनी से दिन भर बातें करती। वे माँ और दादी की हिन्दी में कही बातें अँग्रेजी में मैनी को और मैनी द्वारा अंग्रेजी में कही बातें हिन्दी में अनुवाद कर माँ और दादी को समझाती रहती। मैनी से उसके देश और घर के रिवाज व बातें बूझती और उसे अपने घर व देश की बातें बताने की कोशिश करती। मैनी बातों को समझने और सबके साथ घुलमिलकर रहने की कोशिश करती। वह हिन्दू धर्म ग्रंथों व धर्म स्थलों में विशेष रुचि रखती थी। अतः अवसर मिलते ही उनकी विस्तृत जानकारी लेने का प्रयास करती। अरुण के परिवार के सभी लोग अपनी समझ से उसे पूरी तरह संतुष्ट करने की कोशिश करते। वे उसकी जिज्ञासाओं की खूब तारीफ करते। अरुण के पापा तो दिन में कितनी ही बार रिश्तेदारों और मित्रों को मैनी द्वारा पूंछे गए प्रश्नों का हल खोजने के लिये फोन करते रहते। अरुण भी मैनी के अपने परिवार में घुलमिल जाने से बेहद खुश था। वह इसके लिये मैनी की तारीफ करता और माँ, बहनों व दादी को भी उत्साहित करता। अरुण की उम्मीद से भी अधिक मैनी उसके परिवार में मिकसप हो गई थी। उसका हिन्दुस्तान आने का मकसद पूरा हो गया था। अब वह मैनी को रिश्तेदारों और मित्रों से मिलवाने की योजना बनाने लगा। माँ और पापा से हर दिन यह चर्चा होती कि एक दावत का आयोजन कर सब रिश्तेदारों को यहाँ बुला लिया जाय या फिर हम ही लम्बे टूर पर निकल जाँय। लेकिन कुछ निश्चित नहीं हो पा रहा था।

मैनी अब अरुण से अलग भी उसकी बहनों के साथ घूमने, शॉपिंग करने और मूवी देखने जाने लगी थी। वह उनसे सूट और साड़ी पहनना सीखती, भारतीय व्यंजनों के गुणों और बनाने के तरीकों में रुचि लेती। कभी-कभी रसोई में चली जाती और माँ को खाना बनाते हुए ध्यान से देखती। एक दो बार उसने रोटियाँ बेलने का भी प्रयास किया। अरुण की बहनें उसे अँग्रेजी में

व इशारों से या कभी रसोई के सामान दिखाकर थोड़ा बहुत समझाती रहती। वह सहमती में ऐसे सिर हिलाती जैसे सब समझ गई हो। दादी उसकी ऐसी बातों पर निहाल हो जाती। वह उसकी बलाएँ लेती और माथा चूम लेती। दादी घर में आने वाले मेहमानों से मैनी की तारीफ करती न अघाती। बाई को मैनी के कमरे की विशेष रूप से सफाई करने और उसकी जरूरतों का खास ध्यान रखने को बराबर कहती रहती। मैनी माँ को दादी और उसकी हम उम्र महिलाओं के पैर छूते देखती तो स्वयं भी ऐसा करती। दादी खुशी से फूली न समाती और इशारे से उसे अपनी सास के भी पैर छूने को समझाती। इसी हँसी खुशी के माहौल में पूरा महीना कब बीत गया किसी को एहसास ही न हुआ। अरुण और मैनी को पन्द्रह दिन इण्डियन टूर पर जाना था। माँ ने उनके लिये आवश्यक सामग्री इकट्ठा कर दी। अरुण और उसके पापा ने मिलकर फ्लाइटें बुक करा लीं। अरुण की बहनों ने मैनी को इण्डियन टूरिस्ट प्लेस पर होने वाली मुश्किलों-चोर, ठगों, जहर खुरानों, खान-पान के प्रदूषण आदि के विषय में समझा दिया। एक छोटा सा ब्रेकफास्ट और एक फस्टएड बाक्स उनके लिये तैयार कर दिया गया। अरुण और मैनी चले गए।

परिवार के लोग अरुण और मैनी के लौटकर आने पर होने वाली दावत की तैयारी में जुट गए। सभी रिश्तेदारों और मित्रों को निमंत्रण भेज दिया गया। पूजा भोज, मेहमानो के रुकने आदि की सभी व्यवस्था कर ली गई। मैनी के लिये दुल्हन वाला जोड़ा और गोल्डन सैट खरीदा गयाा। सप्ताह भर पहले मेहमान आने शुरू हो गए। ठीक समय पर अरुण और मैनी भी आ गए। दादी की दो छोटी बहनें हरिद्वार यात्रा पर गई हुई थीं। बुलावा पाकर वे अपने कार्यक्रम को बीच में ही छोड़कर आ गई। दादी उनसे हर दिन मैनी की ढेरों तारीफ करती। एक दोपहर दादी ऐसी ही बातें कह रही थी। छोटी दादियाँ ध्यान लगाकर सुन रही थी। एक बोल उठी–''अरी जीजी, सब आपकी प्रभु भक्ति का प्रसाद है। वरना इतना सलीका और संस्कार तो यहाँ की लड़कियों में भी नही है।'' दूसरी बोली–''हमारा अरुण क्या कम है। जीजी ने उसे श्रवण कुमार के संस्कार जो दिये हैं। अब जैसा बेटा वैसी बहू।'' दादी बोली–''सब ऊपर वाले की कृपा है बहन।'' तभी बाई ने आकर कहा–''माँजी ने खाना लगा दिया है। आप लोग भोजन कर लें।'' छोटी दादी बोली–''अरे मैनी को भी बुला लो। एक दो दिन तो सबके साथ खा पी ले।'' दादी बोली–''ना बहन, वो सबके बाद में खाना खाती है। चाहें जितना कहो। जब तक अरुण खाना न खा ले वो एक दाना भी मुँह में नहीं डालेगी। वो भी अरुण की थाली का बचा खाती है बस और

कुछ नहीं।'' शुरू में तो हम समझते ही नहीं थे। बेचारी भूखी रह जाती होगी। अब अरुण के लिये ही अधिक परस देते हैं। कम से कम दोनो का पेट तो भर जाय। मैनी माँ की मदद करने चौके में आ गई थी। वह परसी थालियों को मेहमानो तक पहुँचाने का काम कर रही थी। अरुण की बहनें दौड़-दौड़ कर चटाईयाँ बिछाने, बरतन लाने और भोजन परसने का काम कर रही थी। दादियाँ भोजन करते हुये आपस में बाते कर रही थी। मैनी थोड़ा रुककर दादियों की बात ध्यान से सुनने लगी। छोटी दादी बोली—''ऐसे सुसंस्कार बहू ने कहाँ पाये होंगे जीजी?''

दादी ने समझाया—''उसकी दादी इण्डियन है उसी से सीखा है और कहाँ से?'' मझली दादी बोली—''ऐसी पति भक्ति तो पहले जमाने में ही थी। अब तो बस सती सावित्री की कहानियों में समझो। हमारे धन्य भाग हैं। जो मैनी जैसी बहू मिली है। मन खुश हो गया जीजी।''

मैनी अब तक दादी की बातों को काफी हद तक समझने लगी थी। उन्होंने उसकी तारीफ के बहुत से वाक्यों को आने वालों के सामने इतनी बार दोहराया था कि उसे लगभग कंठस्थ हो गए थे। पतिव्रता, सती सावित्री संस्कारों जैसे शब्द भी अब उसके परिचित हो गए थे। वह अचानक बोल उठी—''नहीं-नहीं दादी, ऐसा नहीं है। मैं अरुण का बचा अपनी दादी के निर्देशानुसार खाती हूँ। उन्होंने इण्डिया आते समय मुझे चेताया था कि इण्डियन सास बहू को जहर दे देती है। यह कोई संस्कार नहीं है बल्कि सावधानी है।'' बात अँग्रेजी में कही गई थी। दादियों की समझ में कुछ नहीं आया।

दादी बोली—''बहू कहती है। सब खूब अच्छे से खाओ।''

अरुण की बहन दोनों की बात का अंतर समझ कर ठहाका मार कर हँस पड़ी। मैनी तेज आवाज में बोली थी। माँ ने भी उसे रसोई में स्पष्ट सुना। वह बाहर देखने लगी। माँ को झटका सा लगा-संस्कारों की उदाहरण भारतीय नारी का बाहर ऐसा प्रचार। अरुण की बहन दादी को सही बात बताने को बोलने ही वाली थी कि माँ ने उसे तेज आवाज लगाई। साथ ही चुप रहने का इशारा कर बोली—''हँसी मजाक का समय नहीं है। खाना ठण्डा हो रहा है जल्दी से रोटियाँ लेकर जाओ।'' बेटी जैसे ही रसोई में आई माँ ने उसे धीमी आवाज में कहा—''दादी जो समझ रही है उसे वैसा ही समझने दो। कोई तो सुख से जिये। नासमझी में ही सही।''

फरिश्ता

दिनभर की दौड़धूप के बाद मोहन एक रेस्टोरेंट में थोड़ा सुस्ताने के लिए रुका। उसे भूख लग रही थी। चाय समोसे का आर्डर देकर वह दीवार के सहारे टिककर बैठ गया और आँखें बंद कर ली। अभी कुछ मिनट ही बीते थे कि फोन की घंटी बज उठी। उसने फोन उठाया और बात करने लगा। हेलो! हाँ मैनेजर साहब! बताइये क्या बात है? हाँ क्या कहा? बड़ी पार्टी है। पाँच बजे तक रहेंगे। ठीक है। तुम उन्हें अच्छी तरह चाय नाश्ता कराओ मैं अभी आधा घंटे में पहुँचता हूँ। देखो पार्टी हाथ से जाने न पाए। तभी बैरा चाय समोसा लेकर आ गया। मोहन ने फोन जेब में रख लिया और जल्दी-जल्दी नाश्ता करने लगा। मोहन पाँच मिनट में खा-पीकर खड़ा हो गया। काउन्टर पर पैसे दिए और मोटर साइकिल पर सवार हो तेजी से अपने शहर की ओर चल पड़ा।

मोटर साइकिल रफ्तार पकड़ रही थी साथ ही मोहन का दिमाग भी। वह सोच रहा था किस तरह पार्टी को प्रभावित करना है? कम्पनी के कौन से बेहतर उत्पाद हैं जो उन्हें दिखाए जा सकते हैं? रेट किस आधार पर तय किया जाय? यदि माल छः माह बाद बनकर तैयार होगा तो उस समय तक लेबर, कच्चे माल और ट्रान्सपोर्ट की कीमतें कितनी बढ़ सकती हैं? इन सभी का ख्याल रखना पड़ेगा। सहयोगियों से परामर्श का समय बहुत कम है। चार पाँच मिनट में संकेतों से ही उनकी सलाह लेनी होगी। खैर जो भी हो यह सब तो उन्नीस बीस तय हो ही जाएगा सबसे बड़ी बात तो है कि वह समय से पहुँच जाय। यदि आधा घंटे में न पहुँच पाया तो पार्टी न मिलेगी और एक पार्टी जाने का मतलब लाखों का नुकसान। यह ख्याल आते ही उसका हाथ मोटरसाइकिल के एक्सीलेटर को घुमाने लगा। गाड़ी की रफ्तार साठ से पैंसठ और पैंसठ से

सत्तर हो गई। सड़क ऊबड़-खाबड़ और गड्ढेदार थी। वह मन ही मन प्रशासन को गालियाँ देता दाएँ-बांए बचता तेजी से आगे बढ़ने लगा। मोहन कस्बे से निकल कर मुख्य सड़क पर आ गया। यहाँ सड़क की स्थिति कुछ ठीक थी। मोटरसाइकिल ने और रफ्तार पकड़ ली। सड़क के दोनो ओर हरे-भरे खेत और बाग-बगीचे थे। कोई और समय होता तो वह रुककर इस हरियाली का आनंद लेता। परन्तु इस समय तो उसे एक-एक सैकेंड भारी पड़ रहा था। यदि किसी तकनीक से मोटरसाइकिल में पंख फिट किए गए होते तो वह इस समय उन्हीं का इस्तेमाल करता और उड़कर पाँच मिनट में शहर पहुँच जाता। उसने एक गाँव पार किया, फिर दूसरा और तीसरे में पहुँच गया। अब वह अपनी मंजिल के बहुत करीब था मात्र दस बारह मिनट की दूरी पर। पार्टी से बात करने की पूरी योजना उसके दिमाग में तैयार हो चुकी थी। साथ ही मन में यकीन भी कि यह आर्डर निश्चित ही उसे मिल जाएगा।

सड़क के दोनों ओर छितरी सी बस्ती थी। घरों के सामने कच्चे चबूतरों पर बैठे लोग धूप सकते हुए बतिया रहे थे। घरों से बेतरतीब बहते पानी ने सड़क को उखाड़ दिया था। जिससे चौड़े व पानी भरे गड्ढे बन गए थे। सड़क की हालत बद से बदतर थी। न चाहते हुए भी मोहन को बाइक की रफ्तार कम करनी पड़ी। सड़क पर अधनंगे बालकों के झुंड बिना ब्रेक की गाड़ी से इधर से उधर दौड़ रहे थे। कुछ बीच सड़क में गोलियाँ खेल रहे थे। कुछ पतंगबाजी में मशगूल थे। उनका कोई भरोसा नहीं था कि किस पल सड़क पर दौड़ पड़े। यूँ तो मोहन दो तीन बाद महीने में इधर से गुजरता था परन्तु जितनी झुंझलाहट आज महसूस कर रहा था उतनी पहले कभी महसूस नहीं हुई थी। उसका दिल चाहा कि उतर कर दो चार को चपत लगा दे। परन्तु चुप रहा और किसी तरह आगे बढ़ने की कोशिश करने लगा। तभी एक बालक सड़क पार करने के लिए दौड़ता हुआ उसकी मोटरसाइकिल के सामने आ गया। मोहन ने ब्रेक लगाने की भरपूर कोशिश की पर बालक मोटर साइकिल की चपेट में आकर लुढ़क गया। बालक के मुँह से हल्की सी चीख निकली और वह बेहोश हो गया। मोटरसाइकिल के शोर व अपनी बातों की व्यस्तता में आस-पास बैठे लोगों का ध्यान तुरंत उधर न गया।

मोहन ने मोटर साइकिल रोक ली। वह अपने कार्य को कुछ देर के लिए भूल गया और मोटर साइकिल खड़ी कर बालक को उठाने लगा। तभी एक सफेद लम्बी दाढ़ीवाला बूढ़ा, जिसने सिर पर गोल टोपी, चूड़ीदार पायजामा और कुर्ता पहना हुआ था। तेजी से उधर झपटा। बूढ़े ने आगे बढ़कर बालक

को गोद में उठा लिया। बालक बेहोश था। उसके सिर में चोट लगी थी। कुछ पल के लिए बूढ़े ने मोहन को घूरा। तभी कुछ दूरी पर चारपाई पर बैठे पाँच छः पहलवाननुमा लोग जो ताश खेल रहे थे। उनकी निगाह उधर पड़ी। वे सभी सिर पर जालीदार गोल टोपी लगाए थे। वे ऊँचा कुर्ता और लुंगी पहने थे। उनमें से एक चिल्लाया–''अरे चाचा क्या हुआ?'' बूढ़े ने और साथ ही मोहन ने भी उधर देखा। बूढ़ा कातर आवाज में चीखा–''मार डाला।'' वे सब अचानक खड़े हो गए। उनकी आवाज सुनकर बाकी का भी बूढ़े की ओर ध्यान गया। एक साथ कई आवाजें उठी–''क्या हुआ?'', ''क्या हुआ?'' बूढ़े ने बालक को कसकर गोद में पकड़ लिया। मोहन जड़वत खड़ा था। बूढ़े की आँखें अंगारे से दहक उठी। चारपाई पर बैठे लोग तेजी से घरों में घुसे। घरों से तेज शोर उठा। दो पुरुष मोहन की ओर दौड़े। बूढ़े ने उधर देखा फिर उसकी निगाह बाइक सवार पर टिक गई। बूढ़े ने सिर से पैर तक उसके भरे पूरे जिस्म और नौजवान देह को एक बार गौर से देखा। बूढ़े की आँखों के अंगारे कुछ शांत हो गए। उसकी बड़ी आँखें अचानक नम हो गई। वह मोटर साइकिल वाले को आँखों से भागने का इशारा करते हुए बोला–''यह क्या किया तूने? और अपनी कब्र खुदवाने को अभी तक यहीं खड़ा है। चल भाग।''

मोहन ने मोटर साइकिल में किक मारी और तेजी से दौड़ा दी। एक आदमी ने झपट कर मोहन को गिराने की कोशिश की पर वह सम्भलकर किसी तरह भाग निकला। पकड़ो मारो की आवाजें आने लगी। मोहन को लगा बहुत से लोग लाठी लिए उसका पीछा कर रहे हैं। पकड़ो मारो की आवाजें लगातार तेज हो रही थीं। उसने मोटर साइकल की रफ्तार बढ़ा दी। कुछ मिनट बाद उसे लगा कि दो तीन दुपहिया वाहन उसका पीछा कर रहे हैं। वह मोटर साइकिल को तेज और तेज दौड़ाने लगा।

मोहन शहर पहुँच गया। पार्टी से डीलिंग की बात वह भूल गया था। वह सीधा अपने घर की ओर मुड़ गया। आड़ी-टेढ़ी तंग गलियों से होता हुआ वह घर पहुँच गया और बेतहासा दरवाजा पीटने लगा। दरवाजा खुलते ही वह तेजी से घर में घुसा। उसने झट से सांकल बंद की और जोर से एलान करता हुआ कि कोई दरवाजा न खोले, घर के अंतिम अँधेरे कमरे में चला गया।

वह चारपाई पर धम्म से लेट गया। बालक का बेहोश चेहरा जो शायद बाद में मर गया हो और बूढ़े का सफेद दाढ़ी व शोले उगलती आँखों वाला

चेहरा मोहन की आँखों के सामने घूमने लगा। वह कुछ देर यूँ ही बेसुध सा पड़ा रहा। तभी उसकी बीवी ने आकर उसके माथे पर हाथ रख दिया। वह बोली–''क्या बात है? आपकी तबियत तो ठीक है?'' मोहन ने आँखें खोलीं और मुँह से निकला ''पानी लाओ।'' बीवी पानी का गिलास भर लाई। पानी पीने के लिए मोहन ने गिलास मुँह के करीब किया तो पानी में सफेद दाढ़ी वाला फरिश्ता तैरने लगा। मोहन हाथ में गिलास लिए देर तक उसे देखता रहा।

लाइन

फोन बिल के काउण्टर पर पुरुषों की लम्बी कतार थी। अभी सुबह के दस ही बजे थे यह महिलाओं की घरेलू व्यस्तता का समय था। अतः महिला कतार में केवल चार महिलाएँ थी। नम्बर तीन व चार की महिलाएँ अभी आकर कतार में लगी थी। तीन नम्बर महिला हाँफ रही थी। लगता था वह थोड़ी दूर से पैदल चलकर आई है। उम्र चालीस के करीब और शरीर इस उम्र की आम हिन्दुस्तानी महिलाओं जैसा थुलथुल। चेहरा मेकअप से पुता परन्तु आँखें निस्तेज। वह गहरी साँस ले रही थी। लगता था मुटापे का कुटुम्बी रक्तचाप उन्हें मुटापे के साथ मिल चुका था और दिल का रोग दरवाजे पर दस्तखत दे रहा था। ऐसा इसीलिए क्योंकि वह गहरी साँस लेते हुए सीने पर हाथ भी रख रही थी। बैग से बोतल निकाल कर उसने थोड़ा पानी पिया। तभी उसके मोबाइल की घंटी बज उठी। बैग से मोबाइल निकाल कर वह धीमी आवाज में बातें करने लगी। फोन संभवतः उसकी किसी सखी का था जो शायद आस-पास के इलाके में ही रहती थी। वह फोन पर उसे आश्वासन दे रही थी कि वह शीघ्र ही उसके यहाँ पहुँच जाएगी। सखी अधिक कुछ न करे। उसे केवल एक कप चाय पीकर चले जाना है। बच्चों के स्कूल से लौटने से पहले लंच तैयार करना है। समय का अभाव होने पर भी उनकी बातें काफी देर तक चलती रही। इस बातचीत से आस-पास के लोग जान गए कि उसका नाम निशा है और इनके बच्चे शहर के सबसे महंगे इंग्लिश मीडियम स्कूल में पढ़ते है।

निशा ने जब मोबाइल बैग में रखा तब एक नम्बर वाली महिला बिल जमा करने की कोशिश कर रही थी। निशा के चेहरे पर संतोष की झलक दिखाई

पड़ी। शायद वह आश्वस्त हो गई थी कि अब कुछ ही मिनटों में उसका नम्बर आ जायगा। निशा ने एक नजर सामने लगी घड़ी पर डाली। एक के बाद एक बिल जमा होते रहे। परन्तु एक नम्बर महिला हाथ में बिल थामे खड़ी रही। उसने कई बार बिल आगे बढ़ाया पर क्लर्क ने उसकी ओर कोई ध्यान न दिया। वह बराबर पुरुष लाइन से बिल पकड़ता और जमा करता रहा। निशा महिला को बिल जमा करने को बराबर उकसाती रही। वह प्रयास भी कर रही थी। पर सफलता नहीं मिल रही थी। निशा के लिए फिर एक फोन काल आ गई। वह दूसरी ओर मुँह घुमाकर आवाज धीमी रखने की कोशिश करते हुए बातें करने लगी। जो शायद संभव नहीं था। बीच-बीच में उसकी ऊँची होती आवाज काउण्टर बाबू के काम में बाधा डाल रही थी। आखिर उसने ऊँची आवाज में बोल ही दिया—''मेहरबानी करके जरा दूर जाकर बात करें।''

बातों का सिलसिला इस बार भी लम्बा चला। निशा के हाव-भाव से और बीच-बीच में ऊँची होती आवाज से साफ पता चल रहा था कि उसकी अपने पति से किसी मुद्दे पर बहस चल रही है। खैर निशा का मोबाइल बैग में गया। उसने पानी की बोतल निकाल कर फिर कुछ घूंट गटके। बोतल बैग में रख रूमाल से थपथपाते हुए पसीना पोंछती वह फिर लाइन में आ लगी। अब तक एक नम्बर महिला बिल जमा कर जा चुकी थी। दो नम्बर ने बिल के साथ अपना हाथ खिड़की में डाला हुआ था। निशा ने भी बैग से बिल निकाला और पर्स से पैसे निकाल कर गिने। वे पूरे थे। निशा ने बिल और पैसों को हाथ में मजबूती से पकड़ा और काउण्टर की खिड़की में हाथ डालने की कोशिश करने लगी। वहाँ पहले ही कई हाथ मौजूद थे। निशा का प्रयास व्यर्थ रहा। तब उसने अपना हाथ अपने आगे वाली महिला के हाथ से आगे बढ़ाने का प्रयास किया। परन्तु उसके विरोध के कारण वहाँ से भी हाथ पीछे खींचना पड़ा। बिल लगातार जमा होते रहे और दोनों महिलाएँ खिड़की पर झुकी अपनी बारी का इंतजार करती रहीं। शुरू में एक दूसरे को घूरकर देखने वाली इन दोनों महिलाओं में अब कुछ आत्मीय बातचीत होने लगी थी। उनमें कुछ देर के लिए बहनापा सा आ गया था। समान हालातों से जन्मी हमदर्दी धीरे-धीरे संवाद में तब्दील होने लगी। बीच-बीच में वे बाबू से कभी नर्म, कभी गर्म भाषा में बिल जमा करने को कह रही थी। परन्तु लगता था काउण्टर बाबू की वार्णेन्द्री काम नहीं कर रही थी। वे नजर उठाकर किसी को देख भी नहीं रहे थे। थोड़ी-थोड़ी देर में केवल उनका हाथ स्वचालित यंत्र सा पुरुष लाइन की ओर बढ़ता, बिल

लेता, जमा करता और रसीद थमा देता। इसका कारण पुरुष लाइन का उनके सीधे हाथ पर होने से बिल लेने में सुविधाजनक होना था या वे अपनी पत्नी से खफा होकर आए थे या उनके पड़ौसी की पत्नी बाहरी कार्य बखूबी निबटा लेती थी और उनकी नहीं कर पाती थी अथवा इन सब सामान्य कारणों से भिन्न ही कोई गम्भीर ठोस कारण, नारी विमर्श के इस युग में पुरुष विमर्श खड़ा करने जैसा कोई जज़्बा। खैर कारण जो भी हो पुरुष लाइन तेजी से छोटी हो रही थी और महिला लाइन में एक गई, तीन आई थीं। इस बार जब बाबू ने हाथ पुरुष लाइन की ओर बढ़ाया तो आगे वाली महिला से न रहा गया। उसने हाथ बढ़ाते हुए बोल ही दिया—''इधर की लाइन से बिल नहीं लेना था तो लाइन लगवाई ही क्यों है?'' खिड़की की ओर लम्बे होकर फैले दो पुरुष हाथ सहमकर जरा पीछे सरके तो दो नम्बर महिला ने तुरंत अपना बिल आगे बढ़ा दिया। बाबू ने कुछ नाराजगी से पल भर को उसे देखा और—''लाइए।'' की एक रूखी सी झिड़की के साथ बिल और पैसे उसके हाथ से ले लिए। बिल जमा हो गया। महिला अस्पष्ट सा कुछ बोलती और निशा की ओर हमदर्दी से देखते हुए चली गई।

निशा ने अपना एक हाथ कोहनी तक काउण्टर पर टिकाते हुए दूसरा हाथ बिल और पैसों के साथ खिड़की में डाल दिया। बाबू ने उसे झिड़कते हुए कहा—''अभी जरा हाथ पीछे रखिए। अब पाँच बिल पुरुष लाइन से जमा होने के बाद आपका नम्बर आएगा।''

निशा पर इसका कोई प्रभाव न पड़ा। वह अपनी स्थिति यथावत् बनाए रही। पहले की भाँति पुरुष लाइन से बिल लिए जाते और जमा किए जाते रहे। वह हर बिल के बाद अपना बिल बाबू को देने का प्रयास करती। हर बार कहती—''अरे भाई साहब हमारा भी बिल जमा कर लीजिए हमें देर हो रही है।'' न निशा की बात का कोई जवाब मिला न बिल जमा हुआ। खैर पाँच बिल पुरुष लाइन से जमा हुए अब निशा ने हाथ को लम्बा कर बिल लगभग बाबू के सामने कर दिया। वह झल्ला गया—''आपको कहा है न, अभी खड़ी रहें।''

निशा ने भी ऊँची आवाज में जवाब दिया—''क्यों खड़े रहें? कब तक खड़े रहें? आपने कहा था पाँच के बाद हमारा बिल जमा करेंगे।''

प्रत्युत्तर मिला—''हाँ, तो, अभी पाँच बिल जमा नहीं हुआ है।''

निशा ने भी तर्क किया—''कैसे नहीं हुआ है? मैं बराबर गिन रही हूँ। पाँच बिल जमा हो गए हैं।''

बाबू ने थोड़ा क्रोध से निशा को देखते हुए कहा—''और हमे गिनती नहीं आती है, यही न।''

इतना कहते-कहते बाबू ने पुरुष लाइन से एक बिल और पकड़ा और जमा कर दिया। साथ ही अगले के लिए उधर ही हाथ बढ़ा दिया। निशा गुस्से में आ गई—''इस बार आप हमारा बिल जमा करें।'' पुरुष लाइन में तीसरे नम्बर पर लगे महाशय ने हाथ खिड़की की ओर बढ़ाते हुए कहा—''अरे भैया पहले इधर से लो। दफ्तर को देर हो रही है।'' उसके आगे वाले ने भी समर्थन किया—''हाँ भई, महिलाओं को क्या काम है।''

निशा पलट कर बोली—''कोई काम नहीं है महिलाओं को?'' साथ ही अपने समर्थन की उम्मीद से उसने अपने पीछे लगी। महिला की ओर देखा। परन्तु उसने बोलने वाले पुरुष की ओर कुछ नफरत से देखा भर, बोली कुछ नहीं। पर निशा अपना धैर्य लगभग खोती जा रही थी और इस विवाद का लाभ उठाकर दो और पुरुषों ने बिल जमा कर दिया। पुरुष लाइन जो गेट के बाहर तक लगी थी। लगभग आधी रह गई। अब निशा ने पूरे पुरुष समाज को चुनौती सी देते हुए कहा—''दफ्तर से आओ और पैर फैला कर बैठ जाओ। बस इतना ही काम है पुरुषों के पास। हम महिलाओं को सैकड़ों काम है। खाना बनाना, कपड़े धोना, बच्चों को स्कूल, कोचिंग भेजना। ऊपर से खरीदारी और मेहमानदारी।''

इस बार निशा के पीछे लगी महिलाओ ने भी उसका साथ दिया। एक बोली—''इतने पर भी सबके नखरे अलग से।''

दूसरी ने कहा—''सब जगह यही है। रिजर्वेशन, फोन, बिजली का बिल, बैंक, पोस्ट ऑफिस हर जगह महिलाओं की लाइन कहने भर को छोटी है। दस-दस के बाद एक बिल महिलाओं का जमा होता है।''

तीसरी ने भी समर्थन किया—''और घर में सबको लगता है। हमीं बिल जमा करा दें। झट से कह देते हैं चार छः की ही तो लाइन है। अब यह कौन गिने यहाँ चार के चालीस हैं।''

निशा इन बहनों का समर्थन पाकर उत्साहित सी बोली—''चार दिन होटल में खाना पड़े तो दिमाग ठिकाने आ जाय।''

दूसरी ने बात आगे बढ़ाई—''खाते भी हैं और पछताते भी हैं। पर जल्दी ही भूल जाते हैं।''

वे बोलीं—''भूल क्या जाते हैं। अच्छे-अच्छे की भी औकात नहीं है, जो घर भर को और साथ में अपने मेहमानों को महीने भर होटल में खिला सके। आखिर तो घर के चूल्हे से ही पेट भरता है।''

पुरुष लाइन में धीरे-धीरे कानाफूसी हो रही थी। वे कनखियों से मुस्कुराते हुए इस वार्तालाप का आनंद ले रहे थे। तभी पुरुष लाइन से एक व्यंगपूर्ण वाक्य आया–''अजी घर की बॉस तो महिलाएँ ही हैं। सारे डिपार्टमेंट उन्हीं के हाथों में तो हैं।'' महिला लाइन में सबसे पीछे लगी महिला ने बोला–''घर भर की अधिकारी नारी, है फिर भी बेचारी नारी।''

कुछ देर को शान्ति छा गई। अब तक इस बातचीत से अलग रही इन महिला की ओर एक साथ कई चेहरे घूम गए। पर वे पूर्ववत शान्त खड़ी थी। बाबू ने भी नजर उठाकर महिला लाइन को अंतिम छोर तक देखा और निशा के हाथ से बिल ले लिया। बिल जमा होने लगा। पंक्तियाँ बोलने वाली महिला विचार रही थीं –साहित्यक-गोष्ठियों, सरकारी योजनाओं, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर चर्चाओं में नारी विमर्श करता, नारी के उद्धार की दुहाई देता पुरुष, व्यवहार में नारी को बराबरी देने में इतना कृपण क्यों हो जाता है? शताब्दियों से अभावों को सहती और आज ऊँचाइयों को छूती हुई भी हिन्दुस्तानी औरत अभी तलाक कहना नहीं सीख पाई है। उसने देहरी से बाहर तो झाँका है लेकिन तय कर रखी अपनी लक्ष्मण रेखाओं को लांघने का दुःसाहस अभी नहीं किया है। लाख तरक्की के बाद भी ना ही उसकी रसोई का कोई विकल्प बन पाया है। नारीवाद के तमाम पाठों से भी उसने केवल डंडे का प्रयोग केवल झंडा उठाने के लिए ही सीखा। बाहरी लोग इसे बखूबी समझ रहे हैं। वे हिन्दुस्तानी नारी के गुणों के अच्छे पारखी साबित हो रहे हैं। वे उसे जीवन संगनी बनाने को तरजीह दे रहे हैं। परन्तु हिन्दुस्तानी पुरुष का नजरिया बदलने में अभी पीढ़ियाँ बीत जाएँगी। पर कहीं अधिक देर न हो जाए...।

अलार्म

दिन ठण्डा था। चार-पाँच महिलाएँ शर्मा जी की बैठक में बैठकर गपशप कर रही थीं। कुछ देर बाद मिसेज शर्मा चाय बना लाई। उन्होंने चाय कपों में उड़ेलते हुए कहा–''आप सभी पहले चाय लें। बातें बाद में। ठंड के दिनों में गर्म चाय ही अच्छी लगती हैं।''

सभी ने कप उठा लिए और साथ में बिस्कुट भी। वे बिस्कुट कुतरते हुए चाय की चुस्की लेने लगी। परन्तु मिसेज शर्मा अभी कप उठा भी न पाई थीं कि उनके मोबाइल का अलार्म बज गया। वे उठी और बगल के कमरे में जाकर किसी को फोन लगाकर बातें करने लगी।

इधर बहनें उनका इंतजार कर रही थीं और उधर वे फोन पर व्यस्त थीं। एक ने घड़ी की ओर देखा। वह बोली–''चार बज गए। भाभीजी आएँ तो हम चलें। बच्चों का स्कूल से आने का समय हो रहा है।''

दूसरी ने कहा–''हम ही कहाँ बहुत देर रुकने वाले हैं।''

मिसेज शर्मा लौट आई। उनकी चाय ठंडी हो चुकी थी। रमा ने मजाक करते हुए कहा–''आपने सबको गर्म चाय पिला दी और आपकी ठंडी हो गई। अब हम चलते हैं। आप चाय गर्म कर आराम से पीएँ।''

इसी समय शर्माजी भी सीढ़ियों से उतरते हुए दिखाई दिए। एक सखी ने कहा–''देखिए आपका साथ देने शर्माजी भी आ गए हैं।''

मिसेज शर्मा मजाक के मूड में नहीं थीं। वे बोली–''साथ किसी का भी मिले मेरे हिस्से में गर्म चाय और आराम है ही नहीं।''

मिसेज वर्मा ने आश्चर्य से कहा–''क्यों नहीं है? दो बुजुर्ग लोग हैं आप। कौन सा अधिक काम है। आराम से बैठकर चाय पिया करें।''

मिसेज शर्मा ने आहिस्ता से कहा–''काम अधिक नहीं हैं पर बिना काम के काम सैकड़ों हैं। कप में चाय डालते ही किसी को दवा याद आती है तो किसी को मोबाइल या पैन, कोई दरवाजा ही खटखटा देता है।''

एक बहन ने हँसते हुए कहा–''और नहीं तो क्या! देखो अब अलार्म ही बज गया।''

मिसेज वर्मा ने कौतुहल से पूंछा–''इस समय अलार्म क्यों लगाया आपने? देखो अलार्म बंद करने गई और फोन भी आ गया। इसी सब में देर लगी और आपकी चाय ठंडी हो गई।''

मिसेज शर्मा खीज कर बोली–''यही तो आप नहीं समझ पाएँगी कि कैसी अजीब-अजीब ड्यूटियाँ लगती हैं मेरी। इस समय का अलार्म बहू को जगाने के लिए था। अलार्म सुनकर हर दिन उसको फोन करती हूँ तब वे जागती हैं। यदि किसी दिन भूल हो जाय तो शाम का नाश्ता नहीं बनता। बच्चे बजारू चाजें खाते हैं।''

एक सखी बोली–''बहू को यह कैसी बेकार की आदत डाल ली आपने।''

तभी शर्माजी कमरे में प्रवेश करते हुए बोले–''अब यह बात इन्हें कौन समझाए। शुरू में खूब मना किया। नहीं मानी। अब परेशान होती हैं।''

मिसेज शर्मा बोली–''शुरूआत तो आपने ही की। आप जो सुबह तीन-तीन बार फोन कर बेटे को जगाते हैं। बेचैन घूमते रहते हैं। नहीं जगाया तो छुट्टी कर लेगा।''

शर्माजी–''उसका छोड़ो। उसे तो हॉस्टल टाइम से आदत पड़ी है।''

मिसेज वर्मा समझाते हुए बोली–''लेकिन शर्माजी अब तो वह बाल बच्चेदार हैं और ऑफिस में भी एक जिम्मेदार अफसर के पद पर है। अपनी इतनी जिम्मेदारी भी नहीं निभाता है तो बाकी जिम्मेदारियाँ कैसे निभाएगा? अब आप भी अपनी आदत बदलिए। देखिए बहू को भी यही आदत बन गई है। आप लोगों की बढ़ती उम्र है। इतनी छोटी-छोटी बातों के लिए कब तक परेशान होते रहेंगे।''

बरामदे में शर्माजी की बहन लेटी थी। साल में एक दो बार हफ्ता दस दिन के लिए आ जाती थी। उनकी दिनचर्या के दो ही मुख्य कार्य थे–भगवान का भजन और आराम। घर में आने-जाने वालों से इन्हें विशेष मतलब नहीं रहता था। मिसेज वर्मा अपनी बात पूरी भी न कर पाई थीं कि वे बैठक में आ गई और बोली–''ड्यूटी ये नहीं निभा रहे हैं बल्कि वे बच्चे इनकी ड्यूटी निभा

रहे हैं। उन्होंने कितनी बार चाहा कि ये चलकर उनके साथ रहें। पर इन्हें तो अपना घर द्वार छोड़ना नहीं है। तब वे कैसे इनकी सुध लें। इसीलिए बच्चा सुबह ही तीन चार बार इन्हें बुलवाकर देख लेता है कि ठीक-ठाक हैं और यही ड्यूटी उसने उस बेचारी बहू की भी लगा दी है कि वह शाम को सासूजी की सुध ले ले। वरना जो परदेश में अकेली तीन बच्चों को पाल रही है। अलार्म लगाकर जग नहीं सकती? बच्चे साथ रह रहे होते तो दिनभर लिए न घूमते। उनके दसियों काम करते। अब मिनट भर का एक फोन भी भारी हो रहा है। बड़े होकर क्या इतना भी फर्ज नहीं है। अब आप सब अपने घर जाओ और इन्हें ऐसी उल्टी सीधी बातें मत समझाया करो।'' सब आहिस्ता से उठ गई।

साइकिल

तिवारी जी के मकान की ऊपरी मंजिल बन रही थी। नीचे के दो कमरों में वे किसी तरह अपनी गृहस्थी समेटे थे। मुन्ना इनके यहाँ पिछले चार महीने से मजदूरी कर रहा था। मुन्ना बीस बाइस साल का इकहरे बदन का स्वस्थ व चुस्त नौजवान था। वह दिन भर डटकर काम करता, शाम को रगड़-रगड़ कर हाथ पैर धोता, बालों और हाथ-पैरों में तेल चुपड़ता, झोले से साफ पैंट कमीज निकाल कर पहनता, बाल काढ़ता और नई घड़ी, अंगूठी, गले में चाँदी की चेन व जेब में मोबाइल से सजा-धजा बाबू जैसा घर पहुँचता। मुन्ना साइट पर भी अपने शौक मे कमी न करता। वह मोबाइल पर गाना सुनता हुआ ही काम करता और अपने सामान को खूब सम्भाल कर रखता। उसकी साइकिल नई थी जिसे वह चमाचम साफ और फूलों व टल्ली से सजा कर रखता। वह आते ही सबसे पहले अपनी साइकिल को सुरक्षित जगह खड़ी करता, धूप-घाम से बचाकर रखता, घर और साइट से चलने से पहले रोज झाड़ता। साथी हँसते—''ससुराल से पाया है इसी से इत्ता ख्याल से रखे है।'' मुन्ना केवल मुस्कुरा देता। किसी का भी हँसी मजाक या व्यंग उसके साइकिल मोह में रुकावट न बनता।

घर की मालकिन को अपने सामान की चिंता थी। वे उसके लिये जगह खाली कराती लेकिन लेबर अपनी साइकिल व सामान अड़ा देते। एक दिन तो हद ही हो गई। सामान अधिक था सबकी साइकिलें बाहर रखवा दी गई थी। दोपहर बाद मालकिन बाहर आई तो मुन्ना की साइकिल को सामान के साथ खड़ी देखकर नाराज हो गई। ऊँची आवाज में बोली—''अरे भई तेरी साइकिल न हुई कोई हैलीकाप्टर हुआ। सबकी साइकिल बाहर खड़ी हैं। खुद हमारा

स्कूटर बाहर है और तूने मना करने पर भी साइकिल यहीं खड़ी कर दी। जैसे चोर सबसे पहले इसे ही उठाने वाला हो।''

मुन्ना शांत रहा। पर मालकिन का गुस्सा अभी ठण्डा नहीं हुआ था। वे बोली–''हटा इसे अभी यहाँ से।''

मुन्ना आहिस्ता से बोला–''रहीं दें मलकिन।''

मालकिन बोली–''क्यों भई। तू इतना क्यों डरता है। बाहर हमारी भी तो सवारियाँ खड़ी हैं। वह धीरे से बोला–''साहब आपका स्कूटर जाई तो कार आई-जाई। हमार साइकिल गई तो समझो बस गई। सालों साल भी नसीब न हो पाई साहब।'' मालकिन कुछ मिनट उसकी शक्ल देखती रह गई। इस छोटे से वाक्य में किना गूढ़ अर्थ छिपा था। एक बड़े अंतर को उसने कितनी सरलता और सहजता से कह दिया था। मालकिन के पास बात बढ़ाने का कोई मुद्दा शेष न था। वे घर में चली गई।

मुहिम

सर्दी का मौसम था। ठण्डी हवा की चुभन हड्डियों तक महसूस हो रही थी। सुबह की बारिश ने गलन को और बढ़ा दिया था। आज की हवा को महसूस करने के बाद यह समझना नितांत मुश्किल था कि यही हवा इस इलाहाबाद शहर में गर्मी में गाल झुलसाने वाली भी हो जाती है। इस शहर की यही खासियत है कि यहाँ हर मौसम अपनी पूर्णता के साथ आता है। बारिश भी बाढ़ से कम पर बात नहीं करती। चंद दिनों में ही आधा शहर गंगा यमुना की लहरों में नहाता है। लोग छतों पर बैठकर या झुंड के झुंड मैदानों गलियों में इकट्ठा होकर डूबते घाटों, घरों और मंदिरों को देखते हैं।

शालिनी चार साल के बाद भाई के घर आई थी। बच्चे बड़े सभी ढलती धूप का आनंद लेते हुए लॉन में बतिया रहे थे। शालिनी की भाभी मीता रसोई में चाय बना रही थी। वरुण ने आवाज लगाई—"मीता चाय जल्दी ले आओ। मुझे जाना है। ठण्ड बढ़ रही है।"

कुछ देर में चाय आ गई। सभी चाय का आनंद लेने लगे। वरुण ने घड़ी पर नजर डालते हुए कहा—''साढ़े चार बज गए। तुम्हारी चाय के चक्कर में मैं आधा घंटा लेट हो गया हूँ। पता नहीं तुम्हारे सब काम इतने सुस्त क्यों रहते हैं।''

दीपू ने भी पापा का साथ देते हुए कहा—''माँ का तो दिन भर काम खत्म ही नहीं होता है। तब भी कितने काम अगले दिन के लिए टल जाते हैं। आज कोई कपड़ा धुलना हो तो तीन दिन में नम्बर आता है।''

मीता मुस्कुराती रही। परन्तु शालिनी ने हल्का सा प्रतिकार करते हुए कहा—''अकेली पूरा काम जो करती हैं। थक नहीं जाती क्या? तुम लोग मदद क्यों नहीं करते हो?''

शीलू बोल पड़ी—“मैं मम्मी की मदद कर सकती हूँ। मुझे खाना बनाना, सफाई करना, कपड़े धोना सब आता है। मम्मी मुझे करने ही नहीं देती। खुद ही सारा काम निबटा लेती है।”

दीपू ने शीलू की बात को आगे बढ़ाया—“कोई मदद करे भी तो कैसे? काम को हाथ लगाने से पहले ही कहने लगती हैं-हटो-हटो तुमसे नहीं होगा। मैं कर लूँगी। जब किसी का काम पसंद ही नहीं तो कोई क्या करें।”

शालिनी—“हाँ ये तो है भाभी। आप किसी से काम कराना ही नहीं चाहती हो। सुबह से मुझे भी बैठाकर रखा है। जिस काम को हाथ लगाओ उसे झट आगे बढ़ कर करने लगती हो। तुम्हें भी थोड़े आराम की जरूरत है।”

मीता—“पढ़ने वाले बच्चे हैं। ये घरेलू काम में उलझ जाएगें तो पढ़ाई का समय कैसे मिलेगा? मुझे कहीं जाना नहीं रहता। धीरे-धीरे शाम तक निबटा लेती हूँ और आप यहाँ कितनी आती हो। चार साल में चार दिन को आई हो। उसमें भी दिनभर काम में लगी रही तो आने का क्या सुख?”

वरुण चाय खत्म करते हुए बोले—“यहाँ तो एक ही बंदा फालतू नजर आता है और वह हूँ मैं। मुझसे उम्मीद है कि मैं सब कामों में हाथ बटाऊँ और मैं यह कर नहीं सकता। मैं कितनी बार कह चुका हूँ पूरे काम के लिए काम वाली रख लो। समझ में नहीं आता तो क्या करूँ।”

शालिनी—“समझ में क्यों नहीं आता। मिलती ही नहीं होगी।”

दीपू—“मिलती है। मिलती क्यों नहीं। पर उससे तो ये और परेशान रहती है।”

शालिनी—“क्यों?”

दीपू—“कोई पानी अधिक बहाती है कोई सर्फ ज्यादा खर्च करती है, कोई समय से नहीं आती। कामवाली दो चार महीने से अधिक रुकती ही नहीं। इनकी हिदायतों से घबराकर भाग जाती हैं।”

शालिनी—“ऐसा क्यों है भाभी?”

मीता—“दीदी आपके यहाँ बिजली पानी की कमी नहीं है। इसीलिए आपको खराब न लगता होगा। यहाँ तो एक-एक बाल्टी पानी को लोग लम्बी लाइन लगाते हैं। शहर के किसी न किसी इलाके में हर दिन बिजली पानी गायब रहता है। यह सब सुनकर बहता पानी देखना मुझसे तो बर्दास्त नहीं होता।”

शालिनी ने गहरी साँस लेते हुए कहा—“बिजली पानी की हालत तो अब सब जगह खराब है भाभी। आपने सुना नहीं? नैनी झील का पानी भी दिन-दिन

घट रहा है। उस पर उसमें फिकता कचरे का अम्बार झील को घटाता और किनारों को बढ़ाता जा रहा है। मैं तो कभी-कभी सोचती हूँ वहाँ के लोगों ने उत्तरांचत बनाने को जितने आन्दोलन किए यदि उसके आधे भी झील बचाने को किए होते तो लोगों का और इलाके का अधिक भला हुआ होता। पर ये सब तो परोपकार की बातें हैं। पहले तो अपने उपकार की सोचो। कामवाली रख लो। इन्हें तो निभाना ही पड़ता है। कोई अपने आप किफायत नहीं करती है।''

वरुण ने चाय के बाद सिगरेट सुलगा ली थी। वे जरूरी काम से जाना भूल गए थे। लम्बे समय के बाद मीता को घेरकर कुछ सुनाने का मौका हाथ आया था। इसे छोड़कर जाना उनके लिए मुश्किल था। वार्ता धीरे-धीरे उनके लिए रोचक हो रही थी। तभी शीलू ने याद दिलाया—''पापा आपके जाने को देर हो रही है।''

वरुण ने सामने पड़ी कुर्सी पर पैर लम्बे फैलाते हुए सिगरेट का लम्बा कश खींचा और बोले—''छोड़ो अब जाने का चक्कर। ठण्ड में क्या बीमार होना है और यहाँ बाते भी तो इतनी अच्छी हो रही है।''

दीपू ने बुआ का हाथ हिलाते हुए कहा—''पानी का तो बहाना है बुआ। असली समस्या तो पैसे खर्च करने की है। कामवाली साबुन और सर्फ जो ज्यादा बहाती हैं। इसीलिए मम्मी उन्हें भगा देती हैं।''

शालिनी ने असहमति जताई—''नहीं ऐसा नहीं हैं। मैं जानती हूँ। भाभी कामवालियों को खूब खिलाती-पिलाती और कपड़ा, पैसा सब देती हैं। कोई ठीक काम करने वाली मिल ही नहीं रही होगी।''

इतना कहकर उसने मीता की ओर इस उम्मीद से देखा कि उसकी बात का समर्थन होगा। परन्तु इससे पहले कि मीता कुछ बोलती। शीलू बीच में ही बोल पड़ी—''हाँ-हाँ मम्मी पक्की कंजूस हैं। एक दिन बर्तनवाली ने साबुन माँगी तो उसे घंटे भर का भाषण सुना दिया।''

शीलू की बचकानी बात पर सब हंस पड़े। मीता बोली—''क्या बताऊँ। अब उसे रोको समझाओ न तो महीने में चार पाँच साबुन बहा दे। विम रहा सो अलग। मैं इसी चक्कर में खुद बर्तन माँज रही थी। साबुन की एक बट्टी एक सवा महीने चल जाती थी। पता नहीं ये कैसे इस्तेमाल करती हैं इसे रोकते कहते भी तीन बट्टी तो लगा ही देती है।''

शालिनी ने मीता के प्रति हमदर्दी जताते हुए कहा—''किफायत करना अच्छी बात है। पर भाभी इतनी छोटी-छोटी चीजों के लिए खुद को दिनभर मशीन सा

दौड़ाना समझदारी नहीं है। हमारी आपकी साबुन सर्फ की बचत से कोई बहुत बड़ी रकम इकट्ठी नहीं हो जाएगी। हाँ समय से पहले बीमार, बूढ़ी जरूर हो जाओगी। तब यह सारी बचत रखी की रखी रह जाएगी। क्यों अपने आपको इतना कष्ट देती हो। अच्छी सी काम वाली क्यों नहीं रख लेती।''

मीता ने हाथ उठाया। शायद वह कुछ कहना चाहती थी। परन्तु वरुण ने पहले ही बोलना शुरू कर दिया। जिससे उसके मुँह की बात मुँह में ही रह गई। वरुण ने थोड़ी नाराजगी व थोड़े व्यंग भरे शब्दों में कहा—''शालिनी बहन क्या तुम भी। किसे समझाने लगी। यहाँ यह सब समझाते-समझाते सालों बीत गए। तुम जिसे किफायत समझ रही हो यह किफायत नहीं है दरिद्रता है दरिद्रता और अधिक स्पष्ट शब्दों में कहा जाय तो निरा लीचड़पन। जो इन्सान समर्थ होते हुए भी अपने साधनों का इस्तेमाल न करें। उसे दुनियाँ वाले मितव्ययी या समझदार नहीं कहते। बल्कि ऐसे लोग बेवकूफ व घटिया कहे जाते हैं। इसी श्रेणी में आपकी ये भाभीजी हैं। इतनी देर की बहस के बाद भी तुम इनसे हामी नहीं भरवा पाई। इसका मतलब है कि अभी तुम्हें बात समझ में ही नहीं आई है। हिम्मत हो तो कुछ देर और कोशिश कर लो। आज नहीं तो कल, परसों जब तक यहाँ हो रोज समझाओ। अगर तुम जाने से पहले मीता देवी को उसकी दरिद्रता और मितव्ययता में अन्तर समझा सको तो यह मुझपर एक बड़ा एहसान होगा। मैं भी तुम्हें मान जाऊँगा।''

वरुण ने डिब्बी से नई सिगरेट निकाल कर सुलगा ली और लम्बा एक कश खींचकर उसका धुआं छोड़ते हुए फिर बोलना शुरू किया—''मुझे अब एक तरह का अपमान और शर्म सी महसूस होने लगी है। जब घर आने वाले प्रश्न करते हैं कि मैं बीवी से इतना काम क्यों करवाता हूँ? तब मैं बात को हँसकर इधर-उधर बदल देता हूँ। अब किस-किस को समझाऊँ कि कसूरवार कौन है। जहाँ अपनी ना चले वहाँ चुप रहना ही ठीक है।''

सूरज अपनी धूप की चादर समेट कर पश्चिम की गोद में सिमट रहा था। हवा का तीखापन बढ़ रहा था। बच्चे बड़ों की लम्बी ऊबाउ बातों से बचकर कमरे में चले गए थे। वरुण ने अन्दर चले जाने के ख्याल से कुर्सी छोड़ दी। परन्तु तभी मीता का गंभीर स्वर सुनकर वे बैठ गए।

''मैं जो भी काम करती हूँ अपनी इच्छा से करती हूँ। इसके लिए मुझपर कोई दबाव नहीं हैं। मैं आपकी हैसियत को आपसे अधिक समझती हूँ। दो हजार की तनख्वाह से गृहस्थ शुरू की थी मैंने। यदि पैसा-पैसा न बचाती तो आज

इतनी शान बघारने की हिम्मत न करते। आज भी यदि सबके कहने में आकर सारे काम नौकरों के भरोसे छोड़ दूँ तो यही खर्च बीस से चालीस हजार होते देर नहीं लगेगी। घर में जो सामान साल हर साल बढ़ता दिख रहा है यहीं दिनों दिन गायब होने लगेगा। रही बात कंजूसी की-मैं खाने-पीने में कंजूसी नहीं करती हूँ। कंजूसी करती हूँ तो साबुन, सर्फ और बाथरूमों में बहाये जाने वाले कैमिकल में। जानते हो क्यों?'' यह सब बहकर उन्हीं नदियों, झीलों और तालाबों में पहुँचता है जिनको बचाने के लिए कितने आन्दोलन, योजनाएँ और बातें चल रही हैं।''

शालिनी अप्रत्याक्षित रूप से बोल पड़ी—''हाँ गंगा के लिए कितने संत आन्दोलन और अनशन कर रहे हैं। कितनों का प्राणांत भी हो गया है। सरकार भी करोड़ों का बजट पास कर रही हैं।''

मीता—''अनशन तो घोर हताशा और निराशा की स्थिति है। जो नैतिक को झुका सकती है। परन्तु अनैतिक के लिए उपहास का विषय होती है। आन्दोलन भी अधिकतर नेताओं के ढकोसले हैं और सरकार तो अपनों का पेट भरने के लिए ही योजनाओं के नाम पर पैसे का बंदर बाँट कर रही है। इनमें से यदि एक भी ईमानदार होता तो समस्या कब की सुलझ गई होती।''

वरुण ने बहुत दिनों बाद मीता को इतने मन से बोलते सुना था। उसने हल्के मजाक के मूड में कहा—''तो हमारे घर की सरकार उसमें क्या भागीदारी करने वाली है। वह क्यों अपना भट्टा बैठाए ले रही है।''

''भागीदारी के लिए धन, ज्ञान या ताकत की ही आवश्यकता नहीं है। सही सोच के साथ हम कहीं भी खड़े होकर बहुत कम ताकत और साधन से भी भागीदारी कर सकते हैं। बस मन में ईमानदारी और थोड़ी हिम्मत बनी रहे। हिसाब लगाओ यदि हर घर से महीने में आठ की जगह दो साबुन और दो ढाई किलो सर्फ की जगह पाव डेढ़ पाव में काम चला लिया जाय। यानी हम अपने हर दिन के कैमिकल खर्च को एक चौथाई कर लें। जो कि हम थोड़े से प्रयास से आसानी से कर सकते हैं। तो एक मौहल्ले और बस्ती से कितना कैमिकल जल स्रोतों में जाने से बच जायगा। इसकी मात्रा का अनुमान हर गाँव शहर और फिर पूरे देश में लगाओ। आज जो जल स्रोतों की बर्बादी की स्थिति है वह आप से आप एक चौथाई रह जाएगी। फिर एक चौथाई समस्या को आन्दोलन व जन सहयोग से आसानी से सुलझाया जा सकता है।''

''संध्या का अंधेरा घिरने लगा था। सड़कों पर सन्नाटा पसरने लगा और ठीक वैसा ही सन्नाटा वरुण के लॉन में भी मीता की बात खत्म होते तक छा

गया। मीता कुर्सियाँ समेट कर अंदर ले जाने लगी। उसी के पीछे बची कुर्सियाँ वरुण और शालिनी ने भी उठा ली। सब घर में आ गए। मीता रसाई में रात के खाने की तैयारी करने चली गई। वरुण और शालिनी मौन कुछ विचार रहे थे। वे थोड़े आश्चर्य चकित से एक दूसरे को देख रहे थे। शालिनी ने धीरे से कहा-बड़ी गहरी सोच है। बात एकदम सही है।''

वरुण ने केवल—'हूँ' कहा।

शालिनी बच्चों के पास चली गई। वरुण ने एक नई सिगरेट सुलगा ली। वह विचार रहा था-एक नितांत घरेलू अनपढ़ महिला और सोच का इतना व्यापक दायरा। आज तक वह उसे घर की सोच लायक भी नहीं समझता था। उसे क्या पता था कि उसके अदने से व्यक्तित्व में इतना व्यापक व्यक्तित्व भी छिपा है। आज तक वह इस व्यक्तित्व को क्यों न पहचान पाया। हर दिन साथ रहकर भी आखिर वह मीता से इतना दूर क्यों बना रहा? इतना ही नहीं उसी के कारण बच्चों के दिमाग में भी मीता की अधूरी छवि ही बन पाई...।

मंतव्य

सम्मान

सुबह सवेरे श्याम बाबू ने अखबार पढ़ा। उसमें एक विज्ञापन था जो उनके मतलब का था। शहर की ही एक संस्था ने सामाजिक समस्याओं को इंगित करने वाली रचना को 25 हजार नकद और प्रशस्ति पत्र के साथ सम्मानित करने का विज्ञापन दिया था।

श्याम बाबू एक बुजुर्ग साहित्यकार थे। काफी संख्या में महत्त्वपूर्ण रचनाएँ लिख चुकने के बाद भी अभी तक पुरस्कारों से वंचित थे। लगभग उन तमाम विषयों पर जिन पर उन दिनों पुरस्कार देने का रिवाज था उन्होंने लिखा और अच्छा लिखा। पर पैठ के अभाव और विरासत में लेखन न पाने के कारण किसी की नजरों में आए नहीं। अपने लेखन की यौवनावस्था में वे इस सबके लिए लालायित रहते थे। परन्तु कुछ भी न पाने के कारण वे विगत आठ-दस साल से इस संबंध में उदासीन हो गए थे। वे विज्ञापन पढ़ते अवश्य थे। उसे सम्भाल कर भी रखते थे। पर आवेदन नहीं करते थे। हाँ, परिणाम को अवश्य देखते थे। फिर सम्मानित के जीवन वृत्त और रचनाओं के स्तर की चर्चा महीनों अपनी मित्र मण्डली में करते रहते थे। आज भी जैसे ही उनकी नजर विज्ञापन पर पड़ी उन्होंने उसे सहेजकर रख लिया। दो दिन बाद उनके मित्र राजेश पधारे। दोनों चाय पीते हुए इधर-उधर की बातें करने लगे। कुछ देर बाद राजेश बोले—''श्याम तुमने तुलसी देवी साहित्य संस्था का विज्ञापन देखा?''

''देखा।''

''प्रविष्टि भेजी?''

“नहीं।”

“क्यों?”

“अब तक कम भेजी हैं क्या?”

“अब तक का छोड़ो। इधर इन संस्थाओं के पास पैसा आया है और थोड़ा रूझान भी बदला है। फिर अपने शहर की बात है कोई न कोई संपर्क मिल सकता है। अभी जो तुम्हारा खण्ड काव्य आया है जिसमें तुमने समाज के विभिन्न वर्गों को एकजुट करने के तुलसी के प्रयासों पर लिखा है उसी को भेज दो। वह विज्ञापन के अनुरूप है।”

श्याम बाबू चुप सुनते रहे और राजेश उन्हें देर तक समझाते व उत्साहित करते रहे। कुछ देर में वे चले गए और जाते-जाते श्याम बाबू को एक बार फिर प्रविष्टि भेज देने को कह गए।

श्याम बाबू पिछले छः महीने से एक उपन्यास में उलझे थे। दिन रात उसी का ताना-बाना बुनते रहते। उसी से प्रविष्टि भेजने का मन न बना। एक दिन राजेश का फोन आया। फोन श्याम बाबू के बेटे अखिल ने उठाया। राजेश ने पुरस्कार के लिए प्रविष्टि भेजने की बात की। अखिल ने जवाब दिया कि “पिता जी अब इन सब चक्करों में नहीं पड़ते। फिर चाचा जी आप तो जानते ही हैं कि कोई लाभ नहीं है। निराशा ही हाथ लगती है।”

राजेश—“देखो इस बार बहुत से ऐसे लोगों को सम्मान मिल गए हैं जिन्हें पहले कभी नहीं मिला। मैं कह रहा हूँ प्रविष्टि भिजवा दो। उम्मीद है इस बार काम बन जाए। वहाँ कार्यालय में मेरे छोटे बेटे का एक मित्र कार्य कर रहा है। उससे कोई न कोई रास्ता निकल आएगा। यूँ निराश होने से कुछ हासिल नहीं होता।”

अखिल ने उन्हें पिताजी को समझाने का आश्वासन देकर फोन रख दिया। उसने श्याम बाबू को राजेश जी का संदेश दिया। उन्होंने कोई दिलचस्पी न ली। चार छः दिन बाद अखिल और श्याम बाबू बैठे बातें कर रहे थे कि सम्मान और पुरस्कार की चर्चा छिड़ गई। अखिल को याद आया कि पिता जी ने अभी तक प्रविष्टि नहीं भेजी है। उसने श्याम बाबू से कहा—“पिता जी आप अपनी प्रविष्टि आज भेज दें। कहीं देर न हो जाय।”

“अरे तुम भी राजेश की बातों में आ गए। पुरस्कार देना क्या उसके हाथ में है।”

“हाथ में न सही पर वे कोशिश तो करेंगे। आप किसी की बात सुनते क्यों नहीं हैं?”

“कौन सा बड़ा पुरस्कार है। पच्चीस हजार रुपए और दो कौड़ी की संस्था का प्रशस्ती पत्र। तुम्हें पैसे की जरूरत है तो मेरे एकाउण्ट से ले आओ। मैं अपमानित होना नहीं चाहता।”

“पैसे का सवाल नहीं है पिताजी। इतना पैसा तो मैं भी आपको दे सकता हूँ। पर जरा सोचिए आपकी उम्र अस्सी पार कर रही है और एक भी सम्मान आपके नाम के साथ नहीं जुड़ा है। खाली काम को कोई नहीं बूझता है। उसकी मान्यता होना भी जरूरी है। फिर इतना तो निश्चित है कि हमारे ऐसे संबंध नहीं हैं कि हम बड़े सम्मान पा सकें। जहाँ उम्मीद है उसे हम छोटा मानकर छोड़ दें तो कैसे काम चलेगा? आप एक बार प्रविष्टि भेज दीजिए बस। बाकी मैं खुद देख लूँगा।”

एक दो दिन बाद श्याम बाबू ने शांत मन से सोचा। उन्हें अखिल और राजेश की बातों में सार नजर आने लगा। यह बात सही थी कि इस बार कुछ ऐसे लोग बड़े पुरस्कार पा गए थे जिन्हें उनके काम के लिए अब से काफी पहले ये पुरस्कार मिल जाने चाहिए थे। चलो नाम के साथ कुछ तो सम्मान जुड़ा। मृत्यु शैया पर मिला आधा-अधूरा सम्मान भी आत्मा को बड़ा सुकून देता है। यही सब विचार कर श्याम बाबू ने अखिल को यह कहते हुए कि वे उसकी और राजेश की खुशी के लिए ही भागीदारी कर रहे हैं अपनी प्रविष्टि भेज दी।

बापू, बाड़ा, बकरी

एक दिन बाद साहित्यिक पुरस्कार का विज्ञापन सुभाष ने पढ़ा। उसका चेहरा खिल उठा। उसने विज्ञापन वाला पन्ना मोड़ कर जेब में रख लिया और गुनगुनाता हुआ अपने काम में जुट गया। सुभाष लगभग अट्ठारह साल का नवयुवक था। वह एक प्रिंटिंग प्रेस में विगत आठ साल से काम कर रहा था। आरंभ में सफाई करने, पानी पिलाने और छोटे मोटे सामान इधर-उधर पहुँचाने का काम करता था। उसकी होशियारी और लगन को देखकर मैनेजर ने दो साल पहले उसके काम और वेतन में तरक्की कर दी थी। उसने एक साइकिल भी खरीद ली थी। अब वह आर्डर लाने, सामान लदवाकर सही जगह पहुँचाने तथा औरों से काम करवाने का काम करता था। परन्तु सुबह मैनेंजर साहब की मेज कुर्सी झाड़ने, उनके पानी का जग, गिलास साफ कर रखने और पुराना अखबार हटाकर ताजा अखबार रखने का काम वह स्वेच्छा से करता था। इसी दौरान वह दस मिनट का समय निकाल कर सरसरी निगाह से एक बार अखबार पढ़ लेता था। ऐसे

विज्ञापन का उसे महीनों से इंतजार था। अतः विज्ञापन मिलते ही वह खुश हो गया। उसने मैनेंजर साहब से शाम को जल्दी घर जाने की अनुमति ले ली।

सुभाष का गाँव इस कस्बे से करीब आठ कोस दूर था। वह रोज आता-जाता था क्योंकि साल भर पहले उसकी माँ की टाँग टूट गई थी और बापू तो उसकी याद से पहले से ही अंधा था। माँ बताती थी कि उसकी आँखों में काला पानी उतर आया था। माँ की समझ से यह लाइलाज बिमारी थी। बापू खाट पर बैठकर बान बुनता रहता था। माँ उन्हें आस-पास के गाँवों में बेक आती थी। सुभाष की नौकरी से पहले यही उनकी जीविका थी। सुभाष की नौकरी लगने पर भी उन्होंने अपना काम बंद नहीं किया था। पर माँ की टाँग टूटने से वह लाचार हो गई थी। किसी तरह घर का थोड़ा बहुत काम कर लेती थी। बान बेकने अब छुट्टी के दिन सुभाषा जाता था और रोज घर पहुँच कर माँ की घरेलू कामों में मदद करता था।

तीन बजते ही सुभाष ने साइकिल उठाई और गाँव की ओर चल पड़ा। गाँव में पहुँचकर सुभाष ने साइकिल स्कूल की तरफ मोड़ दी। यहाँ उसके गुरूजी रहते थे। इन्हीं से सुभाष ने पाँचवी तक शिक्षा पाई थी और विगत वर्ष इनकी ही मदद व प्रेरणा से हाईस्कूल परीक्षा पास की थी। गुरूजी ने ही उसकी नौकरी प्रेस में लगवाई थी। बापू तो अनपढ़ था अतः सुभाष अधिकतर मश्वरों के लिए गुरूजी पर ही निर्भर था। सुभाष ने गुरूजी के घर पहुँचकर उनका चरण स्पर्श किया और झट से विज्ञापन निकाल कर उनके सामने रख दिया। उन्होंने उसे ध्यान से पढ़ा और प्रश्नसूचक दृष्टि से सुभाष को देखा। वह धीरे से बोला—''गुरूजी बापू की वो गीतों वाली किताब...।''

गुरूजी हँस पड़े और बोले—''अरे पगले वह इनाम के लिए भेजने लायक कहाँ हैं। उसे तो छोटी-मोटी दुकानों या मेले आदि में बिक्री के ख्याल से छपवाया था। यहाँ तो बड़े-बड़े लेखक अपनी पुस्तक भेजते हैं। वह सौ पन्नो की सस्ते कागज पर छपी सस्ती किताब इनके किस मतलब की है?''

''पर गुरूजी इसमें तो लिखा है सौ से डेढ़ सौ पृष्ठ होने चाहिए।''

''पुरस्कार के लिए पृष्ठ होना ही काफी नहीं है। विचारों का भी महत्त्व होता है।''

सुभाष के पास तर्क वितर्क के लिए इस मुद्दे पर अधिक ज्ञान नहीं था। वह चुप रह गया और जल्दी ही बातों का रुख रोजमर्रा की समस्याओं पर आ गया। कुछ देर बाद सुभाष घर लौट आया। विज्ञापन को लेकर उसके मन में

उथल-पुथल होती रही। वह घर के अंदर जाता तो छत की टूटी खपरैलों और जर्जर हुई सीलन खाई दिवारों को देखता, बाहर जानवरों के उजड़े बाड़े और आधे-अधूरे कच्चे चबूतरे को देखता। इसी चबूतरे से फिसल कर उसकी माँ की टाँग टूट गई थी। कभी वह रस्सी बुनते बापू को देखता उसे इन सब समस्याओं का हल पुरस्कार की पच्चीस हजार की राशि में नजर आता। किसी तरह किताब भेज दी जाय तो उस पर इनाम मिल जाएगा ऐसा विश्वास बार-बार उसके मन में उठता। सुभाष के लिए मान सम्मान का विशेष महत्त्व नहीं था उसके लिए पुरस्कार राशि महत्त्वपूर्ण थी। दो हजार की नौकरी करने वाले को पच्चीस हजार नकद एक बड़ी धनराशि थी। इतना जोड़ते बचाते उसकी आधी जिंगदी खप जायगी। इतने धन से वह अपने कितने काम साध सकता है। अपने माँ बापू को ढेरों सुख दे सकता है। एक दो बकरी खरीद लेगा तो बरसों से उजड़ा बाड़ा आबाद हो जायगा।

घर में जानवर की रौनक ही अलग होती है। पर गुरूजी को कैसे समझाय कि उसका बापू की किताब पुरस्कार के लिए भेजना कितना जरूरी है। कितनों की मिन्नतें कर और मैनेजर साहब से पाँच हजार रुपए उधार लेकर उसने इसी उम्मीद से किताब छपवाई थी कि वह एक दिन इसे पुरस्कार के लिए भेजेगा। जब बापू गीत बनाता और अपने मीठे गले से उन्हें चौपाल पर गाता था तो सब वाह-वाह करते थे। खुद गुरूजी ने बहुत बार कहा था—''तुम्हारे बापू के कंठ में सरस्वती विराजती हैं। सूरदास के पदों जैसी मिठास है उसमें।'' बहुत से लोग कहते थे-सुभाष का बापू भले ही अंधा है पर दुनियाँ में हो रहा अच्छा बुरा सब देख लेता है। तभी तो ऐसे गीत बनाता है कि सुनकर आँखों वाले की भी आँख खुल जाय। सुभाष तब चौथी, पाँचवी में पढ़ता था जब उसने गुरूजी के समझाने पर बापू के गीतों को एक मोटी कापी में लिख लिया था। जिस प्रेस में वह काम करता था वहाँ की छपी दो किताबों को जब एक-एक लाख का इनाम मिल गया तो उसके मन में अपने बापू की किताब छपवाने का ख्याल आया था और जैसे ही उसकी तरक्की हुई उसने गुरूजी की मदद से वर्तनी आदि सुधार कर बापू की किताब छपवा ली थी। यह बात अलग है कि उसने आज तक यह बात किसी से कही नहीं थी। पर वह तो बरसों से ऐसे मौके की तलाश में था और अब जब मौका आया तो किताब न भेज पाने की छटपटाहट उसका किसी भी काम में मन नहीं लगने दे रही थी। छुट्टी के एक दिन सुभाष फिर गुरूजी के घर पहुँच गया।

गुरूजी बाड़े में सब्जियाँ सींच रहे थे। सुभाष उन्हें अभिवादन कर उनके कार्य में मदद करने लगा। कुछ देर इधर-उधर की बातें करने के बाद सुभाष ने बापू की किताब भिजवाने का गुरूजी से फिर आग्रह किया। गुरूजी ने उसे समझाने का प्रयास किया कि पुरस्कार मिलना इतना सरल नहीं है। एक नहीं दस-दस किताबें लिखनी पड़ती हैं। परन्तु सुभाष ने किसी तरह उन्हें तैयार कर लिया। गुरूजी ने विज्ञापन पढ़ा और सुभाष को आवश्यक सामग्री लिफाफे आदि लाने को कह दिया। अगले दिन सुभाष डाकखाने से जरूरी सारा सामान ले आया। टीन के बक्से से चार किताबें निकाल लीं। किताब का नाम 'जागरण गीत' था। छपवाते समय गुरूजी ने ही इसे यह नाम दिया था। रात में सुभाष ने गुरूजी के पास बैठकर बंडल तैयार कर लिया और अगली सुबह कस्बे के डाकखाने से उसे चलता कर दिया। पोस्ट मास्टर ने समझाया कि रसीद को सम्भाल कर रखना। इसीलिए श्याम को घर पहुँच कर सुभाष ने रसीद को बक्से में लाटरी का टिकट सा सम्भाल कर रख दिया। माँ बार-बार बूझती रही कि वह क्या करता फिर रहा है परन्तु वह माँ को यह खुशखबरी तब देना चाहता था जब इनाम आ जाता। अतः उसने माँ की बातों को टाल दिया और केवल गुरूजी को सूचित किया कि उसने प्रविष्टि भेज दी है।

व्यवसाय

विज्ञापन छपने के एक सप्ताह बाद उसकी जानकारी मिस्टर विनय को मिली। मिस्टर विनय नव-धनाढ्य वर्ग से थे। वे लगभग तीस की उम्र और मध्यम कद-काठी के युवक थे। बालपन से ही उन्हें अपनी दौलत पर गुमान करने और नौकर–चाकरों के साथ रौब से पेश आने का सलीका सिखाया गया था। किशोरावस्था तक उन्हें यह अच्छी तरह समझ में आने लगा कि बड़े होकर अपना कारोबार सम्भालना है। पढ़ाई तो मात्र औपचारिकता है। अतः वे मौज-मस्ती और सैर सपाटों पर अधिक ध्यान देने लगे। मगर अपने देश की शिक्षा प्रणाली ने उनकी इस औपचारिकता की पढ़ाई की कद्र न की और उन्हें क्लास दर क्लास पास कराते हुए कॉलेज तक पहुँचा ही दिया। मिस्टर विनय अपने इरादे पर अडिग रहे। सात-आठ साल कॉलेज में रहकर ग्रेजुएट हुए। अभिभावक खुश हुए कि अब वे शीघ्र ही अपना कारोबार सम्भाल लेंगे। किन्तु कॉलेज के दिनों में उनके पिता के शब्दों में उन्हें एक व्यसन शायरी पढ़ने और लिखने का लग गया था। इस व्यसन ने कितने रहीसजादों को बर्बाद किया था। उनकी बाप-दादों

की मेहनत से कमाई दौलत लुट गई थी। उनकी समझ में यह बर्बादी का सीधा रास्ता था। वे बहुत से उदाहरण देकर विनय को रोकने का प्रयास करते। परन्तु विनय की समझ में यह भी व्यापार का ही एक हिस्सा था। अब लक्ष्मी और सरस्वती का बैर नहीं रह गया था। लेखन के माध्यम से भी लोग धनाढ्य हो रहे थे। व्यंग, कटाक्ष, छंद की समझ व उम्मीद श्रोताओं में घट रही थी। इसी से मंचीय काव्य रचनाकारों को अच्छी रकम दे रहा था। ढेरों घिसे-पिटे चुटकलों और कहावतों को थोड़ी सी तुकबंदी में बांधकर कवि महोदय हास्य बिखेर रहे थे और वाह-वाही लूट रहे थे। इतना ही नहीं बहुतों ने तो मंचीय शोहरत को राजनीति में अच्छा खासा भुनाया था। अतः जहाँ विनय के पिता का मानना था कि विनय का शायरी अनुराग उसे एकाग्रचित होकर कारोबार में नहीं लगने दे रहा है। वहीं विनय की समझ में यह भी दौलतमंद होने का एक नया रास्ता था। इसीलिए वे काव्य गोष्ठियों और मित्र मण्डली से जुड़े रहते थे।

एक सुबह जब मिस्टर विनय कार्यालय जाने की तैयारी में थे और नाश्ता कर रहे थे तो उनके निजी नौकर राकेश ने साहित्यिक पुरस्कार के विज्ञापन की बात उन्हें बताई और अखबार भी दिखाया। मिस्टर विनय ने उस पर ध्यान न दिया। उनकी निगाह बड़े पुरस्कारों पर थी। इतना पैसा तो उनका चार-छः दिन का जेब खर्च था।

सात-आठ दिन बाद शहर में एक काव्य गोष्ठी का आयोजन था। विनय ऐसे कार्यक्रमों के प्रयोजक रहते थे। अतः उन्हें विशेष आग्रह के साथ बुलाया जाता था और वे जो भी बोले जैसा भी बोले उनकी मित्र मण्डली वाह-वाही में कंजूसी नहीं करती थी। उस रोज भी सुबह से ही फोन आने शुरू हो गए थे और विनय राकेश को हिदायत दे गए थे कि उनके कपड़े जूते आदि ठीक करके रख दें। वे गोष्ठी में जाएँगे। इसके लिए उन्होंने सुबह ही पिताजी से थोड़ा बजट भी स्वीकृत करा लिया। शाम को ठीक सात बजे विनय गोष्ठी स्थल पर पहुँच गए।

सदैव की भाँति विनय का काव्य पाठ उनकी मित्र मण्डली की राय में प्रभावी रहा। मित्रों ने उन्हें खूब सराहा। तभी एक मित्र पूंछ बैठे–''विनय तुमने वह तुलसी देवी साहित्य संस्था का विज्ञापन देखा?''

विनय ने बड़ा उपेक्षित सा जवाब दिया तो मित्रों ने उन्हें पुरस्कार के महत्त्व को समझाने का प्रयास किया। विनय उनकी बात सुन घर लौट आए। उनकी दृष्टि में इतना कम पैसा लेना उनकी प्रतिष्ठा के प्रतिकूल था और

ऐसी छोटी-मोटी संस्थाओं के दिए सम्मान का महत्त्व ही क्या? इधर विनय यह सब विचार रहे थे और उधर उनकी मित्र मण्डली का उन्हें आवेदन कराने का कुछ अलग ही उद्देश्य था। मित्रगण का मानना था कि विनय एक बार प्रविष्टि भेज दें तो उनकी एक दिन की दावत पक्की हो जाय। उसे पुरस्कार नहीं मिलना है यह तो वे भी जानते थे। इन्हीं सबने मिलकर तो पिछले वर्ष जोर डाल कर विनय का एक काव्य संग्रह प्रकाशित कराया था। जिसमें कविता कहने लायक शायद ही कोई रचना थी। यही विनय की एक मात्र पुस्तक थी जिसे पुरस्कार के लिए भेजा जाना था। मित्रों ने फोन पर और घर आकर विनय को सम्मान के महत्त्व को बार-बार समझाना शुरू किया। कोई कहता—''देखो भाई पैसे का महत्त्व अधिक नहीं है। बड़ी चीज है सम्मान। इसी से इन्सान की पहचान बनती है।''

दूसरा कहता—''पच्चीस हजार का इनाम भी छोटा इनाम नहीं है। लोग दो-दो चार-चार हजार के लिए लाइन लगाए रखते हैं।''

तीसरे ने समझाया—''बड़ा इनाम भी उसी को मिलता है जिसे पहले छोटे मिले होते हैं। कहीं भी सम्मानों के क्रम को देखो यही बात समझ में आती हैं।''

एक मित्र ने कहा—''जब किसी रचना को पुरस्कार मिल जाता है तभी वह चर्चा में आती है और चर्चा से ही रचनाकार की पहचान बनती है। अब अधिक सोच विचार न करो कल ही प्रविष्टि भेज दो। कहीं देर न हो जाय।''

इन सब मशविरों को सुनकर विनय का मन भी कहने लगा कि बड़े पुरस्कार का रास्ता छोटे से होकर ही जाता है। अगले ही रोज विनय ने अपनी एकमात्र रचना ''अमीर-गरीब भाई-भाई'' को तुलसी देवी साहित्य संस्था पुरस्कार हेतु प्रविष्टि भेज दी। उसी शाम उनकी मित्र मण्डली ने उनसे टी पार्टी ली और अगली बड़ी पार्टी देने को तैयार रहने के लिए आगाह कर दिया। विनय को भी प्रविष्टि भेजने के बाद अच्छा महसूस हो रहा था और मन में पुरस्कार की उम्मीद भी जग रही थी।

हताषा, निराशा, उम्मीद

ठीक चार माह बाद तुलसी देवी साहित्य संस्था की पुरस्कार योजना का परिणाम अखबार में आया। इसे सुबह सबेरे श्याम बाबू ने पढ़ा। उन्होंने गौर से देखा पुरस्कार पाने वालों में उनका नाम नहीं था। पुरस्कार घोषणा के बाद की चिरपरिचित उदासी ने उन्हें घेर लिया। उन्होंने अखबार लपेट कर मेज पर रख

दिया और चाय की प्याली उठाकर शून्य में देखते हुए चुपचाप चाय पीने लगे। कुछ देर बाद वे छड़ी उठाकर घूमने निकल गए और घंटों इधर-उधर भटकते रहे। जब घर लौटे तो बेटा दफ्तर और बच्चे स्कूल जा चुके थे। श्याम बाबू सीधे अपने कमरे में चले गए। घर के शेष सदस्यों ने उनसे बात करने का साहस न किया क्योंकि अब तक वे उनकी उदासी का कारण जान चुके थे। श्याम बाबू अलमारी के पास अपनी रचनाओं को एक के बाद एक पलट रहे थे। उन पर बड़े-बड़े साहित्यकारों के आशीर्वचन लिखे हुए थे। मित्रों के उत्साहित करने वाले उद्गार थे। परन्तु उनमें से कुछ भी फलित न हुआ। उन्हें लगा कि अब शायद वे इससे बेहतर रचना नहीं लिख पाएँगे। उनका मन खिन्न हो गया। वे आँखें बंद कर बिस्तर पर लेट गए।

पुरस्कार योजना का परिणाम दोपहर में सुभाष ने देखा। विगत एक माह से उसने दोपहर में अखबार पढ़ना शुरू कर दिया था। इस समय वह कुछ अधिक समय अखबार पढ़ लेता था। पिछले एक सप्ताह से उसकी बेचैन निगाहें अखबार में एक ही चीज ढूँढ़ रही थी और वह थी तुलसी देवी पुरस्कार योजना का परिणाम। आज यह उसे मिल गया था। उसने आँखें मलकर, आँखें फाड़कर और सिर को खुजलाते हुए कई बार इसे पढ़ा पर उसे अपने बापू का नाम कहीं नजर न आया। फिर भी सुभाष के मन ने भरोसा न छोड़ा और श्याम को जाते समय वह अखबार अपने साथ ले गया।

रात में खाने के बाद जब सुभाष के माँ-बापू आराम के लिए लेट गए तो सुभाष अखबार लेकर गुरूजी के पास पहुँच गया। उसके मन में अभी भी आशा थी कि शायद गुरूजी कोई रास्ता सुझा दे। वे इसे बेहतर समझ सकते हैं।

सुभाष जब गुरूजी के घर पहुँचा तो वे एक धार्मिक पुस्तक पढ़ रहे थे। सुभाष को आया देखकर उन्होंने पुस्तक एक किनारे रख दी और सुभाष को बैठने का इशारा किया। सुभाष गुरूजी को चरण स्पर्श कर पास रखे स्टूल पर बैठ गया। गुरूजी सुभाष से उसके परिवार और प्रेस आदि के विषय में बातें करने लगे। कुछ देर बाद सुभाष ने अखबार निकाल कर गुरूजी के सामने रख दिया और परिणाम की घोषणा वाला पन्ना खोलकर दिखाया। एक बार तो गुरूजी को लगा कि सुभाष के बापू को इनाम मिल गया है। परन्तु जब घोषणा में कोई और ही नाम नजर आया तो उन्होंने सुभाष को देखा। सुभाष बोला—''गुरूजी परिणाम में बापू का नाम नहीं है। इसका मतलब इनाम उन्हें नहीं मिला।''

गुरूजी बोले–"हाँ इसका तो यही मतलब है और तुमने तो स्वयं इसको पढ़ा होगा।"

"पढ़ा है गुरूजी! मैं आपसे यह जानना चाहता था कि क्या अब और कोई उपाय नहीं है?"

"कैसी नासमझी की बातें करते हो। तुम्हें स्कूल के इनामों की याद नहीं है। जो प्रथम आया उसी को मिल गया। बाद में उसको बदला नहीं जा सकता यहाँ भी बहुत से लेखकों ने अपनी किताबें भेजी होंगी। जिसकी सबसे अच्छी रही उसे इनाम मिल गया।"

सुभाष का चेहरा उतर गया। उसकी आँखों में आँसू छलक आये। वह सिर झुकाए पैरों से जमीन खुरचने लगा। थोड़ी देर की चुप्पी के बाद गुरूजी सुभाष को दिलासा देते हुए बोले–"इसमें इतना दुःखी होने की बात नहीं है। तुम्हारे बापू कहाँ बहुत पढ़े हैं जो इतना बड़ा इनाम पा जाते। तुमने अपने बापू की किताब को छपवा लिया और पुरस्कार के लिए भेजा यह भी कम बड़ी बात नहीं है। इनाम सबको नहीं मिलता है।"

सुभाष थोड़ा संयत होकर बोला–"गुरूजी मैं बापू को खुश करना चाहता था।"

गुरूजी–"पर इनाम देना तो तुम्हारे हाथ में नहीं हैं। तुम बापू की सेवा करो उनके लिए यही बड़ा इनाम है। लक्ष्मी, लक्ष्मी को खींचती है। वह हम गरीबों के यहाँ नहीं आती। जाओ अब घर जाओ और आराम करो।"

सुभाष घर आकर सो गया। अगले दिन वह काम पर नहीं गया। गाँव और खेत खलिहानों में घूमता रहा। दिन ढले घर लौटकर आया तो उसकी नजर सामने खिड़की में रखे अखबार पर टिक गई। वह जमीन पर पैर फैलाकर बैठ गया और देर तक एक के बाद एक अखबार के पन्ने पलटता रहा। फिर उसने अखबार समेट कर एक ओर रख दिया। वह देर तक अपलक बान बुनते बापू और बर्तन माँजती माँ को देखता रहा। उसने घर की टूटी खपरैलों को गर्दन घुमाकर इधर से उधर तक देखा और फिर बाहर जानवरों के उजड़े बाड़े को। सुभाष का मन गहरे दुःख और निराशा से भर गया। वह देर तक जड़वत बैठा रहा।

विनय बाबू कारोबार के सिलसिले में बाहर गए हुए थे। तभी एक दिन एक फोन आया। जिसे राकेश ने सुना। यह तुलसी देवी साहित्य संस्था से यह बताने के लिए था कि इस वर्ष संस्था का साहित्यिक पुरस्कार का प्रथम पुरस्कार विनय बाबू को मिला है उनकी रचना का इसके लिए चयन हुआ है। राकेश को एकाएक इस पर विश्वास न हुआ। वह भले ही कम पढ़ा था पर कविता की थोड़ी समझ उसे थी। बचपन में गुरूजी कविताओं का सस्वर पाठ कराते थे।

बच्चे उन्हें याद कर सुनाते थे। इसी से राकेश जानता था कि कविता में लय होना जरूरी है और विनय बाबू की कविताओं में लय का अभाव होने के कारण वह मन ही मन उनका उपहास करता था। मुँह से कह नहीं सकता था क्योंकि इसी नौकरी से उसका पूरा परिवार पलता था। राकेश ने इस फोन को विशेष महत्त्व न दिया। उसके ख्याल से यह विनय बाबू के किसी मित्र की शरारत भी हो सकती थी क्योंकि उनकी मित्र मण्डली में इस तरह के मजाक होते रहते थे। अतः जब विनय बाबू लौटे तो उसने धंधे से संबंधित फोन और खबरों को विनय को बता दिया और पुरस्कार वाले फोन का जिक्र ही नहीं किया।

करीब एक सप्ताह बाद राकेश विनय की डाक देख रहा था। वह व्यवसायिक महत्त्व के पत्रों को खोलकर उनकी मेज पर रख रहा था। तभी उसके हाथ में एक गुलाबी रंग का लिफाफा आया जो पुरस्कार योजना से संबंधित था। राकेश ने इसे खोला। उसमें पुरस्कार की घोषणा और एक माह बाद संस्था के वार्षिक जलसे में विजेताओं को सम्मानित किए जाने की सूचना दी गई थी। इस पर राकेश अविश्वास नहीं कर सकता था और अब अखबार में छपी पुरस्कार घोषणा को ढूँढ़ना भी उसके लिए अनिवार्य हो गया। उसने पूरे घर में अखबार की खोज की पर मिल न सका। क्योंकि इस घर में अखबार एक दिन का ही मेहमान रहता था। अगले रोज रसोइया, मेहरी या और कोई भी उसे झाड़ने-पोंछने के लिए इस्तेमाल कर लेता था। अखबार मिले न मिले पुरस्कार की खबर को अब विनय बाबू को बताना ही था। विनय अपने एक मित्र के साथ बैठे चाय पी रहे थे तभी राकेश ने पुरस्कार वाला लिफाफा विनय बाबू को दिखाया। विनय ने खोलकर देखा और मित्र की ओर बढ़ा दिया। मित्र पढ़कर उछल पड़े। उन्होंने जोरदार शब्दों में मित्र को बधाई दी। परन्तु धनराशि अपनी प्रतिष्ठा के अनुरूप न होने से विनय अधिक प्रसन्न न हुए। पर उनकी मित्र मण्डली में यह खबर तेजी से फैल गई। विनय को बधाई के फोन पर फोन आने लगे और दो दिन बाद सब मित्रों ने विनय के घर एक काव्य गोष्ठी का आयोजन कर लिया। जिसमें मित्रों ने खूब बढ़-चढ़ कर विनय की प्रशंसा की और जम कर चाय नाश्ता उड़ाया।

पुरस्कार ग्रहण के दिन विनय की पूरी मित्र मण्डली उनके साथ थी। उन्हें बड़े शायर जैसा सजाया गया था। मित्रों ने विगत तीन-चार दिन से उनके भावों को इस तरह उकसाया था कि वे अपने अंदर एक महान साहित्यकार महसूस करने लगे थे। जिस कारण उनके हाव-भाव, चाल ढ़ाल और बात करने का सलीका एकदम शायराना हो गया था।

शाम सात बजे ऊँचे सजे मंच पर विनय बाबू को फूल-माला पहनाकर और दुशाला उठाकर प्रशस्ति पत्र और पच्चीस हजार नकद देकर एक नेताजी ने पुरस्कृत किया। मंच संचालक विनय द्वारा संस्थाओं को दिए जाने वाले आर्थिक अनुदानों को उच्च स्वर में ब्योरेबार बता रहे थे और भविष्य में उनसे अपनी संस्था पर भी इसी प्रकार की अनुकंपा बनाए रखने की आशा व्यक्त कर रहे थे। उनके मित्र आगामी पंक्ति में बैठे हर्षनाद और करतल ध्वनियों से उनका उत्साहवर्धन कर रहे थे।

जलसा समाप्त हुआ। सब अपने गन्तव्यों को लौटने लगे। विनय बाबू ने माला, दुशाला और प्रशस्ति पत्र राकेश को थमा दिया। राकेश ने उन्हें सम्भाल कर बैग में रख लिया और घर की ओर रवाना हो गया। नकद राशि का लिफाफा विनय बाबू ने अपने कुरते की जेब में रख लिया। वे मित्र मण्डली के साथ गाड़ी में बैठकर शहर के सबसे महंगे होटल की ओर चल पड़े।

होटल के बड़े से पंडालनुमा हाल में एक बड़ी मेज पर बैठे दस-बारह दोस्त हँसते, बतियाते, ठहाके लगाते पैग पर पैग ले रहे थे। वे कभी विनय की तारीफों के पुल बांधते तो कभी बुजुर्ग प्रतिष्ठित साहित्यकारों का उपहास करते। वे विमर्शों की चर्चा करते हुए उनमें किसी एक के साथ जुड़ जाने की विनय को सलाह दे रहे थे। एक ने कहा—''अब जितनी जल्दी हो अगली किताब छपवानी चाहिए और अगली प्रविष्टि के लिए तैयार रहना चाहिए।'' विनय उनकी हाँ में हाँ मिलाते हुए व अपनी उपलब्धि पर मंद-मंद मुस्कुराते हुए उनका साथ दे रहे थे। बैरा भोजन सूची रख गया था। सबने अपनी-अपनी पसंद का खाना मंगवाना शुरू किया। एक से बढ़कर महँगा और लजीज खाना मंगवाया जा रहा था। इस खुशी के मौके पर खाने में कंजूसी दिखाकर कोई भी मित्र बधाई देने में कंजूस कहलाना नहीं चाहता था। विनय भी पूरे जोश में उन्हें अधिकाधिक खाने के लिए उकसा रहे थे। आधी रात बीतते तक दावत समाप्त हो गई। बैरा बिल लेकर आ गया। जो सत्ताईस हजार कुछ सौ का था। विनय ने उसे दो बार पलट कर देखा। विनय का नशा थोड़ा हल्का होने लगा था। उन्होंने कुरते की जेब से इनाम के पच्चीस हजार निकाल कर ट्रे में रख दिए। फिर जाकेट की अंदर वाली जेब में हाथ डालकर रुपए निकाले। उनमें से हजार-हजार के तीन नोट ट्रे पर और रख दिए। कुछ देर बाद बैरा सौफ इलायची और बिल भुगतान रसीद ट्रे में रख लाया। विनय इलायची मुँह में रखते हुए उठ गए। उनके सम्मान राशि की इतिश्री कर उनकी मित्र मण्डली भी उठ गई।

स्वर्ग में बैठी तुलसी देवी की आत्मा आँसू बहा रही थी। तुलसी देवी छायावादी युग की शिक्षित महिला थीं। स्वयं रचनाकार न होते हुए भी साहित्य के प्रति अनुरक्त थीं। उन्होंने विरासत में खूब धन सम्पदा पाई थी। उसी में से थोड़ी धनराशि एक साहित्यिक पुरस्कार योजना के लिए रख छोड़ी थी। उनका मन धन के अभाव में कुंठित होती प्रतिभाओं को प्रोत्साहित करना था। परन्तु उनकी पीढ़ियां धन के महत्त्व को समझ गई थी। वे उसे ऐसी शख्सियत पर लगा रही थीं जहाँ से देर सबेर वापसी की संभावना हो।

कौन जनम का नाता

सुवर्णा घर से कुछ ही दूर आई थी कि घनी छाई काली बदली ने मोटी-मोटी बूँदें गिरानी शुरू कर दी। यही बदली कुछ देर पहले मन को लुभा रही थी, सैर सपाटे को उकसा रही थी और अब घर से निकाल कर मानों मुँह चिढ़ाने लगी। सुवर्णा के कदम उसी गति से तेज हो रहे थे जिससे वर्षा। चंद सेकिंडों में ही आड़ी मोटी तेज बूँदें बदन में सुई की तरह चुभने लगी और सुवर्णा ने दौड़ लगानी शुरू कर दी। एक बार मन ने चाहा कि लौट पड़े। पर सामने इस गली के पार ही रिक्शा की उम्मीद ने उसके इरादे को बदल दिया। जब एक गली पार करते ही मयके का रास्ता मिल रहा हो तो भला दो गली लौटकर ससुराल जाने का किसका दिल होता है? हर ऊँचाई पर पहुँचकर भी अभी भारतीय समाज में मयका नारी के लिए लुभावना बना हुआ है। भले ही लालच न हो पर आनंद तो है ही। चंद घंटो या दिनों में ही वह पूरा बचपन जी लेती है। सुवर्णा ससुराल से मौसी के घर जाने को निकली थी और बदली ने ऐसा उत्पात मचा दिया। परन्तु वह पीछे न मुड़ी। कीचड़ भरी गली में कदमों को साधती, पल्लू से सिर को ढ़कती और बीच-बीच में तेज हवा में उड़ती साड़ी को सँवारती मुख्य सड़क तक आ पहुँची। पीछे से आते रिक्शे को रोक उसमें बैठ गई। यह समय रिक्शे वाले से पैसे तय करने का नहीं था, बस एक ही लालसा थी कि वह सुरक्षित यथाशीघ्र गन्तव्य तक पहुँचा दे। दस ही मिनट में सुवर्णा मौसी के घर के सामने उतर गई। सुवर्णा ने रिक्शे वाले को बीस का नोट दिया। उसने भीगे हाथों से जेब टटोली। बोला-''खुले नहीं है जी मेरे पास।'' सुवर्णा ने उसे नोट रखने का इशारा करते हुए कहा–''जाओ-जाओ।''

सुवर्णा दो सीढ़ियाँ चढ़ कर घर के दरवाजे पर खड़ी हो पल्लू निचोड़ने लगी। उसने प्रभा-प्रभा दो तीन तेज आवाजें लगाई। घंटी बजाने का कोई लाभ नहीं था। यह शहर बिजली की बचत में इनाम पाने के योग्य है। बस दुर्भाग्य है कि अभी इस क्षेत्र में किसी पुरस्कार की कोई योजना बनी नहीं है। सुबह-शाम पाँच बजे से दस बजे तक और दोपहर व रात्रि में तीन-तीन घंटे लाइट कट का यहाँ पुराना नियम अनवरत रूप से जारी है। इस घोषित कटौती के अतिरिक्त कभी भी कितनी भी अघोषित कटौती की बिजली विभाग को पूरी छूट है। शेष मौकों को भी गँवाया नहीं जाता। आँधी बारिश की आशंका मात्र से ही लाइट काट दी जाती है। सुवर्णा अभी यह विचार ही रही थी कि प्रभा ने आकर दरवाजा खोल दिया। ''अच्छा, तो बहन जी सुबह से इसी इंतजार में थी कि कब बारिश हो और मैं भीगती हुई निकलूँ।'' प्रभा ने हँसकर कहा। ''नहीं ऐसा इंतजार तो नहीं था। बस बहुत दिनों से बारिश में भीगी नहीं थी। बदली ने वही कसर पूरी कर दी है। इतना बोलते हुए वह बरामदे में पहुँच गई।''

प्रभा ने कुर्सी आगे सरका दी। तभी प्रभा को ख्याल आया ''पहले कपड़े तो बदल लो जी। बैठोगी कैसे?'' प्रभा ने एक जोड़ा कपड़े लाकर सुवर्णा को दे दिए। सुवर्णा पर्स रखकर बाथरूम में चली गई।

कुछ देर बाद सुवर्णा ने बाथरूम से निकल कर गीले कपड़े बरामदे में फैला दिए और बालों को तौलिए से रगड़कर कमर पर फैला लिया। वह कुर्सी पर आराम से बैठ गई। तब तक प्रभा दो कप चाय लेकर आ गई। एक कप सुवण ार्ा को पकड़ा कर दूसरा कप खुद लेकर उसके पास वाली कुर्सी पर बैठ गई। बातों का सिलसिला शुरू हो गया। प्रभा और सुवर्णा बचपन से साथ खेली, रही थी। हम उम्र थीं। इसी से उनकी बातें बेतकुल्लुफ होती थीं। जिसमें जोरदार ठहाके, फुस्फुसाकर बोलना, तेज बोलना या बीच-बीच में किसी बालक को आवाज लगाकर कोई काम बता देना या बातों में शामिल कर लेना सब कुछ शामिल था। बातों का विषय भी घर या रिश्तेदारी में जन्मा नवजात से लेकर भगवान को प्यारे हो गए दो तीन पीढ़ी पुराने बुजुर्ग तक कोई भी हो सकता था। चचेरे, फुफेरे, ममेरे भाई बहनों को भी याद किया जाता था। कुछ देर बाद भाभी रिचा भी आकर बैठ गई। खाने की तैयारी करते हुए वह भी बातों में भागीदारी करने लगी। थोड़ी देर में एक लगभग पैंतीस साल की युवती रिचा के सामने से बिनी दाल उठा ले गई और सब्जी काटने को रख गई। उसने हल्की सी झुककर सुवर्णा को नमस्ते की। ''खुश रहो।'' कहते हुए सुवर्णा ने

आशीर्वाद में हाथ उठा दिया। इसी के साथ सुवर्णा को लगा कि यह चेहरा इस घर में नया है। उसने रिचा से पूंछा—''यह कौन है?''

स्तुति दाल उठाकर रसोई में आ गई परन्तु प्रश्न जैसे उसकी पीठ पर चिपक गया। मैं कौन हूँ? यहाँ क्यों हूँ? आखिर मैं इनकी क्या लगती हूँ? जो मुझे बेटी मानते हैं। जिसने जन्म दिया और जिसकी गृहस्थ की गाड़ी मैंने अकेले पन्द्रह साल बगैर उफ किए खींची, मैं उसके घर में क्यों नहीं हूँ? जिस घर में भाई बहनों का हक बगैर एक पैसा दिए भी मौजूद है वहाँ अपनी कमाई का पाई-पाई माँ के हाथ में थमा देने के बाद भी मेरा क्यों नहीं? मैं घर से क्यों निकाल दी गई? जैसे प्रश्न स्तुति के मस्तिष्क को मथने लगे। वह असहज सी चौके में काम कर रही थी। पर मन यहाँ से पचास किलोमीटर दूर कस्बे के एक दो कमरे वाले छोटे से घर में भटक रहा था। वह वहीं तो जन्मी थी। सत्रह साल की उम्र में पिता के देहांत के बाद वह छोटी दो बहनों और भाई के लिए माँ जैसी बड़ी हो गई थी। पिता की पेंशन सबका पेट भरने को भी मुश्किल से थी। शेष जरूरतों के लिए माँ पास के कपड़ा मिल में आठ-दस घंटे कड़ी मशक्कत करती थी। स्तुति ने इण्टर में गणित में विशेष योग्यता हासिल कर विद्यालय में द्वितीय स्थान पाया था। तीन साल स्नातक करने के बाद पहले प्राइवेट और फिर ट्रेनिंग के बाद सरकारी स्कूल में नौकरी पा ली। नौकरी मिलते ही उसने माँ को काम पर जाने से मना कर दिया। क्योंकि माँ का स्वास्थ तीन सालों में ही बहुत गिर गया था। फिर किसी का घर रहना भी जरूरी था।

स्तुति की दिनचर्या दिनों-दिन व्यस्त होती चली गई। भाई बहनों के बड़े होने के साथ उनके खर्च भी बड़े होने लगे और माँ को तीन बेटियों की शादी की एक बड़ी जिम्मेदारी ने घेर लिया। स्तुति सुबह पाँच बजे उठती तो रात ग्यारह बजे तक उसे साँस लेने की फुर्सत न मिलती। बैच के बैच ट्यूशन। सुबह शाम यही सिलसिला। दिन भर स्कूल और जरा समय मिलते ही माँ की देखभाल व भाई-बहनों की समस्याओं को निबटाना। धीरे-धीरे उसने आय का हिसाब रखना भी छोड़ दिया। किस बैच में कितने छात्र-छात्राएँ पढ़ते हैं? कौन कब कितना पैसा देता है? पैसे को कहाँ खर्च करना है यह पूरा दायित्व माँ ने सम्भाल लिया। स्तुति का विषय गणित था। जहाँ पढ़ने वालों की कमी नहीं थी। बस कमी थी तो दिन में घंटों की। यदि उनमें चार छः घंटे और बढ़ाए जा सकते तो स्तुति निश्चय ही और अधिक पैसा कमाती।

स्तुति की माँ बीना उसकी सबसे खूब तारीफ करती। स्तुती इससे और अधिक पैसा कमाने और भाई बहनों के लिये साधन जुटाने को उत्साहित हो जाती। यदि कभी वह ढील भी देती तो माँ अधीर हो जाती। वह घर की जिम्मेदारियों की फहरिश्त गिनाने लगती। स्तुति सदैव सतर्क रहने का प्रयास करती और पैसा कमाने का छोटे से छोटा अवसर भी हाथ से जाने न देती। पहले साल में ही स्तुती ने छोटी बहन और भाई का दाखिला इंग्लिश मीडियम स्कूल में करा दिया। मझली बी.ए. में आ गई थी। घर में खाने पहनने का स्तर सुधरने लगा। फर्नीचर में बढ़ोत्तरी होने लगी। साल दर साल बीना के गहने नए व वजनदार बनवाए जाने लगे। एक अच्छी बस्ती में बड़ा प्लाट खरीद लिया गया। पिता के देहांत का दुःख धीरे-धीरे कम होने लगा। मझली बहन का बी.ए. पूरा हुआ तो उसने एक छोटे स्कूल में नौकरी कर ली। वह जितना कमाती उससे अधिक खर्च करती। माँ का नियंत्रण उस पर अधिक न चल पाता। मन मर्जी से फैशन बनाती, घूमती और खाती। बीना को जल्दी ही समझ में आ गया कि उससे घर में मदद की कोई उम्मीद रखना व्यर्थ है। अतः उसने स्तुति की सलाह से उसकी शादी कर देने का मन बना लिया। गहने कपड़े की खरीदारी की जाने लगी और उसकी शादी कर दी गई। बीना ने जितना खर्च करने का सोचा था उससे भी कम में ही काम निबट गया। परन्तु बीना ने रिश्तेदारों और मिलने वालों को इस तरह समझाया कि जैसे वह कर्ज में दब गई है। अक्सर कहती रहती–''अभी गहना कपड़ा और फर्नीचर वालों का बहुत बकाया है। उतारते वर्षों लग जाएँगे। अभी दो तीन साल मैं स्तुति की शादी के बारे में सोच भी नहीं सकती।'' कभी स्तुति की संतुष्टि के लिए कहती–''स्तुति की शादी तो मैं ठीक ढंग से करूँगी। इतने कम में काम नहीं चलेगा।'' ''माँ को इतनी चिंता की आवश्यकता नहीं है। जब तक भाई किसी अच्छी नौकरी में नहीं आ जाता वह स्वयं ही शादी करने को तैयार नहीं है'', स्तुति सोचती।

समय अपनी गति से दौड़ता रहा और स्तुति अपने दायित्वों की पूर्ति में लगी रही। साल पर साल बीतते रहे। घर में स्तुति के लिए किसी रिश्ते की बात जोर से चलती और फिर अंतिम निर्णय तक पहुँचने से पहले ही समाप्त हो जाती। बीना ने उसके लिए इतने ऊँचे मानदण्ड निर्धारित कर लिए थे जो कि साधारण मध्यम परिवार में मिलने संभव नहीं थे और निम्न मध्यम परिवार से भला उच्च स्तरीय कोई परिवार संबंध जोड़ने को क्यों तैयार होता। बीना स्तुति की योग्यता को बहुत बड़ी बात मानती थी। परन्तु शादी में रंग रूप का

भी अपना एक महत्त्वपूर्ण स्थान होता है और योग्यता से भी अधिक लड़की का सौंदर्य उसे निम्न परिवार से उच्च परिवार में पहुँचाने में भूमिका निभाता है। बीना या तो इस बात से अनभिज्ञ थी या इस अनभिज्ञता को स्तुति की शादी टालते रहने के लिए इस्तेमाल करती थी। इसे उसके अतिरिक्त दूसरा नहीं जानता था। स्तुति तो रात दिन अधिक से अधिक पैसा कमाने, घर में सुख सुविधाएँ जुटाने और भाई-बहनों की समस्याएँ सुलझाने में लगी रहती। माँ के लिए एक अच्छा सा घर बनवाना, भाई को उच्च शिक्षा दिलवाना और बहन को अपने पैरों पर खड़ा करने जैसे कई लक्ष्य उसने स्वयं ही अपनी शादी से पहले पूरा करना अपने लिए निश्चित कर लिए थे। वह तन्मयता से उन्हें पूरा करने में जुटी रहती।

अच्छे इंजिनियरों व नक्शा नवीस की सलाह तथा उच्च स्तरीय इमारती सामान लगाकर दुमंजला मकान बनवाया गया। बीना ने उसे कुछ इस तरह डिजाइन कराया कि यदि बेटा कभी किसी कारणवश नौकरी न करना चाहे तो निचली मंजिल में अपना कारोबार कर सके और ऊपरी मंजिल में आराम से रहा जा सके। बीना की मकान की सोच पूरी तरह बेटे की जरूरतों के अनुरूप थी। बेटियों के भविष्य से जुड़ा एक कोना भी नहीं था । हाँ निचली मंजिल पर ही उसने एक बड़ा कमरा जिसमें उसकी बुढ़ापे की सब जरूरतें, भगवान के मंदिर सहित आ सकें बनवाया। भाई बारहवीं पास कर चुका था। वह तकनीकी प्रतियोगिताओं की तैयारी कर रहा था और बहन पढ़ने के लिए बाहर चली गई थी। बीना मकान के काम में स्तुति से अधिक बेटे की सलाह को महत्त्व देती। स्तुति की व्यस्तता उसे इस ओर से और उदासीन बना देती।

छोटी बहन ने एम.एड. कर एक डिग्री कॉलेज में नौकरी पा ली। मकान पूरा हुआ। परन्तु भाई दो साल की तैयारी के बाद भी कहीं ठीक जगह न पा सका। वह कोई व्यापार करने की बात सोचने लगा और बीना उसके लिए पैसे इकट्ठे करने लगी। वह दोनों लड़कियों की शादी भी एक साथ निबटाने की बात कहती और समय-समय पर थोड़ा गहना खरीदती कभी छोटी के लिए तो कभी बड़ी के लिए। परन्तु जहाँ भी रिश्ते की बात चलती लोग छोटी में अधिक रुचि लेते। बहुत जल्दी ही उसका रिश्ता एक अच्छे घर में तय हो गया। लड़का बैंक में कार्यरत था। बीना ने बेटी की पढ़ाई व सुन्दरता का पूरा लाभ लिया। बहुत कम दहेज और एक सोने के सैट के साथ बेटी बिदा हो गई। शादी का शेष खर्च बेटे वालों ने खुशी-खुशी उठाया। छोटी बेटी की बिदाई के साथ ही घर में

शादियों की चर्चा कुछ समय के लिये लगभग खत्म हो गई। स्तुति की दिनचर्या पूर्ववत चलती रही। भाई प्रवेश अपने लिए व्यापार की दिशा खोजने लगा।

एक दोपहर स्तुति थोड़ी फुर्सत में थी। माँ के साथ बैठी बातें कर रही थी। प्रवेश काफी देर से घर में नहीं था। स्तुति ने बीना से उसके विषय में पूंछा। वह बोली—''कई दिनों से परेशान है। तुम्हें तो उससे बात करने की फुर्सत ही नहीं है।''

''क्या परेशानी है?'' स्तुति ने पूंछा।

''यही कम्प्यूटर सेंटर खोलना चाहता है। परन्तु कोई ठीक जानकार मिल नहीं रहा है। उसके दोस्त ने एक बताया है। कल भी गया था मिला नहीं। आज भी उसीसे मिलने गया है।'' बीना की बात अभी पूरी भी नहीं हुई थी कि प्रवेश आ गया।

स्तुति ने आते ही प्रश्न किया। कहाँ से आ रहे हो? प्रवेश ने वही बताया जो बीना पहले ही बता चुकी थी। स्तुति ने अगला प्रश्न किया—''जिस काम को तुम नहीं जानते उसे कैसे करोगे?''

प्रवेश—''बस यह आदमी तैयार हो जाय। काम तो इसी को करना है। मुझे तो पैसा लगाना है सैट खरीदने में।''

''और तुम पैसे वाले हो ही।'' स्तुति ने थोड़े व्यंग और नाराजगी से कहा। प्रवेश शायद उसकी बात ठीक से समझ नहीं पाया। उसे देखता रहा।

स्तुति ने बात को स्पष्ट करते हुए कहा—''दूसरे के कंधे पर रखकर बंदूक नहीं चलाई जाती है। जब वह दो दिनों में मिल भी नहीं पाया तो आगे काम कैसे करेगा? कहीं भी पैसा लगा देना आसान है वसूलना बहुत मुश्किल। वहीं काम करना चाहिए जिसकी हमें जानकारी हो।''

प्रवेश ने बीना की ओर देखा। बीना ने उसका पक्ष लिया—''काम करने लगो तो आ भी जाता है।''

स्तुति—''हरेक काम करने लगो से नहीं आ जाता है। बहुत से काम दिमाग से सीखे जाते हैं और वे उतने ही आते हैं जितनी ऊपर वाले ने हमें बुद्धि दी है।''

बीना को बेटे की बुद्धि पर कटाक्ष अच्छा न लगा। उसने स्तुति का विरोध करते हुए कहा—''तो तुम ही बताओ इसकी बुद्धि किस काम के लायक है।''

स्तुति—''बुद्धि को लायक बनाना पड़ता है। जो काम करना चाहता है पहले साल दो साल मन लगाकर उसे सीखे।'' इस संबंध में जानकारी न होने से बीना कोई तर्क न कर पाई। उसने दूसरा मुद्दा पकड़ लिया। बोली—''सुबह

से भूखा प्यासा दौड़ा रहा है और तुम परेशानी बूझने के बजाय उल्टा कमियाँ गिना रही हो। तुम्हारे पास इतने बच्चे आते हैं। उनके घरों में कितने तरह के काम हैं। तुम्हीं कोई रास्ता क्यों नहीं ढूँढ़ती ?''

स्तुति–''मुझसे कोई सलाह ले तब तो। बगैर बताए ही सेंटर खोल कर बैठ जाओगे तो मैं क्या करूँगी?''

प्रवेश कुछ भुनभुनाता सा कमरे में चला गया और बीना उसके लिए खाना लगाने लगी। प्रवेश को लेकर शायद यह पहला अवसर था जब स्तुति ने बीना की बात का विरोध किया था। स्तुति कुछ देर बाद अपनी दिनचर्या में व्यस्त हो गई।

स्तुति अपने जानकारों से प्रवेश को क्या काम कराना है इसकी चर्चा करती तो कोई रेडीमेट गार्मेंट व कोई इलैक्ट्रानिक्स के सामान की दुकान खुलवाने की बात कहता। बहुत से उसे आगे पढ़ाने का मशविरा देते। कोई बाहर कहीं काम सीख आने की बात कहता। घर में सलाह होती तो उसका निष्कर्ष यही निकलता कि बीना बेटे को अपने से अलग भेजना नहीं चाहती और कुल मिलाकर घर में ही कोई काम कर लेने पर बात खत्म हो जाती। लगभग साल भर की जिद्दो-जहद के बाद प्रवेश के लिए फर्नीचर का शोरूम खोल लेना तय हुआ। स्तुति के एक छात्र के पिताजी यह काम कर रहे थे। उनकी दुकान मुख्य बाजार में थी। उन्होंने कुछ पूँजी नकद व थोड़े उधार से सामान देना स्वीकार लिया। गली के नुक्कड़, घर और मुख्य सड़क पर चार छः 'स्टायलिश फर्नीचर शो रूम' के बड़े-बड़े बोर्ड लगा दिए गए और अच्छा पैसा लगाकर प्रवेश को शोरूम खुलवा दिया गया।

शोरूम के उद्‌घाटन में भीड़ जुटी, मंत्रोचार हुआ मिठाई और पम्फलेट बंटे। कुछ आत्मीयजनों ने कुर्सी, स्टूल या छोटा रैक खरीदकर शुभ मुहूर्त कराया। सबसे बड़ी खरीददारी एक रीडिंग टेबुल लेकर स्तुति ने की। बीना को सबने बधाई दी। चार छः महीने लोग यूँ ही आते जाते रहे। वे दाम पूंछते, बतियाते और चले जाते। खरीदार की यह खास प्रवृत्ति होती है कि वह पाँच-दस जगह सामान देखता व दाम पूंछता है और अंत में खरीदारी के लिए मुख्य बाजार की ओर भागता है। फिर फर्नीचर की खरीदारी कोई रोज नहीं करता और जब कोई लम्बे समय के बाद अच्छा पैसा खर्च करता है तो उसकी संतुष्टि मुख्य बाजार से पहले नहीं होती है। इसी प्रवृत्ति के कारण प्रवेश की दुकान चलती सी लगते हुए भी चल नहीं रही थी। बीना पूरी तरह उसके प्रचार में लगी थी।

वह जहाँ भी जाती बेटे के शोरूम की अच्छाइयाँ गिनवाती, उसकी आमदनी हजारों रुपए प्रतिदिन की सुनाती। स्तुति भी कोशिश करती की उसके सम्पर्क के लोग प्रवेश के शोरूम से सामान खरीदें। इसके लिए समय-समय पर त्यौहारों पर छूट, किश्तों में पैसा देने की सुविधा और फ्री होम डिलीवरी जैसे प्रलोभन दिए जाते। परन्तु सारे उपाय लगभग बेअसर हो रहे थे। स्तुति को लगने लगा कि प्रवेश का काम शायद इसमें चल नहीं पायेगा और वह उसके लिए विकल्पों पर विचार करने लगी। पर एक दिन वह अवाक् रह गई जब माँ ने प्रवेश की शादी का जिक्र किया और दो तीन रिश्तों के बारे में बताया। वह कुछ बोली नहीं। अगले दिन वास्तव में जब वह घर लौटी तो ड्राईंग रूम में एक परिवार बैठा हुआ था। माँ ने उनके लिए कई प्लेटों में शानदार नाश्ता सजाया था। प्रवेश किसी कुशल व्यापारी सा उनसे बातें कर रहा था। स्तुति से भी उनका परिचय हुआ। स्तुति को अब एहसास हुआ कि माँ शोरूम के प्रचार के साथ ही प्रवेश की शादी की चर्चा भी लोगों से करती थी। जो मोटरसाइकिल और मोबाइल दो महीने पहले प्रवेश ने जिद्द करके स्तुति से ही खरीदवाएँ थे माँ ने उन्हें औरों के सामने शोरूम की आमदनी से खरीदा सिद्ध कर दिया था। जबकि सच्चाई यह थी कि वह पेट्रोल और मोबाईल चार्ज का खर्च भी नहीं निकाल पा रहा था।

मेहमानों के जाने के बाद बीना लड़की के गुणों, परिवार की सम्पन्नता और प्रवेश का उनपर प्रभाव को बताने लगी। स्तुति सुन रही थी। प्रवेश भी मुस्कराता हुआ आनंद ले रहा था। बीना ने कहा–''ऐसे चार पाँच रिश्ते हैं। इनमें जो भी तय हो जाय। प्रवेश की शादी कर मैं भी निबट जाऊँ।'' स्तुति को हल्का झटका सा लगा–''और मेरे लिए माँ की कोई जिम्मेदारी नहीं?'' पर बात मुँह पर न आ सकी। उसने कहा–''शादी तो कर लोगी पर खिलाओगी कहाँ से? आजकल की लड़कियाँ कम खर्च में काम नहीं चला पाती हैं। इसे कुछ कमाने तो दो।''

बीना–''घर में दो रोटियों का खर्च बढ़ जाने से कोई पहाड़ नहीं टूट पड़ेगा। इतनी कंगाली भी नहीं है। माँ का इशारा अप्रत्यक्ष रूप से स्तुति की आमदनी पर था।''

स्तुति ने माँ को फिर समझाने की कोशिश की–''माँ गृहस्थ में फसकर काम पर ध्यान लगाना मुश्किल होता है। एक तो वैसे ही उसका काम में मन नहीं है फिर इतनी बड़ी जिम्मेदारी। अभी तो इक्कीस साल का ही हुआ है।''

बीना भड़कर बोली—''हर काम की एक उम्र होती है। एक बार निकल गई तो फिर नहीं फब्ता। इक्कीस की उम्र कम नहीं है और क्या अभी जवानी आनी बाकी है। जिम्मेदारी जितना जल्दी निबटे उतना अच्छा है।'' स्तुति को लगा जैसे माँ ने उसी पर कटाक्ष किया। वह शांत हो गई। बीना कमरे में चली गई।

अब अकसर घर में आने वाले लोग प्रवेश की शादी का जिक्र करते, रिश्तेवाले आते, माँ और प्रवेश सलाह करते। कभी-कभी आधी-अधूरी बात स्तुति को भी बताई जाती। कभी वह चुप रह जाती और कभी माँ को समझाने का प्रयास करती कि वह प्रवेश को अपने पैरों पर खड़ा हो जाने दे। इस मुद्दे को लेकर माँ बेटी के बीच धीरे-धीरे तनाव बढ़ने लगा। प्रवेश स्तुति से कटा-कटा सा रहने लगा। ऐसे ही मौके पर जब स्तुति माँ को दलील दे रही थी कि बेकमाऊ से ब्याह कर कोई लड़की खुश नहीं रह सकती। बीना ने कटु वाक्यों में प्रत्युत्तर दिया—''भाई को बार-बार निखट्टू कहते शर्म नहीं आती। घर है, मेरे पास जो है और तेरे पास भी वह सब आखिर किसका है। क्या पैंतीस की उम्र में अभी शादी की लालसा बाकी है? चालीस पैंतालीस तक बच्चे पैदा करना और फिर पालती रहना अस्सी की होने तक। मन को एक तरफ रख। अब दो नावों पर सवार होकर कुछ नहीं मिलने वाला। ना यहाँ की रहेगी न ससुराल की।''

स्तुति जैसे आसमान से जमीन पर धम्म से आ गिरी। उसने शादी के संबंध में कभी स्वयं को छोटों का प्रतिद्वंदी नहीं सोचा था। पर आज माँ उसे बारह साल छोटे भाई के बराबर पंक्ति में खड़ा कर दिया। कुछ देर वह अचेत सी सोचती रही—''आखिर माँ उसके विपरीत क्यों हो गई। वह ऐसा क्यों सोच रही है कि मैं भाई से प्रतिद्वंदिता करूँगी। स्तुति ने उठकर मुँह को अच्छी तरह धोया। उसने शीशे में देखा उसकी आँखें सुर्ख लाल थी। शायद वह बहुत देर से किसी बड़े दुःख को अन्दर पीने का प्रयास कर रही थी।''

कुछ घंटो बाद घर का वातावरण शान्त हो गया। बीना पहले की तरह हँसकर बात करने लगी। स्तुति बच्चों को पढ़ाने बैठ गई और प्रवेश शोरूम के सामने घूम-घूम कर तेज आवाज में मोबाइल पर बातें करता हुआ व्यस्त व्यापारी सा दिखने लगा। परन्तु यह बाहरी वातावरण था जो सामान्य लग रहा था। स्तुति के मन में जो तूफान उठा वह शान्त होने का नाम नहीं ले रहा था—''माँ ने आज उसे छोटों की बड़ी न रहने दी। उनकी बराबरी पर ला दिया। माँ ने आखिर उसे इस तरह नजरंदाज क्यों किया? पिता जीवित होते तो क्या उसके साथ ऐसा हो सकता था? शादी करने, घर बसाने की लालसा तो हर साँसारिक

में होती है। अगर उसने जिम्मेदारियों के लिए उसे महत्त्व न दिया तो क्या उससे यह अधिकार छीनना माँ को शोभा देता है? काश मैं माँ की सौतेली बेटी होती तो दुःख इतना गहरा न होता। आसानी से सह लिया जाता। पर यह तो मेरी अपनी माँ है। सगी माँ।'' स्तुति जितना अधिक सोचती उतनी ही उलझती जाती। हार कर उसने बच्चों की छुट्टी कर दी और अनमनी-सी पार्क की ओर घूमने निकल गई। वहाँ भी उसका मन शांत न हुआ। घर लौटकर, लेटकर एक पत्रिका पढ़ने लगी। कुछ देर सोई। उठी तो फिर वही अशान्ति मन पर छा गई।

चार, छः दिन की उहापोह ने स्तुति को एक अहम् फैसले तक पहुँचा दिया। उसने मानस को फोन किया और उसे अपनी सहमति सुना दी। मानस पिछले पाँच साल से स्तुति से शादी का प्रस्ताव रख रहा था और वह अपनी जिम्मदारियों का बहाना बनाकर उसे टाल रही थी। परन्तु अब उसने महसूस किया कि जब माँ अपनी जिम्मेदारियों से निवृत हो रही है तो वह क्यों नहीं? अगले सप्ताह ही स्तुति और मानस ने कोर्ट मैरिज कर ली, चुपचाप। परन्तु ऐसी खबरों को किसी मीडिया की आवश्यकता नहीं होती। वे फैलती हैं हवा के झोकों जैसी और जिन घर, परिवारों से ये जुड़ी होती हैं वहाँ तक का सफर बहुत जल्दी तय कर लेती है। सो करीब एक माह के बीतते तक स्तुति की शादी की खबर बीना तक पहुँच गई। घर में कोहराम मच गया।

शहर की घुटन भरी संध्या थी। गलियों और मंजिलों को पार कर आँगन में पहुँचना हवा के लिए मुश्किल था। स्तुति ने अभी कुछ देर पहले बच्चों की छुट्टी की थी। वह आँगन में टेबल फैन के सामने बैठी पेपर पलट रही थी। उसे यही आधे घंटे का समय सुबह से अब फुर्सत का मिलता था। इसके बाद वह एक बैच और पढ़ाकर खाना खाती और कुछ देर टी.वी. देख कर सो जाती थी। पड़ौस के वर्मा जी सपरिवार ड्राईंगरूम में बैठे थे। बीना उनके लिए चाय बनाकर ले गई और एक कप स्तुति को भी थमा गई। वर्मा जी के जाने के बाद बीना ने प्रवेश को बुलाया। माँ ने धीमी आवाज में बेटे को कुछ समझाया। स्तुति ने उधर ध्यान न दिया। उसके पढ़ने वाले बच्चे आ गए थे। वह उठकर बाहर कमरे में चली गई।

रात नौ बजे बच्चे अपने घरों को चले गए। प्रवेश ने शो रूम का शटर गिरा दिया। स्तुति जैसे ही आँगन में आई उसने बीना को वहाँ खड़े देखा। उसे लगा शायद माँ की तबियत ठीक नहीं है। वह कुछ बोलने ही वाली थी कि बीना उसकी ओर पलटी और दो कदम बढ़कर सीधी स्तुति के सामने खड़ी

हो गई। उसका चेहरा तमतमा रहा था। बड़ी-बड़ी आँखें रोष से भरी थीं। वह एकदम आक्रामक मुद्रा में लग रही थी। वह स्तुति की ओर झपटती सी कड़ककर बोली—''कौन है जिससे ब्याह रचाया है महारानी ने?''

स्तुति थोड़ी सहम गई। उसने बीना के सवाल का कोई जवाब न दिया। बीना फिर गरजी—''बोलती क्यों नहीं, क्या साँप सूँघ गया है? समझी होगी गुपचुप भाग जाऊँगी। किसी को कानों-कान पता नहीं चलेगा।''

स्तुति तुरंत समझ गई कि यह सूचना वर्मा जी ने दी है। मानस के आफिस के चपरासी का वर्मा जी के यहाँ आना-जाना था। वह बोली—''जब आपको सब खबर मिल ही गई है तो और क्या जानना है?''

स्तुति की बात खत्म होने तक प्रवेश भी अन्दर आ गया। उसने घर के सब खिड़की दरवाजे बंद कर लिए। वह बीना के पास आकर तनकर सीधा खड़ा हो गया। दाँतों को भींचकर लगभग चीखता सा बोला—''मैं इस घर का अकेला मर्द हूँ। क्या मुझे यह पता नहीं होना चाहिए कि इस घर की लड़की किसके साथ घूमती है। शादी तक कर ली और मुझे कानों-कान खबर नहीं।'' वह स्तुति से अचानक बड़ा हो गया था। स्तुति ने उसकी ओर नफरत से देखा और मन ही मन कहा कि बड़प्पन के लिए किसी को पोसना पड़ता है। यूँ ही किसी की खबर नहीं रखी जाती।

बीना ने अगला वार किया—''कितना लुटाया है अभी तक उस पर? बोलती क्यों नहीं?''

इस बार स्तुति बोली—''माँ हर कोई पैसे के लिए नहीं जीता है।''

''ओह तो महात्यागी मिल गया है। देखना कुछ ही दिनों में पैसा-पैसा निचोड़कर न तुझें फेंक दे तो मेरा भी नाम नहीं।'' बीना क्रोध और नफरत से भरी थी।

''फेंकी जाने पर तुम्हारे पास न आऊँगी।'' स्तुति ने आहिस्ता से कहा।

बीना तिलमिला गई। उसने दाँत भीचते हुए स्तुति को चपत जड़ दिया। प्रवेश ने माँ को रोकते हुए कहा—''इन्हें समझाना अब बेकार है। अकारण आपकी तबियत खराब होगी। मैं सीधी उसी की खबर लूँगा जिसने इस घर में सेंध लगाई है।''

स्तुति सहजता से बोली—''तुम्हारा अधिकार केवल मुझ तक है। मानस से उलझे तो नतीजा अच्छा नहीं होगा। मैंने उससे शादी की है। इसमें कोई अपराध नहीं है।'' इतना कहते हुए स्तुति अपने कमरे में चली गई।

बीना देर तक चीखती चिल्लाती रही और फिर शांत हो गई। लेकिन उस दिन से घर का माहौल इतना बोझिल हो गया कि घर के कुल तीन सदस्य एक जगह बैठना तो क्या एक साथ खड़े भी नहीं हो रहे थे। स्तुति जिधर जाती बीना और प्रवेश बुरा सा मुँह बनाकर वहाँ से हट जाते। खाना तो दूर की बात घर में कोई उसे पानी तक को न पूंछता। उसके आने से पहले माँ बेटे खा पी लेते। बीना ने स्तुति से बात करना लगभग समाप्त कर दिया था। स्तुति द्वारा खाना या अन्य कोई सामान पूंछने पर वह लापरवाही से हाथ का इशारा कर देती। इस व्यवहार से बचने को स्तुति बाहर से ही थोड़ा बहुत खा कर आ जाती और काम खत्म कर चुपचाप अपने कमरे में सो जाती। कभी-कभी स्तुति के मन में विचार आता कि यदि इस समय छोटी बहनें साथ होती तो वे शायद उसका साथ देती या वह यूँ अकेली न हो जाती। तभी अगला ख्याल आता-पर अब उसके विषय में सोचने का उनके पास भी समय कहाँ है? वे यहाँ आती हैं तब ही मेरे लिए कितना समय पाती हैं। पूरा दिन खाते बनाते ही बीत जाता है। जब तक मैं फुर्सत पाती हूँ वे थककर सो जाती हैं। फिर ऐसे उपेक्षित और एकाकी जीवन का उन्हें अनुभव भी कहाँ है जो मेरी स्थिति का अनुमान कर सकें। स्तुति को कुछ ही दिनों में घर के वातावरण से ऊब होने लगी। पहले उसने मन बनाया था कि चार माह बाद जब ट्यूशन वाले बच्चों की पढ़ाई पूरी हो जाएगी वह तभी घर छोड़ेगी। परन्तु उसने एक दिन मानस से कहा कि वह जल्दी ही घर छोड़ना चाहती है वह रहने की कोई व्यवस्था कर ले।

मानस के परिवार में एकमात्र उसके पिता थे। वह स्तुति से शादी की बात उन्हें बता चुका था। वे चाहते थे कि एक छोटी सी दावत के साथ फेरे की रस्म भी पूरी हो जाय। तभी दुल्हन को घर लाया जाय ताकि बिरादरी के कटाक्ष न सुनने पड़े। अपने जीवन अनुभव से वे यह मान रहे थे कि स्तुति की माँ का गुस्सा समय के साथ ठण्डा हो जाएगा। तब वह कन्यादान कर खुशी-खुशी बेटी बिदा कर देगी। परन्तु स्तुति की बातों से मानस को स्पष्ट हो गया कि उसके पिता का अनुमान गलत है। स्तुति को जब भी घर छोड़ना होगा तब माँ के विरोध के साथ ही छोड़ना होगा। मानस ने पिता को स्थिति समझा दी। वे अपने तरीके से समस्या को सुलझाने में जुट गए।

एक दोपहर बीना के कटु वाक्यों का स्तुति ने विरोध किया। माँ बेटी के बीच तकरार बढ़ी और उसी दिन स्तुति ने घर छोड़ दिया। माँ के घर से विदा होते समय स्तुति के पास मात्र हजार रुपए और दो जोड़ा कपड़े थे। उसके नाम

के गहने जो उसकी कमाई से ही बने थे। बीना ने उसे देने से साफ इन्कार कर दिया। बीना का सीधा सा जवाब था–''बड़े साहूकार के घर जा रही हो। बहुत कमाने वाली भी हो। जितना चाहो गहनें बनवाना। इस घर का खाया है इसीलिए आज तक जो भी कमाया है यहीं छोड़ना पड़ेगा। पिता कौन सी बहुत जायदाद छोड़ गए हैं जिसमें बेटी ठाठ से बिदा होगी।''

स्तुति ने कोई प्रतिकार न किया। वह चाहती तो ढेरों तर्क कर सकती थी, चीख चिल्लाकर मौहल्ले को सुना सकती थी या फिर लम्बी कानूनी लड़ाई लड़कर अपना अधिकार ले सकती थी। परन्तु उसने ऐसा कुछ भी न किया। क्योंकि स्तुति अच्छी तरह जानती थी कि उसकी माँ की ऐंठ, अकड़, सारा रौब-दाब और शान-शौकत उसी धन से है जिसमें मेरा एक बड़ा हिस्सा है। यदि आज बेटा माँ की तरफदारी में है तो उसके मूल में भी यह पैसा ही हैं। स्तुति उसे हासिल कर ले तो बेटा माँ के बुढ़ापे में शायद ही माँ को बर्दास्त करें। स्तुति अपनी माँ की शान-शौकत और अकड़ को कमजोर करना नहीं चाहती थी। वह बूढ़ी माँ को असहाय और लाचार नहीं देख सकती थी। वह सहज ही घर से चली गई।

रात के नौ बज चुके थे। घर के अधिकतर सदस्यों ने खाना खा लिया था। ज्ञानेश दुकान बंद कर अंदर आ गए। कपड़े बदल हाथ मुँह धोने लगे और पत्नी रिचा से बोले–''जल्दी खाना लगाओ। बहुत भूख लगी है।'' तभी उन्हें ख्याल आया–''अरे दीदी को खाना खिलाया?''

रिचा ने हँसकर कहा–''आपके बगैर कौन खिलाता। आप तो अब आए हो।''

सुवर्णा बोली–''मैं खा चुकी भाई। आप खाओ।''

ज्ञानेश खाने बैठे। स्तुति अभी चौके में कुछ सम्भाल रही थी। बच्चे उसके पीछे पड़े थे–''बुआ जल्दी छत पर चलो। हमें अच्छी-अच्छी कहानियाँ सुननी हैं।''

रिचा ने कहा–''जाओ, आप अब आराम कर लो। बाकी मैं निबटा लूँगी।'' स्तुति हाथ धोकर बच्चों के साथ चली गई। स्तुति सीढ़ियाँ चढ़ रही थी तभी ज्ञानेश ने उसकी ओर इशारा करते हुए सुवर्णा से पूंछा–''दीदी आपका इससे परिचय हुआ ?''

सुवर्णा–''हाँ चाय लेकर आई थी'' तब रिचा ने कहा था–''अपने घर की ही समझो। अभी बाद में विस्तार से बताऊँगी।'' वह तब से अपने काम में लगी है। बता नहीं पाई।

ज्ञानेश–''इसकी बड़ी लम्बी कहानी है। मैं आपको संक्षेप में ही बता देता हूँ।''

सुवर्णा–''सुनाओ।''

ज्ञानेश ने बोलना शुरू किया–''करीब छः महीने पहले की बात है। मैं दुकान बंद करने वाला था कि हमारे मौहल्ला कमेटी के चेयरमेन आए और बोले–''भैया एक पुण्य का काम है उम्मीद है तुम ना नहीं करोगे।''

मैं उनकी इज्जत करता हूँ बुजुर्ग हैं भले हैं। सो मैंने कहा–''आदेश करें।''

वे बोले–''तुम्हें एक कन्यादान करना होगा। कल घर में सलाह कर लो। परसों ही यह काम करना है।''

मैं जोर से हँसा और बोला–''लगता है भाई साहब आज आप गलत संगत में फस गए थे। पहली-पहली बार का नशा ऐसा ही होता है।''

वे बोले–''शहर में अभी कोई संगत ऐसी बनी नहीं है जो मुझे नशा करवा दे। मैं वास्तव में तुम्हें कन्यादान करने को कह रहा हूँ।''

''पर भाई साहब मेरी कन्या अभी दान के लायक नहीं है और मेरे पास इतना पैसा भी नहीं है कि मैं परोपकार में किसी की कन्या के दान में खर्च कर दूँ। तब आप मुझसे कैसा कन्यादान कराना चाहते हैं।''

''इस कार्य में न धन आपका लगेगा न कन्या। आपको सिर्फ पुण्य लूटना है। एक दिन लगाकर।''

मैंने कहा–''तो आप ही यह पुण्य क्यों नहीं लूट लेते?''

वे मायूस होकर बोले–''आज यदि तुम्हारी भाभी जीवित होती तो मैं इस काम को करने में अपना सौभाग्य समझता। परन्तु मैं अकेले यह कार्य करना नहीं चाहता हूँ।''

''अच्छा बताओ क्या करना है? हो सका तो कर दूँगा आपकी बात तो मेरे लिए मान्य है।'' वे स्टूल पर बैठ गए। मैं समझ गया अच्छा समय लेकर आए हैं। मैं भी उनके सामने आसन जमाकर बैठ गया और नौकर को दुकान समेटने को कह दिया।

चेयरमेन साहब बताने लगे मेरे एक मित्र हैं। उनके बेटे ने कोर्ट मैरिज की है। अब वे अपनी बिरादरी के सामने उसको सामाजिक रीति रिवाज से करना चाहते हैं। परन्तु लड़की का भाई और माँ तैयार नहीं है। उन्होंने लड़की को घर से निकाल दिया है। अब तुम्हें और रिचा को लड़की के माता-पिता के रूप में उसका कन्यादान करना है। खर्च मेरे मित्र पैसे-पैसे का देंगे। कल ही पैसा और पूरा सामान तुम्हारे पास आ जाएगा।

मैं सिर खुजलाता बोला–''सोचने का मौका तो दो।''

उन्होंने अधिकार पूर्वक कहा—''सोचना क्या है? अभी तो कह रहे थे आपकी बात मेरे लिए बड़ी है। फिर पुण्य लाभ में अधिक सोच विचार करना ठीक नहीं है।''

मैंने थोड़े टालने के मूड से कहा—''अच्छा यह तो बताओ लड़की कौन है? कहाँ की है? उन्होंने मुझे विस्तार से सब समझाया। इसकी पूरी कहानी सुनाई। ज्ञानेश ने चेयरमेन साहब से सुनी स्तुति की पूरी कहानी सुवर्णा को सुना दी। प्रभा और रिचा भी पूरे आनंद से सुन रही थी। जबकि उनके सामने यह कहानी बहुत बार दोहराई जा चुकी थी। यह वही कहानी थी जिसे चौके में काम करते हुए स्तुति अपने मन में दोहरा रही थी। वह इसकी अभ्यस्त हो गई थी। मन में चलती कहानी उसके दैनिक कार्यों में बाधा नहीं बनती थी। उसने बहुत कम लोगों को ही टुकड़े-टुकड़े यह कहानी सुनाई थी।''

ज्ञानेश बता रहे थे—''और फिर अगले ही रोज इसके ससुर यहाँ आ गए। एक ही दिन में कपड़ा, फर्नीचर, बर्तन, जेवर सब खरीद लिया गया। मानस ने पहले ही यहीं पास वाली धर्मशाला बुक करा ली थी और शायद हमें इसीलिए कन्यादान के लिए चुना गया था। अगले रोज ठीक दोपहर बारह बजे बारात आ गई। हम भी तैयार होकर पहुँच गए। नाश्ता, तिलक और खाने के बाद बारात विदा हो गई। मानस के एकदम करीबी आठ-दस लोग रुके रहे। तुरंत बाद फेरे की रस्म हुई। तुम्हारी भाभी भावुक हो गई। इसने भी अपनी ओर से पाँच साड़ी, पाँच बर्तन और बिछुवा पायल दिया।''

प्रभा बोली—''और भाई वह दीदी वाली बात भी बताओ।''

रिचा ने भी उसका समर्थन किया—''दीदी ने भी खूब शोर मचाया।''

सुवर्णा—''कौन दीदी?''

प्रभा—''अरे अपनी बड़ी बहन जी।''

ज्ञानेश—''बहन जी की बात बताए बगैर तो यह कहानी अधूरी ही है। वे अचानक ही शाम को आ गई। यहाँ यह सब तामझाम देखकर भड़क गई। सीधी धर्मशाला पहुँच गई। गनीमत थी कि कन्यादान की रस्म हो चुकी थी। पहले आ जाती तो हमारी हिम्मत न होती यह सब करने की। उन्होंने सबसे पहले मुझे और प्रभा को ही आड़े हाथों लिया। हमें एक तरफ बुलाया और सवाल पर सवाल करने और डाँटने लगी। जब तक हमें एक बात का जवाब भी न सूझता वे अगला प्रश्न खड़ा कर देती। एक बार तो मैं सच में घबरा गया और लगा कि मुझसे बड़ी भूल हो गई है। मुझे किसी से सलाह ले लेनी चाहिए थी। पर अब तो काम हो चुका था।''

सुवर्णा–''क्या कह रही थी दीदी?''

ज्ञानेश–''क्या कह रही थी?'' उन्होंने ऐसे-ऐसे तर्क दिए कि सब कुछ उल्टा लगने लगा। बोली–''तुम जानते हो यह लड़की कौन है? पहले कभी इससे या इसके घरवालों से मिले हो? टी.वी., अखबारों में हर दिन देखते नहीं कितनी ठग पार्टियाँ घूम रही हैं। कल को सारा जेवर-कपड़ा लेकर भाग जाए तो?''

''पर जिसका जेवर कपड़ा है वही लड़की को लाया है। इसकी चिंता तो उसी को होनी चाहिए।''

''चलो माना कि लड़की की तुम्हारी कोई जिम्मेदारी नहीं बनती है। पर कल को यह लड़का ही लड़की को मार दे गायब कर दे और लड़की के घरवाले तुम्हारा जीना दूभर कर दें तब?''

''लड़की के घरवाले जब आए नहीं है तो झगड़ा कैसा?''

''यही तो तुम अभी नहीं समझते हो बेटा। जरा सी बात बिगड़ जाएगी तो माँ बाप सब पैदा हो जाएँगे। तुमने कन्यादान किया है। तुम्हारे साथ इनकी फिल्म बनी है। तुम पूरी तरह जिम्मेदार होगे।''

प्रभा बोली–''उन्होंने मुझे भी डाँटा–''बड़ी बनने चली है। जरा सी भी समझ है तुझे। बाद में क्या-क्या झंझट हो सकता है। मुझे ही एक बार फोन कर लिया होता।''

रिचा बोली–''दीदी उस समय इतने गुस्से में थी कि हम में से किसी को भी बोलने की हिम्मत नहीं हो रही थी। उस समय उनकी सारी बातें सही लग रही थी।''

ज्ञानेश–''फिर उन्होंने मानस, उसके पिता और चेयरमेन साहब को भी नहीं छोड़ा। उन पर भी हम बालकों को बहकाकर गलत काम कराने का आरोप लगाती रहीं। वे लोग हाथ जोड़कर माफी माँगते रहे।'' मैंने बहन जी को शांत करने को कहा कि हमने तो इसे एक सामाजिक पुण्य का काम समझकर कर दिया है तो वे और भड़क गई। बोली–''ऐसा ही समाज सेवा का शौक है तो किसी समाज सेवी संस्था से जुड़ जाओ। पैसा भी मिलेगा और पुण्य भी। कम से कम अकेले तो न फंसोगे । दस लोग साथ होंगे। कल को ये ही लोग इल्जाम लगाने लगे कि तुमने इस काम में लाख दो लाख खाया है तब क्या करोगे?''

''उस समय बहन जी को शांत करने का एक ही उपाय था चुप रहना। मैं तो कुछ नहीं बोली और मैंने इन्हें भी इशारे से चुप करा दिया।'' रिचा ने आहिस्ता से कहा।

सुवर्णा कहानी में पूरी तरह डूब चुकी थी। वह उसके अंत तक पहुँचना चाहती थी। इससे पहले कि सब उठ जाएँ। उसने अपनी बात बढ़ा दी—''इस हंगामें में कन्या की बिदाई कैसे हुई?''

ज्ञानेश—''दीदी का रौद्र रूप देखकर मानस और उसके पिताजी की तो उनसे बात करने की हिम्मत ही नहीं हो रही थी। मैंने ही उन्हें शांत कराया और धीरे से कहा-अब इतना सब किया है तो लड़की बिदा तो हो जाए। वे जरा शांत हुई तो मैंने तुरंत मानस को इशारा किया। मानस और स्तुति सबको प्रणाम कर जल्दी से गाड़ी की ओर बढ़ गए और हमारा कन्यादान पूरा हो गया।'' इतना कहते हुए ज्ञानेश उठ गए और उनके साथ बाकी सब भी। सोने की तैयारी होने लगी। रिचा ने धीरे से सुवर्णा से कहा—''अब दीदी खाली शादी के साथ ही तो मयके की जरूरत खत्म नहीं हो जाती हैं। ससुराल में चाहें जितना राज मिले लड़की का दिल तो मयके को भी तरसता है। इसीलिए जब इसका मन होता है दो चार दिन यहाँ आ जाती है। एक बार हम भी इसके यहाँ हो आए हैं। अच्छा घर, जमीन, कमाऊ लड़का सब मिला है, खुद भी कमाती है। इसे किसी के लेन-देन की जरूरत नहीं है। हमने तो इसे लड़की माना है। अपने से थोड़ा बहुत जो बनता है दे देते हैं। हमारे दिए से अधिक तो यह बच्चों पर खर्च कर देती हैं। अब इसे यहाँ जो सुख मिलता हो यह जाने। हमें तो ये अब घर के बच्चों जैसी हो गई है।''

अन्तर

काफी दिनों बाद अलका का श्रेया के यहाँ आना हुआ। दोनों सहेलियाँ बैठकर इधर-उधर की बातें करने लगी। थोड़ी देर बाद श्रेया चाय नाश्ता ले आई। बातों का सिलसिला दोबारा शुरू हो गया जो राजनीति से फिसलता हुआ शहर में हो रही चोरी, डकैती और उठाई गिरी की घटनाओं पर दौड़ने लगा। बीच-बीच में बाल-गोपालों की भी चर्चा हो जाती। परन्तु शीघ्र ही दस पाँच दिन पहले इलाके में हुई छुटपुट घटना चर्चा का विषय बन जाती। चाय समाप्त हुई। कुछ देर बाद एक दस बारह साल की बच्ची बर्तन उठाने आई। वह अभी बर्तन लेकर मुड़ भी न पाई थी कि श्रेया ने कड़क अंदाज में उससे सवाल किया–''रोटी खाई?'' बच्ची कुछ अपराध-बोध से ग्रस्त सी सिर झुका कर खड़ी हो गई। लग रहा था जैसे रोटी का एक दो निवाला अभी उसके मुँह में दबा है। उसने सहमति में गर्दन हिलाई श्रेया ने कहा–''जाओ।'' बच्ची ट्रे उठाकर चली गई। दोनों सहेलियाँ फिर बातों में उलझ गई।

लगभग आधा घंटे बाद ट्रे ले जाने वाली बच्ची ने दरवाजे में अंदर झाँकते हुए धीमी आवाज में कहा–''आण्टी मैं जाऊँ?''

श्रेया ने रौब से पूंछा–''सब काम निबट गया?'' हल्की सी हाँ के साथ लड़की ने गर्दन हिला दी। श्रेया बोली–''पाँच मिनट ठहरो।''

श्रेया उठकर बगल वाले कमरे में चली गई। अलका सोचने लगी–नन्हीं सी लड़की और पूरा काम। घंटे भर काम के बाद भी छुट्टी की अनुमति नहीं और तब भी पेट भरने के लिए रोटी चुराने की मजबूरी। कैसा बचपन है इनका भी? अलका का मन हुआ कि उठकर बच्ची के सिर पर हाथ रख दे। उसे कुछ

पैसा दे दे और घर जाकर खेलने को कह दे। परन्तु वह उठते-उठते बैठ गई। आज के समय में किसी दूसरे के काम वाले से हमदर्दी दिखाने का मतलब है आपसी संबंधों में खटास। तभी श्रेया आती दिखाती दी। उसने बीस का नोट लड़की को थमाते हुए कहा–''ये लो। रास्ते से कॉपी खरीद लेना और सुबह अपनी अम्मा को काम पर भेजना, तुम स्कूल जाना। समझी?''

लड़की के चेहरे पर मुस्कान आ गई। नोट लेकर वह तेजी से चली गई। श्रेया आकर अलका के पास बैठ गई।

अलका आश्चर्य से श्रेया को देखने लगी। उसे अपनी जिज्ञासा रोकना मुश्किल हो गया। वह बोली–''तुम भी गजब हो श्रेया। कुछ देर पहले इसे रोटी खाने को डाँट रही थी और अब यह मेहरबानी।''

श्रेया ठहाका लगाकर हँस पड़ी–''मैं उसे रोटी खाने को नहीं डांट रही थी। वरन् इसलिए डाँट रही थी कि कहीं उसने रोटी घर ले जाने के लिए तो नहीं रख ली है।''

अलका ने प्रश्न किया–''घर ही ले जाय तो इसमें तुम्हें क्या परेशानी है?''

श्रेया ने गहरी साँस लेकर कहा–''घर इसे खाने को नहीं मिलेगी। इसके दो बड़े भाई हैं एकदम आवारा। दिन भर पतंग उड़ाते फिरते हैं। इसकी माँ इससे दिनभर काम करवाती है और सारा खाना अपने उन लाडलों को खिला देती है। इसीलिए मैं हर दिन इसे यहीं रोटी खिलाकर भेजती हूँ। इसके खाने से कुछ बचे तो भले ही घर ले जाय।''

प्रमोशन

सोमेश की शादी के दो वर्ष पूरे होते तक मिश्र जी के यहाँ सब कुछ सामान्य हो गया। नूपुर और उसके परिवार वालों के स्वभाव ने मिश्र दम्पत्ति की गैर जाति में संबंध की दुविधा को पूरी तरह दूर कर दिया। अब उन्हें बेटे का नूपुर से विवाह का फैसला सही लगने लगा और साथ ही यह भी महसूस होने लगा कि शायद वे स्वयं इतना अच्छा रिश्ता न खोज पाते। नूपुर सुन्दर और योग्य थी। वह सोमेश की ही कम्पनी में लगभग उसी के बराबर वेतन पर कार्य कर रही थी। इस सबसे भी अच्छी बात यह थी कि उसने पूरे परिवार को किसी भी अक्सर पर अपने गैर जाति होने का एहसास नहीं होने दिया था। सोमेश की माँ शारदा तो इसी से बेहद खुश थी कि बहू रीति-रिवाजों में उनके विचारों को ही अधिक महत्त्व देती है मायके को नहीं।

सोमेश और नूपुर जब भी घर आते घर में उत्सव का सा माहौल हो जाता। नूपुर विविध प्रकार के व्यंजन बनाती और सबको आग्रह कर खिलाती। जेठानी के बच्चों के साथ खेलती, उन्हें पढ़ाती और कभी-कभी खरीदारी कराने ले जाती। जेठानी से घर के रीति-रिवाजों के विषय में जानकारी लेती रहती और उन्हें निभाने का प्रयास करती। बच्चे उससे खूब खुश रहते। परन्तु बड़ों की संतुष्टि के लिए इतना ही काफी नहीं था। उन्हें अब अगली पीढ़ी का इंतजार होने लगा। नूपुर जब भी घर आती तो शारदा उससे बच्चे के विषय में जिक्र करती। वह हँस कर टाल देती। धीरे-धीरे चार साल बीत गए। आखिर एक दिन शारदा ने सोमेश की उपस्थिति में ही नूपुर से स्पष्ट रूप में कह दिया—“बस मौज मस्ती, घूमना-फिरना बहुत हो लिया तुम्हें अब जल्दी ही बच्चे के बारे में सोचना चाहिए। दिन-दिन तुम लोगों की उम्र बढ़ रही है घट नहीं रही है।”

नूपुर चुप रही। इस बार सोमेश ने माँ की बात का जवाब दिया–''माँ क्या तुम भी नासमझी की बातें करती हो। अभी शादी का समय ही कितना हुआ है? नूपुर का प्रमोशन ड्यू है। वह तो मिल जाय। यह इन सब झंझटों में लग गई तो समझो प्रमोशन गया हाथ से।''

प्रमोशन का कोई उपाय शारदा देवी के पास नहीं था। अतः उन्हें चुप रह जाना पड़ा। नूपुर का प्रमोशन मिलते-मिलते एक साल और बीत गया। इसी बीच सोमेश ने फ्लैट भी बुक करा लिया। अब तक का सब जोड़ा बचाया उसमें लग गया। उस पर पचास लाख का कर्ज और हो गया। अब जब भी शारदा नूपुर से बच्चे का जिक्र करती तो उसका सीधा सा जवाब होता–''माँ अभी तो आप जानती हैं हमारे पास कुछ नहीं बचता है।''

सोमेश भी अक्सर तंगहाली और लोन का जिक्र करता रहता। पर शारदा हैरान रह जाती कि इतनी तंग हाली में भी वे खुलकर पैसा खर्च करते हैं। फ्लैट में लकड़ी और फर्नीचर का काम बराबर चल रहा है और वह भी ऊँचें दामों का। शारदा सोचती-पैसा फेंकने के लिए इनके पास खूब है बस औलाद को खिलाने का नहीं है। कैसी अजीब बात है? वे इसकी चर्चा घर के अन्य सदस्यों से करती तो सबकी प्रतिक्रिया अलग-अलग होती। सोमेश के पिता शारदा को सोमेश और नूपुर के निजी जीवन में दखल न देने की सलाह देते और उनका बेटे रमेश सोमेश की आर्थिक मदद कर देने की। एक दिन बड़ी बहू ने भी सकुचाते हुए कहा–''माँ वे लोग यहाँ आते हैं तब भी घर और बच्चों पर काफी खर्च कर देते हैं। मैं उन्हें हर बार मना करती हूँ। आप भी थोड़ा समझाइए। यहाँ इतने महंगे इन सामानों के बगैर भी काम चल सकता है। बच्चों की कपड़ों और खिलौनों की माँग कभी खत्म नहीं होती है। जितना दिलाओं ये और नया-नया माँगते हैं। ये सब पैसे की बर्बादी है।''

परन्तु शारदा की समझ से वंशवृद्धि का मामला सोमेश और नूपुर का निजी मामला नहीं था। यह पूरे परिवार के लिए चिंता का विषय था। उनकी ममता जरा भी यह स्वीकारने को तैयार नहीं थी कि किसी भी उम्र में कोई इतना निजी मामला हो सकता है कि जिसमें माँ को सलाहकार न बनाया जा सके। फिर भला वे सोमेश और नूपुर को नसीहत देना क्यों बंद कर दें। सोमेश और नूपुर का वेतन सोमेश के पिता की पेंशन और रमेश के वेतन से तीन गुना था साथ ही खर्च कुछ नहीं। अकारण उन्होंनें चार कमरों का घर बनवाया था जो दो का भी बन सकता था। कुछ काम दो चार वर्ष बाद भी किए जा सकते

थे उनके लिए कर्ज लेने की आवश्यकता नहीं थी। सोमेश को कुछ तो घर से सीखना चाहिए था। यहाँ किस तरह दो-दो कमरे बनाते-बनाते मकान बना है। आगे के दो कमरे, गेट और डिजाइन तो अभी दो साल पहले ही पूरा किया गया है। यदि सोमेश के पिता चाहते तो यह खर्च सोमेश पर डाल सकते थे परन्तु उन्होंने बेटों से कुछ नहीं लिया। सब अपने से पूरा कराया। अब यदि सोमेश ने अकारण अपने शौक से लोन लिया है तब उसकी आर्थिक मदद क्यों की जाय और करें भी तो कौन? यहाँ पहले ही उसकी आय की चौथाई आय है। अब रही बात बच्चों पर खर्च करने की तो यह फिजूल खर्जी नहीं है। आज वे इन बच्चों को प्यार देंगे तो कल ये ही उनके सुख दुःख में खड़े होंगे।

शारदा की जैसे-जैसे उम्र बढ़ रही थी वैसे ही सोमेश की संतान के विषय में चिंता भी। अब नूपुर का प्रमोशन हुए भी तीन साल बीत गए थे। उन्हें लगने लगा था कि निश्चित ही बहू में कोई कमी है। सोमेश उनसे छिपा रहा है। अतः कुछ समय से वे नूपुर के इलाज और देवी देवताओं की मनौती पर विशेष बल देने लगी थीं। परन्तु कोई सुखद समाचार नहीं मिल रहा था। इसी सब निराशा के बीच एक दिन सोमेश का फोन आया कि जल्दी ही हम भी आपको दादी बनाने वाले हैं। बताओ पोता-पोती क्या चाहती हो। यह सुनकर शारदा देवी प्रसन्न हो गई उनके सिर से एक बड़ा बोझ उतर गया। उन्होंने घर भर को यह समाचार दिया। वे हँसते हुए कह रही थीं-''पगला है। पूंछता है पोता-पोती क्या चाहिए? यह क्या उसके हाथ में हैं। यह तो ईश्वराधीन है। घर में खुशी हो यही बड़ी बात है।''

शारदा ने अगले दिन से ही घर में आने वाले नन्हें मेहमान के स्वागत की तैयारियाँ शुरू कर दीं। वे अपने रिश्तेदारों और जान पहचान वालों से फोन पर जानकारी ले रही थीं कि कौन डॉक्टर और अस्पताल बच्चे की पैदाइश के लिए विश्वसनीय है। कहाँ कितना खर्च लगेगा और आजकल क्या नए रिवाज चल गए हैं। कभी वे सोमेश के पिता से पैसों का हिसाब लगाकर रखने को कहती तो कभी बहू से सलाह मशविरा करती। वे बहू को समझाती कि उसे ही सब सम्भालना होगा। इस उम्र में अब उनसे अधिक काम नहीं हो पायगा। शारदा की परेशानी को देखते हुए बहू एक दिन उन्हें हिम्मत बंधाते हुए बोली—''माँ आप घबराइए नहीं। मैं सब सम्भाल लूँगी। प्रभु सब ठीक ही करेंगे। आप बस यह पता कर लें कि डिलीवरी कब होनी है।''

''जल्दी ही दादी बनने वाली हो। सोमेश ने इतना ही बताया है।''

''बहुत जल्दी में भी अभी पाँच छः महीने का समय लग जाएगा। चार महीने पहले ही तो नूपुर यहाँ आई थी तब ऐसी कोई बात नहीं थी।''

''पर सोमेश ने ऐसा क्यों कहा-हम भी जल्दी ही तुम्हें दादी बनाने वाले हैं।''

''आप नूपुर से ही बात कर लीजिए ।''

''यही ठीक है।''

उसी दिन शाम को शारदा ने सोमेश को फोन करवाया और उससे नूपुर से बात कराने को कहा। सोमेश ने बताया कि वह अभी दफ्तर से नहीं आई है। शारदा नाराज होते हुए बोली—''तुम्हें अब उसका ख्याल रखना चाहिए। इतनी देर से दफ्तर से क्यों लौटती है। समय से खाना और आराम इस समय उसके लिए बहुत जरूरी है।''

सोमेश हो-हो कर हँसता रहा और शारदा उसे नूपुर के संबंध में हिदायत देती रही। फिर सोमेश ने अचानक फोन रख दिया। डिलीवरी का सही समय शारदा आज भी न जान पाई। सोमेश उनको टाल गया। दो चार दिन बाद शारदा को फिर जचगी की व्यस्था की चिंता सताने लगी। वे परिवार के सदस्यों से सलाह लेने और उन्हें हिदायतें देने लगी।

एक सप्ताह बाद सोमेश के पिता बैठे चाय पी रहे थे और शारदा उन्हें समझा रही थी—''नूपुर के यहाँ आने पर आपको अपना ख्याल खुद रखना होगा। मुझे और बहू को तो और ही बहुत काम होंगे।''

सोमेश के पिता ने आश्वासन देते हुए कहा—''अभी मैं इतना असहाय नहीं हूँ जितना तुम समझती हो। मैं अपना ख्याल रख सकता हूँ।''

तभी फोन की घंटी बजी और सोमेश ने पिता को खबर दी कि उनका पोता आया है। शारदा ने जानना चाहा कि नूपुर और बच्चा ठीक हैं? सोमेश ने बताया-बिल्कुल ठीक हैं। वे कल घर आ जाएँगे। शारदा ने सोमेश से बात करने के लिए फोन की ओर हाथ बढ़ाया परन्तु फोन कट गया। शारदा कुछ रूष्ट सी बोली ''मेरी बात क्यों नहीं कराई?''

''वह शायद जल्दी में था। इस समय उसे अकेले ही घर बाहर सब सम्भालना पड़ रहा होगा। कल सब घर आ जाएँगे तब बात कर लेना।'' सोमेश के पिता ने समझाया।

शारदा उठकर बहू के पास चली गई।

शारदा ने घर के अन्य लोगों को खुशखबरी सुनाई। फिर बहू से बोली—''मेरे जाने की तैयारी करो। मुझे आज रात ही गाड़ी में बिठा दो। कल दोपहर तक पहुँच जाऊँगी। सोमेश अकेला परेशान हो रहा होगा।''

शारदा को नूपुर की नादानी और गैर जिम्मेदारी पर क्रोध आ रहा था। वे अपना सामान जुटाती हुई उसको कुछ-कुछ कह रही थी। वे बड़ी बहू की

नासमझी पर भी झुझलाती सी बोली–''बड़ी होकर तुम सही जानकारी भी नहीं रख सकती हो। कल ही हिसाब लगा रही थीं अभी पाँच, छः महीने का समय है।''

''मुझे तो कुछ समझ नहीं आ रहा है माँजी।'' बहू ने धीरे से कहा।

शारदा देवी के जाने की तैयारी होने लगी। बच्चे घर में छोटे भाई के आने से बेहद उत्साहित थे। वे दादी के साथ चलने की जिद्द कर रहे थे। शारदा उन्हें प्रलोभन देकर घर पर ही रुकने के लिए समझा रहीं थी। आखिर में नन्हें भाई को जल्दी ही उनके पास ले आने की बात पर मामला शांत हो गया। शारदा अपना सामान व जच्चा-बच्चा के लिए आवश्यक चीजें बटोरने लगी। बहू उनकी मदद कर रही थी। सोमेश के पिता पण्डित जी से पत्री बनवाने की फिक्र कर रहे थे। शारदा बोली–''पहले ठीक से समय तो पता करो पत्री तो तब ही बनेगी। मैं कल पहुँचकर पूरी जानकारी बता दूँगी। आज मेरे जाने की तैयारी करो।''

शाम को रमेश के घर आने पर समाचार मिला वह भी खुश हो गया और माँ के साथ जाने के लिए तैयार भी। माँ की अवस्था के बहाने वह भाई की खुशी में जल्दी से जल्दी शामिल होना चाहता था। अतः रमेश और शारदा रात की गाड़ी से रवाना हो गए।

अगले रोज रमेश और शारदा चार घंटे देरी से पहुँचे। संध्या का धुधलका घिरने लगा था। हल्की ठण्ड भी हो गई थी। वे टैम्पू से उतरे तो सोमेश सामने क्यारी में पानी लगाता नजर आया। रमेश और शारदा उसकी ओर बढ़े वह अनजान सा उसे रेख रहा था। करीब पहुँचने पर सोमेश उन्हें पहचानकर माँ कहता हुआ उनकी ओर आया। उन्हें अचानक आया हुआ देखकर वह कुछ अचंभित था। बोला–''भैया आप लोग अचानक! फोन तो कर देते।''

''जब आ ही रहे थे तो फोन की क्या आवश्यकता थी। तुम अचानक काम छोड़कर स्टेशन भागते।'' रमेश ने उसे प्यार भरी झिड़की देते हुए कहा।

शारदा भी बनावटी गुस्से से बोली–''घर में इतना काम है और तुझे इस समय भी फूल पत्तियों की चिंता सता रही है।''

सोमेश जोर से हँसा। सब घर में आ गए।

नूपुर रसोई में शायद चाय बना रही थी। उसने आकर शारदा और रमेश के पैर छुए। वे सोफे पर बैठ गए। शारदा नूपुर को आश्चर्य से देखती हुई बोली–''तुम रसोई में क्या कर रही हो? बच्चा कहाँ है?''

नूपुर ने हँसकर कमरे की ओर इशारा करते हुए कहा–''वहाँ मम्मी के पास।''

शारदा ने–''हूँ।'' कहा और रमेश की ओर थोड़ा रहस्यमयी नजरों से देखा। जिसका अर्थ शायद यही था कि यहाँ सब इंतजाम पहले से ही दुरूस्त

है इसीलिए हमारा आना अचानक लग रहा था। वे नूपुर से बोली–''जाओ तुम आराम करो।''

सोमेश हँसकर बोला–''हाँ, हाँ जाओ तुम आराम करो।''

नूपुर कमरे में चली गई। सोमेश ने उन्हें पानी दिया। कुछ देर बाद शारदा ने हाथ पैर धोए। वे कमरे में बच्चे के पास जाने के लिए बढ़ी। तभी नूपुर उसे गोद में लेकर उनके पास आ गई और बच्चे को शारदा की गोद में देते हुए बोली-''लीजिए , सम्भालिए इसे।''

शारदा बच्चे को गोद में लेकर गौर से देखने लगी। वे अपनी अनुभवी निगाहों से उसके नाक-नक्स, हाथ-पैर और वर्ण को जाँच रही थीं। नूपुर बाथरूम से कपड़े उठाकर फैलाने लगी। नूपुर की मम्मी भी कमरे से निकल कर शारदा को नमस्कार कर उनके पास आ गई। शारदा का आश्चर्य बढ़ता जा रहा था। रमेश भी असमंजस में था। वहाँ जचगी जैसे कोई लक्षण नजर नहीं आ रहे थे। नूपुर एकदम सामान्य पहले जैसी चुस्त-दुरूस्त हँसती और काम करती नजर आ रही थी। शारदा ने बच्चे को एक नजर फिर गौर से देखा। उसकी सूरत एक दिन के शिशु जैसी नहीं थी। वह कुछ सप्ताह का लग रहा था। शरदा परेशान सी कभी नूपुर कभी उसकी मम्मी और कभी सोमेश को देख रही थी। सोमेश कुछ रहस्यमयी हँसी बिखेरता हुआ माँ के चेहरे पर आते-जाते भावों को देख रहा था। वह नूपुर की ओर मुस्कुराता हुआ संकेतों से उसे माँ की स्थिति बता रहा था। नूपुर भी मुस्कुरा रही थी। अचानक शारदा के दिमाग में कुछ विचार कौधा। उसने सोमेश की ओर देखा और सबकी चुप्पी तोड़ते हुए शारदा के मुँह से निकल गया–''क्या यह तुम्हारा बच्चा है?''

सोमेश ठहाका लगाकर हँस पड़ा। उसी के साथ नूपुर और उसकी मम्मी भी। सोमेश ने कहा–''हाँ माँ यह शतप्रतिशत हमारा ही है। हम आज सुबह ही इसे घर लाए हैं। हमने इसे गोद लिया है।''

शारदा के चेहरे पर दुःख और क्रोध के भाव एक साथ उभर आए। उनका संदेह सत्य में बदल गया था। बच्चे को कसकर छाती से चिपकाने वाली बाहों की पकड़ धीमी पड़ गई। उन्होंने एक बार रमेश और नूपुर की ओर देखा फिर निगाहें सोमेश पर जमा दी। सोमेश की हँसी गायब हो गई थी। शारदा देवी का गंभीर स्वर सुनाई दिया–''तुमने इतना बड़ा फैसला अकेले ही ले लिया?''

सोमेश को कुछ जवाब न सूझा। रमेश ने उसका बचाव किया–''माँ सोमेश अब अकेला नहीं है। नूपुर की सहमति भी उसके साथ है और दोनों को अपनी गृहस्थ के बारे में फैसला लेने का अधिकार है। आप इतनी परेशान क्यों है?''

शारदा देवी ने रमेश को डपटते हुए कहा ''तुम अभी चुप ही रहो।'' वे नूपुर और उसकी माँ की ओर देखकर बोली–''आपने भी इन बच्चों को यह क्या नादानी भरी सलाह दे दी है। आपकी बेटी में कोई कमी थी तो हम इलाज करा लेते।'' नूपुर की माँ इस अप्रत्याक्षित हमले से थोड़ा सकपका गई। परन्तु शीघ्र ही सम्भलकर बोली–''यह मेरी सलाह नहीं है। इन लोगों का अपना फैसला है। नूपुर मेरी तो इकलौती सन्तान है। इसके बच्चे का मुझे आपसे अधिक इंतजार था। फिर भी मैं इनके निजी मामलों में इतना हस्तक्षेप नहीं करती हूँ जितना आप कर रही हैं। रही बात नूपुर में कुछ कमी की तो मैं अच्छी तरह जानती हूँ कि वह पूर्ण स्वस्थ है और वह जो फैसला लेती है उस पर काम करती है। मुझे रात ही इसने फोन पर बताया और मैं इसके फैसले को सहमति देने ही आज सुबह यहाँ पहुँची हूँ।'' इतना कहते-कहते नूपुर की माँ की साँस तेज चलने लगी।

उधर शारदा देवी भी मुँह दूसरी ओर घुमाए गहरी साँस ले रही थी। नूपुर की माँ की बात खत्म हुई तो शारदा देवी ने सोमेश से नाराजगी और उलाहनें भरे शब्दों में कहा–''तुमने अपनी माँ को बताने की जरूरत भी महसूस नहीं की। अपना खून अपना होता है सोमेश। तुम्हें एक बार विचार लेना चाहिए था।''

सोमेश अभी तक हतप्रभ सा खड़ा था उसे माँ के यूँ दुःखी हो जाने का तनिक भी अंदाज नहीं था। वह तो आज तक यही मान रहा था कि इस शुभ समाचार से माँ खुश हो जाएगी। पिता उसे आशीर्वाद देंगे। माँ के लिए गोद लिए या अपने जन्में बच्चे में इतना अंतर हो सकता है यह तो उसने सोचा ही नहीं था। माँ को समझाते हुए सोमेश ने नूपुर की ओर इशारा कर कहा–''माँ यह मेरा और नूपुर का इकट्ठा फैसला है। ऐसा नहीं है कि हमने किसी शारीरिक कमी या मजबूरी में यह फैसला लिया है वरन् सब कुछ सामान्य होते हुए ही हमने ऐसा किया है। जरा सोचो-एक बच्चे की परवरिश में नूपुर के कम से कम दो साल लग जाते। दो साल में जब यह पच्चीस लाख कमा सकती है तो दो लाख में बच्चा ले लेना क्या घाटे का सौदा है? आप अकारण दुःखी हो रही हैं। अपना खून पराया खून ये सब दकियानूसी बातों में उलझने का समय हमारे पास नहीं है।''

शारदा देवी ने सोमेश को अपने सामने इतनी दृढ़ता से बोलते हुए पहली बार देखा था। उनके मुँह से गहरे दुःख के साथ निकला–''बच्चे की पैदाइश एक सौदा भर है तुम लोगों के लिए। अपनी कोख से बच्चे को जन्म देने से बढ़कर पच्चीस लाख कमाना है...?''

बहाना

''माँ जी नमस्ते।'' कांता ने मुख्य द्वार से घर में प्रवेश करते हुए सामने बरामदे में व्हीलचेयर पर बैठी बुजुर्ग महिला को अभिवादन किया। उन्होंने सहर्ष उसका स्वागत किया और पास पड़ी कुर्सी पर बैठने का इशारा करते हुए शिकायत भी कर दी–''कभी बगैर बुलाए भी आ जाया करो कांता। क्या हमसे कोई नाराजगी है?''

''नहीं, नहीं आपसे कैसी नाराजगी। बस बच्चों के काम में पूरा दिन बीत जाता है। कहीं नहीं जा पाती।''

''कहीं जाओ न जाओ इनके पास जरूर आ जाया करो। चार छः रोज तुम्हारी खबर न मिले तो ये परेशान हो जाती हैं,'' कमरे से निकलते हुए बाबूजी बोले।

कांता से माताजी का स्नेह कई कारणों से है। माताजी की दृष्टि में वह शिक्षित, सुगृहणी, धार्मिक और ब्राह्मण परिवार से है। वे अपने बड़ों के दिए संस्कारों के कारण इन गुणों का सम्मान करती हैं और कांता को खिलाकर उन्हें विशेष आत्मिक संतोष प्राप्त होता है। कांता भी माताजी का आदर करती है। क्योंकि वे शरीर से अस्वस्थ और अस्सी वर्ष की आयु होने पर भी कितने सुचारू रूप से गृहस्थ की समस्याओं को सुलझा लेती है। भोर में स्नान, नियमित पूजन, ठाकुर जी का भोग लगाना, वर्ष में कोई न कोई बड़ा धार्मिक अनुष्ठान पूरा करवाना और सभी रिश्तेदारों, पड़ौसियों व परिवार के सदस्यों का ख्याल रखना जैसे माताजी के गुण कांता के लिए प्रेरणास्रोत रहे हैं। मौका पाते ही वह उनके पास बेझिझक चली आती है। आज माताजी ने उसे कुछ विशेष सलाह के लिए बुलाया है। इनके यहाँ कल दुर्गा पाठ है। बड़ा आयोजन होगा। सुबह

हवन जिसे चार पण्डित मिलकर कराएँगे और शाम को करीब पाँच सौ लोगों का भोज। माताजी कांता को कल आने वाले मेहमानों के विषय में बता रही थीं। साथ ही राहुल को सामान इकट्ठा कर देने को कह रही थी। वे बता रही थीं कि कौन सामान कहाँ मिलेगा? क्या अभी बाजार से आना है और किसको निमंत्रण नहीं जा पाया है। राहुल दौड़-दौड़ कर सामान जुटा रहा था। राहुल ने आवाज लगाकर पूंछा—''माँ जी पूजा का घी नहीं मिल रहा है। बाकी सब सामान रख दिया है।''

''घी आया तो था। देखो रसोई में न रखा हो।''

''नहीं वहाँ तो खाने वाला घी है। पूजा का नहीं है।''

कांता का ध्यान बरबस ही उधर खिंच गया। उसकी समझ में न आया कि पूजा के घी से क्या तात्पर्य है। घी तो घी है और पूजा में शुद्ध घी के हवन की परम्परा है। तब पूजा के लिए अलग से घी कैसा? कुछ देर में उसे याद आया कि गौ घृत को हवन के लिए विशेष रूप से अच्छा माना गया है। माता जी ने निश्चय ही कहीं से गौ घृत की व्यवस्था की होगी। करें भी क्यों न, जिस प्रभु ने उन्हें इतनी समृद्धि और योग्यता दी है कि अस्सी की उम्र पार कर चुके बाबूजी आज भी करोडों के टेंडर भरते हैं। तब उसके अनुष्ठान में भला कमी क्यों? माताजी फिर कांता से बातें करने लगी। परन्तु कांता के मन में अभी भी पूजा के घी का अर्थ साफ नहीं हो पाया था। मन को समझाने के बाद भी उसकी जिज्ञासा बार-बार जोर पकड़ रही थी। बात मुँह तक आती और लौट जाती। तभी कांता का ध्यान घड़ी पर गया। दोपहर के दो बजने वाले थे। बच्चों का स्कूल से लौटने का समय हो गया था। वह एक साथ खड़ी हो गई और माताजी से आज्ञा माँगी। माताजी ने उसे कल आने का अपनी ओर से निमंत्रण दे दिया। परन्तु कांता के मन की जिज्ञासा ने फिर जोर पकड़ा और उसके मुँह से बरबस ही निकल गया—''माताजी पूजा का घी कहाँ से मंगाया आपने?''

''यहीं किराना से।''

''अच्छा, यहाँ गौ घृत मिलता है?''

''अरे नहीं। पूजा के लिए कुछ कम्पनियों ने सस्ता घी बनाया है। तुमने सुना नहीं था। कुछ दिनों पहले नकली घी का कारोबार चला था। तो लोग अब जान गए हैं। वे अपने खाने के लिए घर में घी निकालना ठीक समझते हैं या महँगा शुद्ध घी लेते हैं और सस्ता घी पूजा पाठ के लिए लेते हैं।''

''पर पण्डितजी एतराज नहीं करते?''

‘‘अरे पगली, वे क्यों एतराज करेंगे। पिछली बार पण्डितजी ने ही बताया था कि पूजा का घी अलग आता है।’’

कांता घर लौट आई। बच्चे आ गए थे वही रोज की भागदौड़ शुरू हो गई। पूरा दिन बीत गया। कांता थक कर चारपाई पर लेटी तो पूजा के घी ने उसे घेर लिया। पूजा में नकली सस्ता घी...। करोड़ों की सम्पत्ति, लाखों का भोज, इतना बड़ा अनुष्ठान...। बचपन में जब गर्मी में दूध की खपत बढ़ती थी और घर में गाएँ दूध देना कम करती थीं तो माँ घी गर्माते समय पूजा का घी का डिब्बा भरकर अलग रख देती थी। वह कहती थी–‘‘तुम थोड़ा कम भी खा लो तो कोई बात नहीं। जोत बत्ती का घी जरूरी है।’’ यही सब सोचते कांता सो गई।

सुबह उठकर कांता घर का काम जल्दी-जल्दी निबटाने लगी। अभी माताजी के यहाँ से कोई बुलाने आ गया और उसका काम न निबटा तो खराब लगेगा। यही सोचकर वह और तेजी से काम समटने लगी। उसने बच्चों को जल्दी नहला खिला दिया। स्वयं नहाकर तैयार हुई। जाने के कपड़े निकालने लगी कि तभी पूजा के घी ने उसके मन पर डेरा जमा लिया। कांता ने कपड़े जहाँ के तहाँ रख दिए। अचानक उसके मन ने फैसला लिया–‘‘जहाँ हवन की ही शुद्धता नहीं ऐसे धार्मिक अनुष्ठान में शामिल होने का क्या लाभ? प्रसाद मेवायुक्त और भोज मे चार मिठाई पर हवन में अशुद्ध घी। यह कैसा अनुष्ठान?’’ कांता ने बच्चों को स्कूल भेज दिया। स्वयं एक साधारण साड़ी पहनकर तैयार हुई। वह जल्दी-जल्दी घर का ताला बंद करने लगी। तभी राहुल ने आवाज दी–‘‘दीदी चलो। माँजी बुला रही हैं।’’ कांता ने रिक्शे की ओर बढ़ते हुए राहुल से कहा–‘‘माँजी से कहना मेरी बहन की तबियत ठीक नहीं है। मैं उसे देखने जा रही हूँ। पूजा में शामिल नहीं हो पाऊँगी।’’

बोहनी

''सब्जी वाला, सब्जी वाला...'' की आवाज लगाते हुए दीपक जैसे ही कालोनी में आया तो कई घरों के दरवाजे खुल गए वा कुछ लोग खिड़कियों से झांकने लगे। दीपक अपने नित्य नियम से सबसे पहले कोने वाले एक पुराने घर के सामने रुक गया। दीपक ने आवाज लगाई—''आओ चाची, जल्दी आओ।''

कोई जवाब न पाकर दीपक ने साइकिल खड़ी की, गेट खोला और घर में चला गया। कुछ देर बाद वह एक बुजुर्ग महिला का हाथ पकड़े बाहर निकला। वह दूसरे हाथ में कुर्सी पकड़े था। दीपक ने कुर्सी लान में बिछा दी और उस पर बुजुर्ग महिला को ठीक से बैठा दिया। फिर साइकिल से सब्जी की टोकरी उतार कर उसके सामने रख दी। महिला सब्जी छाँटने लगी। दीपक अपनी कोशिश से अच्छी से अच्छी सब्जी निकाल कर दिखा रहा था। महिला ने एक छोटा सा गोभी लिया और बटुवे से पाँच रुपए निकाल कर दीपक के हाथ पर रख दिए। दीपक ने उन्हें माथे से छुवाया। बुजुर्ग महिला ने उसके सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया। दीपक साइकिल पर टोकरी रखकर गली में आगे बढ़ गया।

दीपक जिस समय बुजुर्ग महिला को सब्जी दिखा रहा था ठीक उसी समय दो घर आगे उसके व्यवहार को लेकर एक परिवार में किच-किच हो रही थी। महेश ने झल्लाकर पत्नी से कहा—''यह पोंछे की बाल्टी कमरे के बीच में क्यों रखी है? बाई कहाँ चली है? तुम इनके कामों पर ध्यान नहीं देती हो तभी तो कोई भी काम ठीक से नहीं निबटता है।''

पत्नी ने रसोई से ही जवाब दिया—''कहीं नहीं गई होगी। बाहर सब्जी ले रही होगी।''

महेश ने पत्नी को डपटा—''कितना समय लगता है सब्जी लेने में?''

''यह सब्जीवाला देर लगाता है। बगैर कोने वाले घर में सब्जी दिए आगे बढ़ता ही नहीं। मुश्किल से पाँच दस रुपए की सब्जी खरीदते हैं ये लोग। पर यह है कि उतने ही के लिए घंटो सिर खपाता है।''

महेश ने पत्नी को समझाते हुए कहा—''उससे कहो पहले सब्जी यहाँ दे। तब उस घर में जाया करें।''

पत्नी दुःखी मन से बोली—''कितनी बार कहा। सुनता कहाँ है।''

रमेश ने तर्क किया—''तुम किसी और से सब्जी क्यों नहीं खरीदती?''

''औरों से इसकी सब्जी और तौल ठीक है। इसीलिए इंतजार करना पड़ता है।''

''तो मेहरी को बाहर तब भेजो जब वह खुद आकर आवाज लगाये।''

''पर रुकता भी तो नहीं। आवाज लगाता हुआ आगे बढ़ जाता है।''

रमेश ने बाहर झाँका। मेहरी अभी भी खड़ी सब्जी वाले का इंतजार कर रही थी। रमेश बाबू को ताव आ गया। वे बाहर निकल आए। तब तक दीपक भी लगभग उनके घर के पास पहुँच गया। महेश ने थोड़े गुस्से से दीपक से कहा—''तुम रोज इधर देर में क्यों आते हो?''

दीपक धीरे से बोला—''पहले बाबूजी के घर सब्जी देते हैं साहेब।''

''क्या मिलता है वहाँ?''

''हमारी बोहनी होती है।''

''पाँच दस रुपए की सब्जी बेक कर बोहनी होती है और यहाँ सौ की बिकती है उसमें बोहनी नहीं होती?''

दीपक चुपचाप मेहरी की बताई सब्जी तौलने लगा। महेश बाबू उसे डाँटते हुए बोले—''कल से तुम पहले इस घर में सब्जी लाओगे। वरना तुमसे सब्जी लेना बंद कर देंगे। समझे?''

दीपक ने सब्जी टोकरी में पलटते हुए कहा—''बारह बरस के थे साहब हम। तब से उनके यहाँ सब्जी देते हैं। उस समय कालोनी में बस तीन घर थे। बाकी सब मैदान था। आज चाहें जितने दुमंजले तिमंजले बन गए हों, उस समय वही घर चमकता था। तब सब से बाद में आते थे उनके यहाँ। वे हमारी सारी सब्जी खरीद लेते थे। तब उनके बच्चे थे और नौकर चाकर भी। चाची हमारे लिए दाल-भात बचाकर रखती थी। दोपहर भर वहीं आराम करते थे। एक दिन न आये तो चाची गेट पर खड़ी इंतजार करती थी। बाबू साहेब ने हमें

जोड़ हिसाब सिखाया। बिन माँ बाप के बालक का कोई गैर इतना करता है? उनका दिया एक रुपया हमारे लिए सौ के बराबर है। उस घर को छोड़कर हम आगे नहीं बढ़ सकते साहेब। आपकी मर्जी सब्जी लें या न लें।''

महेश दीपक का मुँह देख रहे थे। उनका क्रोध शांत हो गया था। वे जैसे किसी स्वप्न से जागे। दीपक मेहरी से पैसे लेकर आगे बढ़ गया।

अपने पराए

भगवान भास्कर के प्रसाद की महिमा भी अनोखी है। गर्मी में जब इसकी देह झुलसाती है तब जीवमात्र बेचैन हो जाता है और जरा सी छाया को तरसता है। बरसात में धूप छाँव का खेल राह चलतों से अधिक घर बैठी महिला की मुसीबत बन जाता है। घर का सामान धूप में फैलाया नहीं कि मिनटों में काला बादल घिर आया। सामान आधा-अधूरा समेटते तक मोटी-मोटी बूंदे टपकने लगी। अभी पूरा समेट कर साँस भी ठीक से न ले पाई थी कि चटक धूप खिल उठी। ऐसे में धैर्यमयी भी कह देती है—''प्रभु या तो बरस ही लो या दो-चार घंटे धूप की मेहरबानी कर दो।'' पर देव कब सुनने वाले हैं, वे तो हर मौसम हर दिन अपनी ही चाल चलते हैं। ठण्ड के मौसम में सूर्यदेव के दर्शन तमाम मानवीय उपकरणों को फीका कर देते हैं। घर हो या ऑफिस मैदान हो या गली जरा सी धूप मिली नहीं कि बदन गर्माने वाले तुरंत दौड़े। ऐसा ही धूप का एहसास कराने वाला माघ मास चल रहा था। मैं खाना खाकर धूप का आनंद ले रही थी। इसी लोभ में एक पड़ौसन भी आ बैठी और कुछ देर बाद लालू कुत्ते ने भी गेट के बाहर पटिया पर पैर फैला दिए। घंटे भर बाद पड़ोसन तो उठकर चली गई पर लालू नहीं। मैं भी अंदर आकर लेट गई। अभी एक झपकी आई थी कि बाहर से विचित्र सी आवाज सुनाई पड़ी। आवाज इन्सानी थी इतना तो समझ में आया पर किस भाषा में कौन किसे पुकार रहा है यह स्पष्ट न हुआ। मैंने भी बाहर निकल कर देखने का प्रयास न किया। मन ने कहा—''अरे दिन भर सड़क चलती है। कोई न कोई आता जाता रहता है। कोई किसी को पुकारता होगा मुझे क्या।'' कुछ देर बाद मैं अपना घरेलू काम समेटने

लगी। शाम के नाश्ते, खाने की तैयारी, प्रेस और ऐसे ही छोटे-बड़े काम। परन्तु बाहर से विचित्र भाषा में किसी के पुकारने की आवाज बराबर आती रही। मैं कपड़े लेने बाहर आई तो देखा लालू जा चुका था। उसके स्थान पर एक अति कृशकाय बुजुर्ग महिला अपनी छोटी सी पोटली बगल में दबाए लेटी थी। इससे पहले कि मैं उससे कुछ पूंछती वह किसी को पुकारने लगी। अब मुझे अनजानी भाषा का रहस्य स्पष्ट हुआ। परन्तु वह क्या बोल रही है यह अब भी समझ में न आया। मैंने बाउंड्री के बाहर दूर तक नजर दौड़ाई-शायद इसका कोई साथी हो। पर उसके साथी जैसा कोई दिखाई न दिया। बूढ़ी ने फिर पुकार लगाई। मैं उसके करीब पहुँच गई। उसकी नजर मुझ पर पड़ी और वह अपनी भाषा में मुझे कुछ समझाने लगी। उसके बोलने और इशारों से इतना तो समझ में आया कि वह किसी मुश्किल में है और किसी का इंतजार कर रही है। पर इसे कौन किसलिए यहाँ छोड़ गया है समझ में न आया। मुझे लगा शायद यह भूखी है। मैंने उसे दाल चावल दिए। उसने हाथ में लिए जरूर पर खाया एक कौर भी नहीं। आहिस्ता से पोटली के पास रख लिए और फिर टेर लगाने लगी। मुझे कौतुहल हो रहा था। मैं समझ नहीं पा रही थी कि वह गुमशुदा है या स्वेच्छा से घर छोड़कर चल पड़ी है। विक्षिप्त है या भिखारिन। वह मुझे समझाने का बार-बार असफल प्रयास करती रही।

संध्या घिरने लगी थी। मुझे लगा इस बुजुर्ग को भी ठण्ड से बचाने के लिए कुछ देना चाहिए। परन्तु अगले ही पल ख्याल आया–''इसने मेरा दिया खाना नहीं खाया पता नहीं कपड़ा भी लेगी या नहीं। शायद इसकी पोटली में शाल या स्वेटर हो।'' मैंने उसे हाथ के इशारे से अपने शाल की ओर संकेत करते हुए उससे पोटली से कपड़े निकालने को कहा। परन्तु उसने बड़बड़ाते हुए पोटली को पहले से अधिक मजबूती से पकड़ लिया। इसी बीच एक सम्भ्रात महिला जो संध्या भ्रमण को निकली थीं। उसकी आवाज सुनकर रुक गई। वे उससे बातें करने की कोशिश करने लगी। शायद यह महिला उन्हीं के इलाके से थी। बुढ़ापे की अस्पष्टता के बाद भी वे उसकी काफी बातें समझ गई। उनका सार उन्होंने मुझे बताया–''कह रही है–इसके बेटे हैं। उनके बच्चे हैं और इसके घर में बहुत राज है।'' उन्होंने उसे डपटते हुए कहा–''राज है तो यहाँ सड़क पर क्यों बैठी है?'' उससे हुई बात उन संभ्रात महिला ने पुनः मुझे समझाई। कहती है–''मेरा बेटा आएगा। मुझे ले जायगा।'' वे बोली–''बताओ इसको समझ नहीं आ रहा है कि बेटा लेने आता तो छोड़ क्यों जाता?''

''बेटा छोड़ गया, पर क्यों?'' मैंने आश्चर्य से बूझा।

उनके चेहरे पर दुःख का भाव उभर आया। गहरी साँस खींचते हुए आहिस्ता से बोली–''बस जी अधिक गरीबी और अधिक अमीरी इन्सान से जो न करा ले वह थोड़ा। ये दोनों ही इन्सान को इन्सान नहीं रहने देती। हमारे इलाके से कितने ही हर साल अपने बड़े बुजुर्गों को ऐसे ही छोड़ आते हैं।''

''आपके ही इलाके से ऐसा क्यों? गरीबी तो और जगह भी है।''

''नहीं जी, घोर गरीबी क्या होती है। इसे शायद यहाँ के लोग कभी न समझ पाए। पेट भरने को इन्सान क्या कुछ कर गुजरता है इसकी कल्पना भी यहाँ करना मुश्किल है।''

मैं उनके चेहरे पर उभरी गहरी पीड़ा को भांप रही थी। उन्होंने उस वृद्ध महिला को अपने साथ ले जाने का प्रयास किया। पर वह टस से मस न हुई। हर बार अपनी पोटली को और कसकर पकड़ते हुए अपने बेटे को गुहार लगाने लगी। बीच-बीच में वह टके की माँग कर रही थी। हार कर वे संभ्रात महिला उसे बीस का नोट थमा कर चली गई। हल्का सा अंधेरा घिर आया था। मैं भी अंदर आकर खाने की तैयारी में लग गई।

बूढ़ी का पुकारना शांत था। संभवतः लोगों के आवागमन से उसे अपने बेटे के आने की उम्मीद बढ़ गई थी। मैं फोन पर अपने बेटे से बातें कर रही थी। तभी बबीता आण्टी-आण्टी आवाज लगाती हुई घर में आई। वह मुझे ढूँढ़ती हुई सीधी कमरे में अंदर आ गई। मैंने उसे हाथ के इशारे से कुछ देर शांत रहने को कहा। वह रसोई में दूध गर्म करने लगी। बबीता बचपन से अपनी माँ के साथ मेरे यहाँ आती थी। अब वह वयस्क हो गई थी। उसने कई घरों का काम सम्भाल लिया था। बबीता सुबह के समय मेरे यहाँ सफाई करने आती थी और शाम को दूध लेकर। इस समय वह फुर्सत में रहती थी। उसकी पसंद का टी. वी। सीरियल इसी समय आता था। उसको देखना, अपनी पसंद का कुछ लेकर खाना और मेरे खाने की तैयारी में थोड़ा हाथ बटा देना उसके काम थे। परन्तु इन सबसे अहम काम था–डॉ. साहब के बाहर चले जाने और मेरे अकेले रह जाने पर मुझे सुरक्षा संबंधी हिदायतें देना। बाहर बूढ़ी को बैठी देखकर बबीता इतनी परेशान हुई कि जैसे ही उसे लगा मैंने फोन रख दिया है, वह तुरंत मेरे पास आकर खड़ी हो गई। अपनी परेशानी को उसने प्रश्नों के रूप में उड़ेल दिया–''आण्टी आज आप बाहर नहीं निकली क्या? आपको मालुम है बाहर कौन जमा बैठा है? आपने अभी तक उसे देखा भी है या नहीं?'' बबीता के

हाव-भाव देखकर मुझे हल्की हँसी आ गई। इससे वह झुंझला गई और मुझे जल्दी बाहर चलकर बूढ़ी को देखने के लिए कहने लगी। मैंने उसे समझाया कि मुझे मालुम है बाहर कौन है?

''तब आपने अभी तक उसे भगाया क्यों नहीं?'' बबीता ने मेरी नासमझी पर तरस खाया।

''खुद चली जायेगी। भगाने की क्या जरूरत है। मैंने सहजता से कहा।''

इतना सुनते ही बबीता में बड़प्पन जाग गया। उसने मुझे ढेरों नसीहतें दे डाली। शहर में हो रही चोरी डकैतियों के कितने ही किस्से सुना दिए। मैं हाँ-हूँ करते हुए उसकी बातें सुनती रही। वह अपनी पूरी बुद्धि लगाकर मुझे समझाने का प्रयास कर रही थी कि घर के पास ऐसे लोगों का बैठना या घूमना उचित नहीं है। इन सारी घटनाओं के पीछे ऐसे ही लोगों का हाथ रहता है। परन्तु बबीता की सारी समझदारी मेरी नासमझी को तिलभर भी न हिला पाई।

मैं उठकर दूसरे कमरे में आ गई। टी.वी. चालू किया और बबीता को उसका पसंदीदा सीरियल देखने को कह दिया। पर उसकी बेचौन निगाहें गेट की ओर लगी थी। हर पाँच-दस मिनट में वह बाहर झाँक आती। उसने टी.वी. देखा पर उतनी तन्मयता से नहीं जैसे रोज देखती थी। आज बबीता के लिए टी.वी. से बड़ा मनोरंजन शायद गेट के बाहर था। जैसे ही सीरियल समाप्त हुआ वह उठ गई और सीधी बाहर लॉन में पहुँच गई। मैं अभी कुछ मिनट के समाचार ही देख पाई थी कि बबीता की जोर-जोर से बूढ़ी को डाँटने की आवाज आने लगी। मैं बबीता और बूढ़ी के बीच सुलह कराने में अपना समय लगाना नहीं चाह रही थी। क्योंकि बबीता को मना करने का विशेष लाभ होने वाला नहीं था और दिन भर में बूढ़ी को भी इतना समझ गई थी कि वह बबीता की बातों से हटने वाली नहीं है। अतः मुझे विश्वास था कि कुछ देर में मामला अपने आप सुलझ जायगा। फिर वृद्धा बाहर बैठी रहे इससे मुझे कोई हानि भी नहीं थी। परन्तु अभी मैं कोई काम शुरू करती कि वृद्धा के चिल्लाने की अजीब सी आवाज आई। मैं बाहर आई तो देखा कि बबीता गेट के बाहर पानी फेंक रही थी। वृद्धा शायद उससे कुछ भीग गई थी। इसीलिए अजीब आवाज निकाल रही थी और अपनी गठरी व मेरे दिए दाल-चावल समेट रही थी। साथ ही बबीता को अपनी भाषा में भला-बुरा कह रही थी। बबीता इससे और उत्तेजित हो रही थी। मैंने बबीता को डाँटकर पानी फेंकने से रोकना चाहा। परन्तु उसने मेरे देखते ही देखते पूरी बाल्टी पटिया पर उड़ेल दी। बूढ़ी अपना सामान लेकर

बबीता को बद्दुआएँ देती हुई सामने वाले घर की पटिया पर जा बैठी। बबीता अपनी शैतानयुक्ति और विजय पर ठहाका लगाकर हँस पड़ी। मैं उसकी मूर्खता पर क्षुब्ध थी। अब उसे डाँटने या समझाने का कोई लाभ नहीं था। मैंने केवल नाराजगी से बबीता को देखा। वह बोली—''आण्टी आप समझ नहीं रही हैं। अंकल भी नहीं हैं। आप अकेली हैं। यहाँ बैठे यह इसको जान जाय और फिर अपने दस-पाँच साथियों को बुला ले। आप तो इसके लिए फटाफट गेट खोल देंगी। इतने में बस हो गया काम।''

मैंने बबीता को चले जाने का इशारा किया। मेरी नाराजगी समझ कर वह चली तो गई पर जाते-जाते मुझे सम्भल कर रहने की हिदायत दे गई।

करीब एक घंटे बाद मेरा खाने का समय हो गया था। मैं अभी असमंजस में थी कि बाहर उस वृद्धा को खाना दूँ या नहीं। तभी उसके तेज चिल्लाने की आवाज आई। लगा जैसे कोई उससे झगड़ रहा है। मैं यह सोच कर हैरान थी कि समझाने और मना करने के बाद भी यह बबीता बूढ़ी से झगड़ने चली आई है। मैं तेजी से बाहर आई। गेट खोल कर बूढ़ी की ओर बढ़ी तो देखा नजारा कुछ और ही था। इस बार बबीता नहीं लालू अपनी टीम के साथ वृद्धा से भिड़ रहा था। उसका ऐसा करने के कई कारण थे—लालू और उसकी पार्टी इस गली के पहरेदार थे, ये गेट बाहर की पटियाएँ, जहाँ वृद्धा आश्रय खोज रही थी रात में इनके विश्राम स्थल थे और इसके अतिरिक्त वृद्धा के पास रखा खाना और उसकी पोटली इनमें लालच पैदा कर रही थी। वृद्धा ने खाना फेंक कर अपनी जान बचाने की कोशिश की। परन्तु लालू का अभी भी उस पर गुर्राना जारी था। इसी बीच सामने के घर से भाभीजी और उनका बेटा राज निकल आए। परिचितों को देखकर और आवाज सुनकर लालू और उसकी टीम पीछे हट गई। राज ने डपटकर उन्हें और दूर भगा दिया। वृद्धा डरी, सहमी सिकुड़कर बैठ गई। हम कुछ देर उसके बारे में बातें करते रहे। 'यह रात भर यहाँ कैसे रहेगी। रात में और भी जानवर आ सकते हैं। ठण्ड बढ़ेगी तब क्या करेगी?' ऐसी ही बातें कुछ देर होती रही। तभी राज को एक विचार आया। वह बोला—''मम्मी आप इसे कुछ खाना दे दो। फिर मैं इसे स्टेशन छोड़ आता हूँ। वहाँ तो इसके जैसे बहुत हैं। आराम से इसकी रात कट जाएगी।''

ख्याल ठीक था। हमें भी लगा कि वहाँ कम से कम जानवर तो तंग नहीं करेंगे। अलाव जलते हैं ठण्ड से भी बच जाएगी। शायद आते-जाते कोई पहचान वाला ही टकरा जाय तो अपने घर लौट सकेगी। राज ने स्कूटर बाहर

निकाल लिया। भाभीजी ने वृद्धा को खाना दिया। इस बार उसने उसे रखा नहीं तुरंत खाने लगी।

वृद्धा का खाना खत्म हुआ। राज ने उसे स्कूटर पर बैठने का इशारा किया। हम भी उसे इशारों और बोलकर राज के साथ जाने को समझाने लगे। परन्तु वृद्धा ने ठीक वैसे ही जैसे शाम को उन संभ्रात महिला के साथ जाना नकार दिया था राज के साथ जाने से भी इन्कार कर दिया। वृद्धा की हट के सामने हम सभी हार गए। राज ने स्कूटर वापस रख दिया। भाभीजी और मैं खाना-खाने अपने-अपने घरों में चले गए।

खाना-खाते हुए मैं देर तक टी.वी. देखती रही और फिर घर के गलियारे में टहलने लगी। जब तक मैंने गलियारे में दस बारह चक्कर लगाए मेरा मन हजारों मील का सफर तय कर लौट आया और पुनः वृद्धा पर केन्द्रित हो गया। क्योंकि उसके लिए आज के कौतुहल का सबसे बड़ा केन्द्र वह ही थी। मेरे मन में उसको लेकर ढेरों सवाल उठ रहे थे। जिनमें बहुतों का जवाब मेरी कल्पना शक्ति दे रही थी और कुछ को लेकर मौन थी। इसी बीच मुझे एहसास हुआ कि ठण्ड प्रतिघंटा बढ़ रही है। मेरे पास पर्याप्त कपड़े हैं। इससे पहनने में कपड़ों की मनचाही वृद्धि कर सकती हूँ। पर इस कोहरे में वह कृशकाय? उस पर न छाया है न पूरा बदन ढकने का कोई गर्म कपड़ा। घर में रहकर जब कपड़ों से जरा हाथ बाहर निकालते ही ठिठुरने लगे तो वहाँ उसका क्या हाल होगा? क्यों न मैं उसे बरामदे में आने को कह दूँ। एक पुराना कंबल भी मेरे पास है। जो उसे काफी राहत दे सकता है। स्टोर में कुछ लकड़ी है जो मैं उसे दे सकती हूँ। कुछ देर ताप लेगी तो आराम पा जाएगी। यही सोचकर मैं गलियारा पार कर मुख्य द्वार तक आई। परन्तु बबीता की हिदायतों ने मेरे हाथ को सिटकनी खोलने से रोक दिया। उसका वाक्य मेरे कानों में गूंज गया। ''आप तो उसके लिए...।'' मैं ठिठक गई। आखिर बबीता की मैं कौन अपनी हूँ? वह बचपन से मेरे पास आती है। कुछ उपहार और दुलार पा जाती है। बस इस नाते ही तो समझा गई है। मुझे अकेले में बहुत बहादुरी नहीं दिखानी चाहिए। न जाने मुसीबत किस रूप में आ जाए।

अगले ही पल मैं वृद्धा के घर परिवार के विषय में सोचने लगी। यदि यह बिछुड़ गई है तब वे इस समय कितने दुःखी होंगे। छोड़ गए हैं तो कितने निश्चित होकर सोए होंगे। परन्तु बार-बार उन संभ्रात महिला की बातों पर गौर करने के बाद भी मेरा मन यह विश्वास नहीं कर पा रहा था कि कोई अपनों

को यूँ ही कैसे छोड़ सकता है। इतना विचारते तक तापमान कुछ डिग्री और गिर गया। मेरी आँखे नींद से बोझिल होने लगी। मन में सुना सुनाया एक बड़ा परिचित सा व्यवहारिक ख्याल आया कि यह संसार है इसमें एक से बढ़कर एक दुःखी इन्सान हैं। किस-किस की चिंता की जाय। अपना भला हो जाय इतना ही बहुत है। इस विचार ने मुझे बड़ा हल्का कर दिया। मैं बिस्तर पर लेट गई। पर एकाकी को विचारों से निजात कहाँ? मन रह-रह कर वहीं अटक जाता है जहाँ से बुद्धि उसे निकालना चाहती है। सो सामने की पटिया पर पोटली बनी बैठी वृद्धा की तस्वीर फिर उभर आई। इस बार मुझे न बबीता पर, न वृद्धा के परिवार वालों पर और न ही असहायों की सहायता के राग अलापने वाली समाज सेवी संस्थाओं एवं प्रशासन पर गुस्सा आया बल्कि स्वयं पर ही क्रोध आया। आखिर इतना भय किसलिए? मैं उठी और कम्बल लेकर इस विचार से गेट तक पहुँच गई कि कुछ अधिक नहीं तो मैं यह कम्बल तो उसे ऊढ़ा ही सकती हूँ। यदि मेरी बात समझकर वह बरामदे में आना चाहे तब भी मुझे कोई डर नहीं है। घर में अन्दर दरवाजे मजबूत हैं। यही सोचकर मैंने सामने पटिया पर नजर दौड़ाई। यह क्या? पटिया तो खाली थी। वृद्धा कहाँ गई? एक पल मन में सुखद विचार आया—''उसके परिवार का कोई उसे ले गया है।'' अगले ही पल में सिहर गई। लगा बबीता का सोचना तो सच नहीं? मैंने चारों ओर नजर दौड़ाई वह कहीं दिखाई न दी। मैं सड़क पर देखने लगी। घने कोहरे में धुंधली सी कोई छाया धीरे-धीरे अज्ञात राह पर बढ़ रही थी। निश्चित ही यह वृद्धा थी। उसकी पोटली सिर पर नजर आ रही थी। वह आहिस्ता-आहिस्ता सर्द रात के सूनेपन में लोप हो गई। मैंने जल्दी से दरवाजा बंद किया और एक अनचाहे दायित्व से छुटकारे का एहसास कर मैं लेट गई।

रिश्तेदार

यूँ तो दुबेजी का पूरा परिवार ही धार्मिक वृत्ति और सामाजिक कार्यों में बढ़-चढ़ कर हिस्सा लेने वाला है। पर उनकी माताजी की तो धर्म में विशेष आस्था है। वर्ष में दो-तीन धार्मिक आयोजन कर लेती हैं। उन्हीं की प्रेरणा है जो पूरे परिवार का आयोजनों में सहयोग रहता है। बहुएँ भी सास से कम नहीं। पूजा-पाठ, व्रत त्यौहार सब पूरे मन से निभाती हैं।

उस रोज उनके घर देवी पूजन था। यह केवल महिलाओं का ही छोटा सा आयोजन था। कालोनी की 15-20 महिलाएँ एकत्र थी। पूजन के बाद महिलाएँ उठने लगी तो रीना भाभी ने एक का हाथ पकड़कर बैठा लिया—''अरे ऐसी भी क्या जल्दी है घर जाने की। कौन सा चूल्हे पर दूध चढ़ाकर आई हो। किसी बहाने तो घर से निकलना हुआ है। जरा देर बैठो तो सही।'' इसी के साथ बाकी सबको भी बैठने का आग्रह करते हुए उन्होंने बहुओं को चाय बनाने का आदेश दे दिया।

लगभग सभी यथास्थान बैठ गई। जो एक-दो जाना चाहती थी, उनको भी उनके बगल वालियों ने बैठा लिया। शोभा बोली—''अरे जब चाय बन ही रही है तो सब पीकर ही जाओ। कितनी देर लगनी है?''

दो-चार मिनट के सामूहिक वार्तालाप के बाद वहाँ दो-दो, चार-चार के अलग-अलग समूह बन गए जो स्वचालित थे। उन्हें बातों के मुद्दों का चुनाव करने, एक मुद्दे को छोड़ दूसरा उठा लेने, लगातार बोलते रहने या चुप दूसरे को सुनते रहने की आजादी थी। वहाँ न किसी संचालक की आवश्यकता थी न परीक्षक की। अपनी बातों और निष्कर्षों को सही गलत ठहराने के लिए ये

समूह पूर्ण स्वतंत्र थे। कहीं बाल गोपालों की खबर सुध ली जा रही थी तो कहीं देश दुनियाँ के मुद्दे गरम थे। कोई अपने घर की चिंता में थी तो कोई मोहल्ले पड़ौस की चिंता में। अल्पज्ञानी मुस्कुराते और सिर हिलाते हुए दूसरों की बात से सहमति जता रही थी और ज्ञानवान अपनी चलाई हर बात को विविध तर्कों से सजा कर साथ बैठियों से हामी भरवा रही थी। इसी बीच निर्मला भाभी की आवाज उभरने लगी। वे अपने किसी रिश्तेदार की चर्चा कर रही थीं। बात थोड़ी दिलचस्प थी और उनकी आवाज भी ऊँची व भावुक। सो धीरे-धीरे लगभग सभी का ध्यान उनकी ओर आकर्षित हो गया और वे तन्मयता से किस्सा सुनाने लगी। जो किस्से में बाद में शामिल हुई थीं उन्होंने बगलवालियों से आहिस्ता से पृष्ठभूमि जान ली और उनकी बातें सुनने लगी।

निर्मला भाभी बता रही थीं—उनके पति ने सेवानिवृत्ति से पन्द्रह वर्ष पूर्व अपने ही शहर में घर बनवाया था। यह सोचकर कि घर की देख-भाल बनी रहेगी, अपने एक कुटुम्बी भाई को उसमें रख दिया। अपनी तो बदली जहाँ-तहाँ हो रही थी। वह मकान बनाने की स्थिति में नहीं था। किराए के घर में रह रहा था। सात आठ साल बाद उन्होंने घर खाली करने को कहा। घर में जगह-जगह टूट-फूट हो रही थी। मरम्मत व रंगाई कराना जरूरी हो गया था। पर उसने खुशामद कर एक साल और निकाल दिया। इसी बीच किसी मित्र से बात हुई तो मित्र ने बताया—''यदि कोई दस वर्ष तक घर में रह ले और उसके लिए पर्याप्त साक्ष्य भी एकत्र कर ले तब घर उसी का हो जाता है। सरकार ने ऐसा नियम बनाया है।'' हमें लगा कि हमारे साथ तो ऐसा नहीं होगा क्योंकि हमारे संबंध काफी अच्छे हैं। परन्तु वह दो तीन वादे कर मुकर गया और फिर साफ कह दिया—''मेरे बच्चे यहाँ पढ़ रहे हैं। मैं कहाँ जाऊँगा? आप मेरे रहते ही मरम्मत करा दो।'' अब तो जी हमें थोड़ा संदेह हुआ। दाल में कुछ काला नजर आने लगा। इसीलिए उस पर जोर डाला तो वह तो मुकाबले पर उतर आया। दो चार मौहल्ले वाले और रिश्तेदार भी उसकी तरफदारी करने लगे। हमें लगा कि जिंदगी भर की कमाई गई हाथ से। हमने भी अपनी बात रिश्तेदारों और मौहल्ले वालों के सामने रखी। हमें बहुतों को तो यह समझाना कठिन हो गया कि हम मकान मालिक हैं क्योंकि उसने सबसे खुद को ही मालिक बताया हुआ था। जो पुराने लोग थे वे तो हमें जानते थे। पर नए तो शक्ल भी नहीं पहचानते थे। वे हमें ही गलत समझ रहे थे। दो चार बार कहा सुनी हुई। हाथापाई तक नौबत आ गई। पर हम भी अड़ गए कि अब घर खाली करा कर ही दम लेंगे,

भले ही पुलिस और कोर्ट कचहरी करनी पड़े। बड़ा कष्ट होता था जी। कितनी मुसीबतों से घर बनाया और दूसरा कब्जा बैठा। खैर देवी माँ की कृपा हुई। घर खाली हो गया। अब कसम खा ली है भले ही खाली पड़ा रहे किसी को रखना नहीं है। एक ने सवाल किया—''किराया देता था या नहीं?''

''अजी, कैसा किराया। किराया देना पड़ता तो इतना लालच न होता। मुफ्त का माल हाथ लग रहा था। तभी तो।''

दूसरी ने कहा—''अजी बगैर कुछ लिए खाली कर दिया। यही गनीमत समझें। वरना बहुत से तो उल्टा चपत लगा जाते हैं। अपनी गरज को लाख दो लाख देना पड़ जाता है।''

एक सखी जो अभी कम उम्र की थी व दुनियाँ के कटु अनुभवों से अनभिज्ञ थी थोड़े आश्चर्य से बोली—''ऐसे भी रिश्तेदार होते हैं?'' निर्मला भाभी दुःखी हो कहने लगी—''अजी, हमीं क्या जानते थे, ऐसे भी रिश्तेदार होते हैं। वरना पहले ही किनारा कर लेते। इतने दिनों मुफ्त रह गए उसका गुन एहसान तो दूर उल्टे दुश्मनी बंध गई।'' रीना भाभी ने उनका दुःख बाँटने के लिहाज से कहा—''अब भलाई का जमाना नहीं रहा बहन। अपनी कॉलोनी में ही देख लो। बेचारे गुप्ता जी अपना घर होते हुए भी कितने सालों तक किराए के घर में रहे। लाला ऐसा घेर के बैठा कि खाली की सारी उम्मीद खत्म हो गई। वो तो मिसेज गुप्ता के भाई ने हिम्मत कर खाली करा लिया वरना बेचारे गुप्ता जी तो हिम्मत हार गए थे।'' शोभा जी बोल पड़ी—''अरे भाभी हमारे एक रिश्तेदार को तो इस चक्कर में घर बेकना ही पड़ गया। किराएदार ने उनके बाहर रहते मकान में फेर बदल भी खूब कराए और आखिर में घर कब्जा ही लिया। आधे-अधूरे दामों पर ही घर छोड़ना पड़ा।'' रीता बोली—''ये सब किस्से सुनकर मुझे तो डर लग रहा है। चार साल से हमारे यहाँ भी किराएदार हैं।'' शोभाजी ने समझाया—''अजी फौरन खाली कराओ। चार साल बहुत होते हैं। घर सलामत रहे तो किराएदारों की कमी नहीं। पर घर ही हाथ से निकल जाए तो क्या करिएगा ?'' तीन चार ने एक साथ हामी भरी। एक ने बात आगे बढ़ाई —''एकदम ठीक कहा जी आपने। पहले ही सावधान रहने में भलाई है। वरना बाद में पछताना ही पड़ता है।'' देर से चुप बैठी मिसेज शर्मा बोल पड़ी—''नहीं जी, अभी पूरी दुनियाँ बेइमान नहीं हो गई है। संसार में भले लोग भी मौजूद हैं।''

शर्मा परिवार इस शहर में कुछ वर्षों पहले ही आया था। मिसेज शर्मा घर से कम ही निकलती थी और निकली भी तो बोलती बहुत कम थीं। क्योंकि

नई जगह के रीति रिवाजों और व्यवहार को समझने में समय लगता है और इसका सबसे बेहतर तरीका यही है कि चुपचाप सबकी सुनते रहो। कुछ समय बाद बातें स्वतः स्पष्ट होने लगती हैं।

चाय का दौर चल रहा था। कुछ मिसेज शर्मा की ओर मुखातिब हुई और कुछ चाय की चुस्की लेते हुए अपने झमेलों में उलझ गई। मिसेज शर्मा ने अपने एक रिश्तेदार का किस्सा सुनाया—''यह बात हमारे एकदम करीब के रिश्तेदार की है। उनके दादा शहर में आकर बसे थे। दादा ने बारह साल की उम्र में गाँव छोड़ दिया था। खुद अपने दम पर दुमंजला घर शहर में बनाया। बेटों में अपने घर का बंटवारा कर दिया परन्तु अपने भाई से बंटवारा नहीं किया।'' एक बहन ने जिज्ञासा जताई—''किसी अच्छे पद पर रहे होंगे।'' मिसेज शर्मा—''नहीं कोई पद नहीं था। मन में गुंजाइश थी। वैद्य थे, थोड़ा बहुत ज्योतिष जानते थे बस।''

आजादी के बाद जब गाँवों से शहरों की ओर पलायन आरंभ हुआ तो शहरों में निजी रोजगार, दुकान या कारखानों में कार्य करने की नीयत से लोग शहर की ओर आए। इन सभी में पैसा लगाने की आवश्यकता थी जो कि ब्राह्मण के पास न तब था न आज है। उसका स्वरोजगार वैद्यक बना। गाँव में दो-चार दर्जे पास कर लिए फिर किसी गुरुकुल में संस्कृत का आठ-दस साल ज्ञान पा लिया। बुद्धि ठीक चली तो वैद्यक और शास्त्रार्थ दोनों सध गए और यदि मंद बुद्धि रहे तो पूजा-पाठ से ही जीवन-यापन कर लिया। गाँव में किसान था जो उस समय स्वयं दरिद्र नारायण था। वह पैसा क्या देता? बहुत मजबूरी में दवा ली भी तो वह भी अनाज के बदले और उसे भी छमाही फसल आने तक के लिए उधार कर लिया। थोड़ी पढ़ाई कर लेने पर शहर में बसना लाभ का सौदा था। यहाँ नए-नए रोजगार पनप रहे थे। वस्तु विनिमय के स्थान पर लोग मुद्रा विनिमय करने लगे थे पण्डित, वैद्य और शास्त्री भी कुछ नकद पा जाते थे। इसी आय से रघुवीर जी के दादा ने शहर में मकान बनाया था। दादा का भाई अनपढ़ रहा। गाँव का कच्चा घर और पचास बीघा जमीन ही उस अनपढ़ के जीवन-यापन का सहारा था। इसी को सोचकर दादा जी ने न स्वयं भाई से हिस्सा माँगा न ही उनके बेटों, पोतों ने लोभ किया। शहर में पढ़ाई के साधन ठीक थे। नौकरियाँ भी बढ़ने लगी थीं। उनके परिवार के सब सरकारी नौकरियों में अच्छे-अच्छे पदों पर लग गए।

निर्मला जी गहरी साँस खींचकर बोली—''ऐसे रिश्तेदार तो नसीब से मिलते हैं जी। हमारे ऐसे भाग्य कहाँ।'' मिसेज शर्मा ने कहा—''उन्होंने जो किया सो भाई-भाभी के व्यवहार से भी किया।''

‘‘हाँ सो तो है ताली दोनों हाथों बजती है।’’ रीता ने समर्थन किया।

निर्मला फिर गहरी साँस लेकर बोली—‘‘जी व्यवहार तो हमारे का भी ठीक था। इसी से यकीन जमता चला गया और इतने साल रह लिया। पर असली चेहरा तो बाद के सालों में सामने आया।’’

रीना भाभी बोली—‘‘बहन ये भी ठीक ही हुआ जो असलियत पता लग गई। वरना बड़ा नुकसान उठाना पड़ता।’’

निर्मला—‘‘सब ऊपर वाले की मेहरबानी समझो वरना हमारे हाथ से बात निकल ही रही थी।’’

इधर ये सुनाई गई कहानी पर चर्चा कर रही थी और उधर मिसेज शर्मा नई कहानी को आगे बढ़ा रही थीं और कई बहनें धीरे-धीरे उनकी कहानी की ओर आकर्षित हो रही थीं। अब इनका भी ध्यान उधर गया। मिसेज शर्मा बता रही थीं—‘‘उनका बंटवारा चौथी पीढ़ी में जाकर हुआ। भाई लोग तो जानते ही नहीं थे कि गाँव में उनका कोई हिस्सा भी बाकी है। मेहमान बतौर बचपन में कभी गाँव में गए होंगे। छोटे दो तो हॉस्टल में पढ़े। घर ही मुश्किल से आते थे, गाँव का नाम भर सुना था। कभी शक्ल भी नहीं देखी थी। परन्तु जब गाँव वाली ताई के तीन-चार फोन आए और उन्होंने कहा—‘‘भैया अपना हिस्सा-बाँट ले लो। मैंने बहुत दिन सबका खाया। मुझे मेरे जीते जी मुक्त कर दो।’’ तब गाँव की जमीन की चर्चा भाइयों में हुई। पिता और चाचा से पूंछताछ की गई तो वे बात टालते रहे—‘‘अरे कितना होगा? क्या मिलेगा? यहाँ सब तो है।’’ ऐसे वाक्य सुनने को मिलते। परन्तु गाँव वाली ताई लगातार फोन कर रही थी। सबकी ओर से एक दिन बड़े भाई ने ताई से बात की—‘‘ताई जी आपके आशीर्वाद से यहाँ सब ठीक है। अब वहाँ जो है उसे आप ही सम्भालो। पिताजी और चाचाजी का मन कुछ लेने का नहीं है फिर थोड़े से के लिए उनके दिल को दुःखाना ठीक नहीं है।’’ परन्तु ताई सच्चे दिल से हिस्सा देने की बात कह रही थी। यूँ ही टोकने की बात नहीं थी। उन्होंने सबके हिस्सों की नपत कराकर हिसाब लगवाया हुआ था। तुरंत बोल पड़ी—‘‘बात तुम्हारी सच है भैया। आज दुमंजला मकान दिख रहा है पिताजी का बनाया। पर कल की सोचो जब चारों भाई हिस्सा करोगे तो कितना मिलेगा? दो इसमें रहे भी तो दो को तो अलग बनाना ही पड़ेगा। जब से रोहण शहर गया है मैं खूब जान गई हूँ शहर के खर्चों और आमदनी को और जिसे तुम कम समझ रहे हो यह भी एक करोड़ से कम की जायदाद नहीं है। कुछ तो चारों के हिस्से में आएगा ही। घर भी न

बने तो जमीन तो खरीद लोगे। नहीं भैया चार पीढ़ी से हमने खाया। प्रभु के आशीर्वाद से रोहण भी अब अफसर है। मैं तो चाहती हूँ उसे उतना ही मिले जितना उसका हिस्सा है। जैसे तुम अपने काम साधोगे वैसे वो भी साधे। मैंने सब नाप नपत करा ली है। तुम भाई इकट्ठा किसी दिन आ जाओ और लिखा पढ़ी कर लो। मेरे देवरों को कह देना यह मेरा आदेश है। जैसे आज तक मेरी बात रखते आए हैं इसे भी मानना है।''

कहानी समाप्त हो गई थी। बहनें, ''सही है...ठीक है...ऐसा सब कहीं कहाँ होता है?'' जैसे वाक्य बीच-बीच में बोलते हुए सुन रही थीं। रीना भाभी बोली–''ऐसा सब कोई सोचे तो सारे झगड़े-झंझट ही मिट जाएँ।'' रीता ने प्रतिकार किया–''पर अधिकतर तो माल हड़पने वाले हैं।'' निर्मला बोली–''जी सभी तरह के लोग संसार में मौजूद। पर मिलते अपने भाग्य से हैं। हमारे नसीब में जो था वही मिला।'' रीना ने बात पूरी की–''सही कहा। नसीब की सारी बात है। अच्छा मिला भी बुरा और बुरा भी अच्छा होते देर नहीं लगती।'' इसी के साथ बहनें उठ गईं। आयोजन समाप्त हुआ।

जींस, मोबाइल, बाइक

मैं कपों में चाय छान रही थी और ममता काम से निबट कर हाथ धो रही थी। मेरे आवाज लगाने पर वह आकर रसोई घर के दरवाजे से सटकर सिर झुकाए खड़ी हो गई। मैंने उसे कुछ बिस्कुट और चाय पकड़ा दी और अपना प्याला लेकर सोफे पर बैठ गई। ममता भी वहीं एक ओर बैठकर चुपचाप चाय पीने लगी। बिस्कुटों की पुड़िया बना कर उसने रख ली। चाय पीते हुए हम दोनों एक दूसरे को देखते हुए भी अपने ही विचारों में गुम थीं। ममता पिछले दस वर्षों में कभी इतनी दुःखी और शांत नजर नहीं आई। हमेशा मुस्कुराने वाला उसका चेहरा लटका था, आँखों में अजीब सी बेचौनी थी। वह प्रतिदिन के समय से आती, काम करती और चली जाती। उसकी चुप्पी मुझे साल रही थी। बच्चे स्कूल और पति दफ्तर जा चुके थे। इस समय चाय पीते हुए लम्बे समय से मैं ममता की बातों की आदि थी। पर समझ में नहीं आ रहा था कि उसकी चुप्पी कैसे तोडू़। उसके घर में, उसके जीवन में जो चार दिन पहले घटित हुआ है उसके लिये उसे किस प्रकार सांत्वना दूँ। कहीं मेरी बातों को वह उपहास न समझ ले। कहीं उसके दिल को तसल्ली की जगह क्लेश न पहुँचे यही सोचकर मैं चाह कर भी बातों का सिलसिला शुरू नहीं कर पा रही थी। परन्तु चाय समाप्त होते तक तर्क हार गए और संवेदना मुझ पर हावी हो गई। पूंछ बैठी–''कोई खबर मिली रघु की?'' पर वह अपनी ही दुनियाँ में गुम सिर झुकाए चाय पीती रही। मैंने अगला प्रश्न किया–''मिलने गई थी उससे?'' वह तब भी जमीन पर आँखे गड़ाए रही।'' तसल्ली देते हुए मैंने बात बढ़ाई–''खाना बनाया, खाया या भूखी ही घूम रही है?'' मुझे लगा उसकी आँखे भीग गई हैं।

उसने मुँह नीचा किए ही पल्लू से आँखें पोछी, उठी और अपना व मेरा चाय का खाली कप उठाकर रसोई में चली गई। इसके साथ ही मेरी उत्सुकता बढ़ गई। जिसने बीती कुछ घटनाओं को ताजा कर दिया।

रघु नौ दस साल का रहा होगा जब ममता ने मेरे यहाँ काम शुरू किया। वह अक्सर अपनी माँ को खोजता हुआ आ जाता था। तब मुझसे कुछ खाने का समान और ममता से मीठी सी झिड़की पाकर वह जल्दी ही लौट जाता था। गली, बाजार या पार्क में वह जहाँ भी मुझे देखता बड़े अदब से नमस्ते करता, कभी-कभी पैर छू लेता। मैं उसे एक आशीर्वाद सदैव देती—''बड़े होकर अपनी माँ की खूब मदद करना और उसका ख्याल रखना।''

देखते ही देखते वह नटखट अदना सा रघु बड़ा हो गया। हम उम्र लड़कों से उसकी लम्बाई भी कुछ अधिक थी। उसका हँसता मुस्कुराता चेहरा कुछ लम्बा और गंभीर हो गया। नमस्ते करने में अब उसे संकोच होने लगा। अक्सर कन्नी काट जाता। उसका मेरे घर आना भी बंद हो गया था। मैं भी उसकी ओर अधिक ध्यान न देती। तभी एक दिन ममता ने बताया कि रघु ने एक कपड़े की दुकान पर नौकरी कर ली है। अभी तो कम ही पैसे मिलेंगे पर एक दो साल में काम सीख जायेगा तो बढ़ जाएँगे। ममता के चेहरे पर खुशी थी उसकी आँखों में सुखद भविष्य झलक रहा था। मुझे भी यह सोचकर कि चलो बेचारी अकेली चार बच्चों को पाल रही है। इसका कुछ तो सहारा हुआ, आनंद की अनुभूति हुई थी। इन्हीं सुख के दिनों में ममता ने सब घरों से थोड़ा-थोड़ा उधार लेकर बड़ी लड़की की शादी निबटा ली।

एक दिन मोबाइल की घंटी बजी। मैं अभी सोच ही रही थी कि आवाज किधर से आई, कि तभी ममता जेब से मोबाइल निकाल कर किसी से बातें करने लगी और जल्दी ही बातें खत्म कर उसने मोबाइल रख लिया। मैंने उत्सुकतावश पूंछ लिया—''अरे ममता तूने मोबाइल खरीद लिया?'' वह लगभग चहकती सी बोली—''रघु ने लाकर दिया है भाभी। जिद्द करता है मैं काम पर जाऊँ तो मोबाइल साथ रखूँ। अभी उसी का फोन था।''

''चलो यह तो अच्छा है। तेरा ख्याल रख रहा है।''

''हाँ भाभी कहता है बस शादी का कर्ज उतार ले। उसके बाद घर-घर घूमने का यह काम बंद कर। छोटी बहन को तो काम पर जाने ही नहीं देता। कहता है, बस पढ़े।''

''ठीक है जब भाई कमा रहा है तो उसे पढ़ने दे।''

इतना कहकर मैं चौके के काम में व्यस्त हो गई और ममता अपने काम में।

एक दोपहर मैं पोस्ट ऑफिस से लौट रही थी। सड़क किनारे तीन लड़के जींस, शर्ट पहले आपस में बातें कर रहे थे। उनमें एक जो सबसे लम्बा और चुस्त नजर आ रहा था बाकी दो को कुछ समझाने का प्रयास कर रहा था। साथी ध्यान लगाए उसकी बातें सुन रहे थे। मुझे उस चुस्त लड़के की शक्ल कुछ जानी-पहचानी लगी। ध्यान से देखने पर समझ में आया-यह रघु था। अब उसका चेहरा भर गया था और उस पर हल्की दाढ़ी नजर आ रही थी। मैं करीब से निकली। वे अपनी बातों में मशगूल थे। महीने दो महीने में रघु अक्सर अपने साथियों के साथ मुझे दिख जाता। कभी मोटर साइकिल पर सवार, कभी तेज कदमों से जाता हुआ या कभी सड़क किनारे खड़ा मोबाइल पर बातें करता हुआ। एक दो बार लगा कि उसने मुझे देखा न होगा। पर शीघ्र ही महसूस हुआ कि वह पहचान कर भी पहचानना नहीं चाहता है।

बसंत की धूप खिली थी। सर्द हवाओं से कुछ राहत महसूस हुई और ऊनी भारी कपड़ों से भी। ममता दोपहर का काम निबटाने आई थी। उसकी नई साड़ी मौसम के बदलने का एहसास करा रही थी। मैंने टोका–''बड़ी अच्छी साड़ी पहनी है ममता। कहाँ से मिली?'' वह हँसकर बोली–''रघु लाया है भाभी। सबके लिए कपड़े लाया।'' एकाएक कुछ दिन पहले देखा रघु का चेहरा मेरी आँखों में घूम गया। मैंने कहा–''हाँ साड़ी की दुकान पर काम कर रहा है तो वैसे भी कुछ छूट मिलती होगी।'' ममता बोली–''नहीं भाभी, वहाँ तो उसने कब का छोड़ दिया। उसके बाद तो दो तीन जगह काम पकड़ा। अब तीन चार दोस्तों ने मिलकर अपना बिजनेस कर लिया है। दिल्ली से माल लाकर सप्लाई करते हैं।''

''क्या माल?''

''कोई भी जैसा आर्डर मिल जाय। कपड़ा, बिजली का सामान।''

तभी ममता रसोई से बाहर आती दीखी तो मैं अतीत से वर्तमान में लौटी। ममता के उस दिन के खिले और आज के मुर्झाए चेहरे में कितना फर्क था। उस खूबसूरत साड़ी ने मानो उसका रंग ही निखार दिया था और इन दिनों ने उसे स्याह कर दिया है।

चार दिन पहले उसके घर पुलिस आई थी। रघु को चोरी के इल्जाम में पकड़ ले गई। ममता के घर से कुछ बर्तन और गहने बरामद हुए। रघु और उसके साथी जेल में बंद हैं। दो चार दिनों में ही ममता और उसके परिवार

के बारे में बहुत कुछ सुनने को मिला। विशेष रूप से रघु के विषय में मिसेज त्रिपाठी, जिन्होंने ममता को मेरे यहाँ यह कहकर लगवाया था कि आपको ऐसी काम वाली दे रही हूँ भरा घर इसके भरोसे छोड़ देना। वे भी कह रही थीं—''अरे पूरे परिवार की मिली भगत रही होगी। वरना ऐसा हो सकता है कि लड़का घर में चोरी का माल लाकर रखता रहे और माँ जान ही न पाए।'' कुछ ने ममता की इमानदारी को स्वीकारते हुए कहा—''वह ऐसी नहीं है। लड़का ही गलत संगत में पड़ गया है।'' ऐसी सब बातों के बीच सोच पाना मुश्किल था कि गलती किसकी है। रघु के बालपन के भोले चेहरे का चोरी की इस घटना से कोई मेल बिठाना मुझे मुश्किल हो रहा था, परन्तु उसके बदले हाव-भाव मन में कभी-कभी संदेह पैदा कर रहे थे। बिना प्रमाण किसी को दोष देना अनुचित है फिर ममता का व्यवहार तो यथावत था। इतने वर्षों के बीच उससे अपनत्व भी हो गया था। इसी से ममता रसोई से लौटी मैंने उसे समझाते हुए कहा—''अब जो हुआ सो हुआ। इतना दुःखी रहने से कोई लाभ नहीं है ममता। घर में और भी बच्चे हैं। खाना तो बना खा लिया कर।'' उसने मुझे निरीह भाव से देखा और बोली—''मौहल्ले वाले समझा रहे हैं—''चली जाओ। बेटी का भी फोन आया—अम्मा मिल तो आ। पर मैं नहीं गई। क्या मिलूँ उससे जिसने मेरी जिंदगी भर की ईमानदारी पर कालिख पोत दी। कितना समझाती रही—''बाप का ठेला खाली खड़ा है कोई काम जमा ले। मैं पाँच सात हजार का इंतजाम कर दूँगी। तू जो कहेगा तेरा हाथ भी बटा दूँगी। कुछ न हो सब्जी पूड़ी ही लगा ले। तेरा बाप उसी में पूरा परिवार पाल रहा था। लेकिन वो कहाँ सुनने वाला। नए-नए बिजनेस जमा रहा था।'' थोड़ा रुककर वह फिर आहिस्ता से बोली—''अच्छा खाना, पहनना और घूमना मुझे भी अच्छा लगता था भाभी। पर क्या जानती थी वो यह सब ऐसे ला रहा है। जींस, मोबाइल, बाइक ने हमें तो कहीं का न छोड़ा। इन्हीं के लिए तो गलत रास्ते पर गया। वरना पेट तो मेहनत की कमाई से भी भर जाता।'' इतना कहकर ममता आहिस्ता से गेट के बाहर निकल गई।

बुजुर्ग

गाड़ी रफ्तार पर थी और अधिकतर यात्रियों की नींद भी। विविध प्रकार के खर्राटों की आवाजें बोगी में गूंज रही थीं। परन्तु शिवम की आँखों में नींद नहीं थी। वह अपनी बर्थ पर लेटा करवटें बदल रहा था। घर के सदस्यों के एक के बाद एक चेहरे उसकी आँखों में घूम रहे थे और साथ ही उनकी बातें अभी तक कानों में गूंज रही थी। पर सबसे अधिक गुस्सा उसे पिता पर था। जो सब कुछ जानकर भी या तो चुप रह जाते है या न्याय की बात न कहकर गलत के साथ खड़े हो जाते हैं। कहाँ गए उनके वे आदर्श जो बचपन में सिखाया करते थे–''किसी का हिस्सा मारना पाप है। माता-पिता की नजरों में सब बराबर हैं।'' आज इस सबके विपरीत वे रात दिन बड़े भाई की तरफदारी में लगे हैं। जिसने सबसे कम कमाया उसी को सबसे बड़ा हिस्सा देना चाहते हैं। यह कैसी बराबरी है? छोटे सभी को आदेश है आयोजनों पर इकट्ठे हों और खर्च भी अपना करें। यह कैसा मेल-मिलाप है? दूर से आने वाले अपना घर, ड्यूटी छोड़कर आएँ। किराया भाड़ा खर्च करें। बड़े भाई का इतना भी फर्ज नहीं जो सबके खाने की व्यवस्था कर सकें। यदि घर आकर भी खुद ही खाना जुटाना है तो आने का मतलब ही क्या है? इतने पर भी पिता का तर्क होता है –''उसके पास है ही क्या जो खर्च करे? तुम लोग बड़े-बड़े पदों पर हो अच्छा वेतन पा रहे हो। तुम्हारे लिए ये मामूली खर्च हैं। आते रहने और मिलते-जुलते रहने से बच्चों में प्यार बढ़ता है और जगह भी तो पिकनिक मनाने जाते हो। यहाँ भी पिकनिक मनाने आ जाया करो।'' अब उन्हें कौन समझाए पिकनिक, पिकनिक होती है।

वहाँ घरेलू झंझट और क्लेश तो नहीं होता है। आपसी तनातनी और कहा सुनी नहीं होती है। पर जिद्द है तो बस है। पिता के लिए उसकी परेशानी समझना मुश्किल है। क्योंकि उन्होंने स्वयं तो एक अर्से से कोई यात्रा की ही नहीं है। फिर रेलों के लम्बे सफर की परेशानियों का एहसास हो भी कैसे? शिवम् को कभी-कभी लगता कि परिवार में छोटा होना ही मुसीबत है। न किसी की बात को इन्कार किया जा सकता है न ही कोई सहारा बनता है।

शिवम् का शरीर थक कर चूर था। सिर भारी हो रहा था। पर चाह कर भी सो नहीं पा रहा था। आँखों से नींद गायब थी और दिल में ऐसे ही ख्याल न जाने क्यों रह-रह कर उठ रहे थे। वह जब भी घर से लौटता तो ऐसे ही विचार उसे कई दिनों तक परेशान करते रहते। पर न जाने अपनेपन में कैसा सम्मोहन है। कुछ दिन बाद सब भूल जाता और पिता से मिलने अपने पैतृक शहर पहुँच जाता। शिवम् को लगा शायद यह सब बड़े परिवारों की समस्याएँ हैं। पर नहीं, उसके दोस्तों के यहाँ ऐसे झमेले नहीं हैं। संभवतः उनके बुजुर्ग अधिक समझदार हैं या भाईयों में एक दूसरे की जरूरतों को सोचने की समझ अधिक है। उसके दिमाग में विदेशी समाज भी घूम गया। सुना है विदेशों में सब अपनी जिम्मेदारी स्वयं सम्भालते हैं। बहुत कम उम्र में ही वहाँ बच्चे आत्मनिर्भर हो जाते हैं। यह अपने देश में ही है जो साठ साल की उम्र में भी परिवार के सहारे की जरूरत महसूस की जाती है। पिता, भाई को अपने जीते जी आत्मनिर्भर होने नहीं देंगे। फिर उसे लगा कि हिन्दुस्तान में भी शायद हिन्दू परिवारों में बुजुर्गों के ये व्यवहार हैं और ये ही आपसी झगड़ों के कारण भी हैं। देर रात तक शिवम् ऐसे ही वैचारिक झमेलों में फंसा रहा और न जाने कब उसकी आँख लग गई।

शिवम की नींद अभी अधकच्ची ही थी कि बौगी में सुबह की गहमागहमी शुरू हो गई। चाय, काफी वालों की टेर और यात्रियों की आवाजाही को लगातार नजरंदाज करते हुए शिवम मुँह ढके लेटा रहा। उठकर भी क्या करता? रोज की भागमभाग से उसे आज लम्बे समय के बाद निजात मिली थी। सोए रहना उसके वश में नहीं था तो क्या? लेटने पर तो कोई पाबंदी नहीं थी। उसने बर्थ का पूरा किराया दिया है तब क्यों अभी से सिकुड़ कर बैठे। वह तो पैर फैलाकर लेटेगा यही विचार कर शिवम जागकर भी सोता रहा। परन्तु सात बजते-बजते उसका लेटे रहना संभव न रहा। उसकी बर्थ पर धीरे से बैठने वाले अब उसे धकेल कर अपना पूरा स्थान लेने की कोशिश कर रहे थे। ऊपर की

बर्थ पर बैठने की जगह तलाशते बच्चे बार-बार चढ़ते उतरते हुए पैरों से टकरा रहे थे और बोगी में रह-रह कर शोर उठ रहा था। हार कर शिवम उठ बैठा। कुछ ही देर में उसे समझ में आ गया कि कोई त्यौहार करीब है। उसी को मनाने की खुशी या मजबूरी में जन सैलाब बाल गोपालों को खसीटते, पीटने और दुलारते यात्रा करने पर उतारू है। शिवम खिन्न सा सोचने लगा–''भारत त्यौहारों का देश है। यही तो यहाँ की खासियत है या कहो ढेरों समस्याओं का केन्द्र इन त्यौहारी यात्राओं में ही है। हम जहाँ है वहाँ के रिवाजों और मनुष्यों को छोड़कर अपनों की तलाश में दौड़ते हैं। पर वहाँ भी अब अपने-अपने कहाँ रह गए हैं? वे शायद परायों से भी पराए हो गए हैं। तब भी यह अपनेपन का जुनून हर जाति, वर्ग, धर्म और समूह के लोगों को त्यौहारों के नाम पर इधर से उधर दौड़ाता ही रहता है।'' शिवम खिड़की के बाहर भागते-दौड़ते पेड़ पौधों और खेत बस्तियों को देखने लगा। वह बोगी की चिल्लपों से बचकर कुछ पल प्रकृति का आनंद ले रहा था। बचपन में याद किए और जवानी में सुने ढेरों काव्यांश व फिल्मी नगमें उसके मस्तिष्क में बाहरी प्राकृतिक दृश्यों की भाँति ही दौड़ने लगे और आहिस्ता से वह उन्हें एक के बाद एक गुनगुनाने लगा। इस समय वह रात के क्लेश से एकदम मुक्ति पा चुका था। कुछ देर बाद शिवम कॉफी पीते हुए घर लौटकर कार्यों के निबटाने के विषय में विचारने लगा। इन चार दिनों में ढेरों काम घर और बाहर इकट्ठे हो गए होंगे। आज पहुँचते ही जितना जल्दी हो उन्हें करना है वरना कल से घर और दफ्तर के बीच की दौड़ शुरू हुई नहीं कि सारे काम छूटे।

गाड़ी में अब रात वाली रफ्तार नहीं रह गई थी। वह हर छोटे-बड़े स्टेशन पर थकी हारी सी विश्राम करते हुए आहिस्ता-आहिस्ता बढ़ रही थी। यात्रियों में चाय, नाश्ते के साथ ही गाड़ी के समय से पहुँचने को लेकर चर्चा चल रही थी। सभी अपने-अपने अनुभवों और रेल विभाग की अकर्मण्यता को आँकते हुए फैसले सुना रहे थे। यहाँ हर कोई विशेषज्ञ था। दूसरे के बताए में कुछ न कुछ घट-बढ़ करना उसका दायित्व था। यह खुला मंच था सभी स्वेच्छा से अपने विचार रख रहे थे। न उम्र की बाध्यता थी न ही विषय की। इन्ही सब कयासों के चलते गाड़ी अपनी निर्धारित छवि चार छः घंटे देरी से पहुँचने के अनुरूप मंथर गति से मंजिल की ओर बढ़ रही थी।

दोपहर बारह बजे तक स्पष्ट हो गया कि गाड़ी तीन चार बजे से पहले पहुँचने वाली नहीं है। जो अभी तक घर जाकर भोजन करने का मन बनाए

थे वे स्टेशन पर उतर कर भोजन की तलाश में लग गए। कितनों ने मोबाइल निकाल कर घर वालों और नातेदारों को सूचित करना प्रारंभ कर दिया और बहुतों के लिए फोन आने शुरू हो गए। वे सब मात्र संवेदना ही व्यक्त कर सकते थे। 'काल गति टारे नहीं टरे' की भाँति ट्रेन गति को घटाना-बढ़ाना भी उनके वश में नहीं था। हाँ इस देरी ने सहयात्रियों के वार्तालाप में इजाफा कर दिया था। जो अभी तक एकाकी थे या देर से मोबाइल में आँखे गड़ाए थे मुखर होने लगे थे। शिवम का ध्यान भी सामने बर्थ पर बैठे दो किशोरों पर गया। वे कभी नर्म और कभी गर्म जोशी से एक दूसरे को परास्त करने में लगे थे। उनसे छोटे दो नटखट इधर-उधर भाग रहे थे। शिवम से एक बर्थ पहले संभवतः उनके परिवार के और लोग थे। वे उन्हीं के पास से आ जा रहे थे। सामने-साइड बर्थ पर झक सफेद दाढ़ी व कुर्ता पजामा में एक बुजुर्ग थे जो एक पुस्तक में नजर गड़ाए थे। तभी एक अधेड़ ने खाने का कुछ सामान लाकर उन बुजुर्ग के सामने रख दिया। पुस्तक बैग में रख कर वे खाने लगे। उन्हें कुछ ख्याल आया और उन अधेड़ से बोले—''तहजीब तुमने शौकत को फोन कर दिया कि गाड़ी लेट है।''

''नहीं। उसका फोन आया है। उसने पता कर लिया है। इसीलिए वो अपने परिवार के साथ गाँव को निकल रहा है।''

''और हम कहाँ जाएँगे?'' बुजुर्ग हाथ में निवाला पकड़े हुए बोले।

''हम भी सवारी लेकर सीधे गाँव जाएँगे।''

''ऐसे क्यों जाएँगे। तुम उसको फोन करो और कहो रुक जाय। सब लोग साथ जाएँगे।''

''मैं क्यों फोन करूँ। उन्हें यह खुद नहीं सोचना चाहिए। जाना है तो जाएँ। क्या हमें रास्ता मालूम नहीं है?'' तहजीब ने थोड़ा ऊँची आवाज में कहा।

''उससे यह तो पूंछते बकरा लिया या नहीं।''

''यह उसकी अपनी जिम्मेदारी है।''

''वह समझे तब तो।''

''न समझे तो मैं क्या करूँ?''

''तुम वही करो जो मैं कह रहा हूँ।''

''नहीं मैं फोन नहीं करूँगा। यह सब उसे खुद बताना चाहिए।''

''तुम बड़े भाई हो। तुम्हारा भी कुछ फर्ज हैं।''

''जो है मैं जाकर सम्भाल लूँगा।''

''बुजुर्ग बेचैन हो गए। खाना एक ओर सरका दिया और अफसोस सा जाहिर करते हुए बोले—''यही मोहब्बत है तुम भाइयों में? वो तीसरा विदेश से कल पहुँच रहा है त्यौहार मनाने। यही सब देखने-सुनने आ रहा है वो? यहाँ एक भाई दो घंटे दूसरे का इंतजार करने को तैयार नहीं है और दूसरा इंतजाम का मालूमात करने को एक फोन तक नहीं कर रहा है। तुम लोग क्यों नहीं समझते हो? साल भर का त्यौहार है। त्यौहार की रौनक तभी है जब पूरा परिवार हँसी-खुशी मिल-जुलकर मनाएँ।''

शिवम एकटक उन बुजुर्ग को देख रहा था। उनका एक-एक शब्द एक-एक वाक्य कल की घटना से मेल खाता नजर आ रहा था।

बदलाव

शहरी चकाचौंध से अलग थलग अमराइयों से घिरा छोटा सा दुरई गाँव पूरी तरह से कोहरे की चादर में लिपटा रात्री विश्राम के करीब पहुँच चुका था। हीरा रोटियाँ सेक रहा था और दोनों लड़कों को जल्दी-जल्दी काम निबटाने को कह रहा था। सामू और रंजन दौड़कर बर्तन साफ कर रैक में लगाने, बैंच साफ करने और छोटे बड़े डिब्बों को उठाकर अलमारी में रखने जैसे काम निबटा रहे थे। हीरा की तवे पर आखिरी दो रोटियाँ सेकनी रही तो रंजन ने खाना बनाने के शेष बर्तन भी धोने के लिए उठा लिए। यूँ तो अभी रात के नौ ही बजे थे पर सर्द हवाओं में आधी रात जैसा सन्नाटा इलाके में पसर गया था। इन दिनों आठ बजे के बाद ग्राहकी लगभग समाप्त हो जाती थी इसी से हीरा दुकान जल्दी बंद करने लगा था। सामू और रंजन का काम खत्म हुआ तो हीरा ने उनका खाना परसना शुरू कर दिया। तभी दो नौजवान हीरा की दुकान पर आए। एक ने आगे बढ़कर चार थाली खाना लगाने का हुक्म दिया। हीरा ने विनम्रता से नकार दिया। युवक को अपने कानों पर विश्वास न हुआ। इतने छोटे दुकानदान से वह भी खाने के लिए नकारात्मक उत्तर मिलने की उसे बिलकुल भी उम्मीद न थी। उसने पुनः अपनी बात पर जोर देते हुए कहा—''कितनी देर लग जाएगी?'' हीरा ने सामान्य भाव से उत्तर दिया—''साहब खाना नहीं मिल पायगा।'' युवक ने कड़ककर बूझा—''क्यों?''

''हमारा दुकानदारी का समय खत्म हो गया है।''

''क्या मतलब?''

''साहब मेरे छोटे-छोटे नौकर हैं। मैं उन्हें इससे अधिक समय नहीं रोक सकता। अब उनके आराम का समय है। सुबह सात बजे दुकान खोलनी है।''

युवक के दूसरे साथी ने हीरा को समझाते हुए कहा—"तुम जो रोटियाँ सेक रहे हो ये ही हमें दे दो। हम तुम्हें दुगना दाम देंगे।"

हीरा पर इसका कोई प्रभाव न पड़ा उसने पहले जैसी सहजता से ही उत्तर दिया—"नहीं दे सकता साहब। ये मेरे काम करने वाले बालकों के लिए है।"

अब तक युवक के दो और साथी आ गए थे। बात जानकर वे हीरा की ओर बढ़े। एक बोला—"तुम जानते हो किस्से बातें कर रहे हो? हमें फाइव स्टार होटल में भी कोई ना नहीं कह सकता और तुम साधारण सी दाल रोटी के लिए ना कह रहे हो।"

"ना कहता होगा साहब। मेरे पास नहीं है तो ना कह दिया। आपका पैसा आपको मुबारक हो। मैं तो दिनभर में अपने लायक कमा चुका हूँ। रही आपकी ताकत की बात तो आजकल के लड़कों को मैं कुछ गिनता नहीं। चाहो तो अजमा लो। चारों को मैं अकेला ही काफी हूँ।" हीरा पूर्ववत् अपना काम करता रहा और युवक दुकान से कुछ हटकर खड़े हो आपस में बातें करने लगे। कुछ देर बाद वे जिधर से आए थे उधर ही कोहरे में अन्तर ध्यान हो गए। सामू और रंजन खाना खाकर भट्टी के पास खड़े हो हाथ सेकने लगे। हीरा खाना खाने बैठा तो कौर मुँह में रख आहिस्ता-आहिस्ता चबाते हुए अतीत की गहराइयों में उतरता चला गया। सामने हीरा और रंजन नहीं वरन वह स्वयं खड़ा था।

हीरा का बचपन स्नेह की छाँव और प्रकृति की गोद में बीता। उसे उस समय से घटनाएँ बखूबी याद है जब उसकी उम्र आठ-दस साल रही होगी। उस समय पर दुरई गाँव मात्र दस-बारह घरों का मौहल्ला भर था। घर भी क्या कहो छोटी-छोटी झोपड़ियाँ। वे भी एक दूसरे से कई-कई सौ गज की दूरी पर। तब यहाँ दूर तक बाग ही बाग थे। उस समय का यह रिवाज ही था कि सेठ लोग शहर से दस बीस कोस की दूरी पर बाग लगवाते और वहाँ रखवाली को किसी गरीब परिवार को रख देते थे। दूरई ऐसे ही सेठों के बागों का इलाका बन गया था। इन्हीं बगीचों की रखवाली को हीरा के पिता और उनके रिश्तेदारों और दोस्तों ने बागों में झोपड़ियाँ डाल ली थीं और सपरिवार रहने लगे थे। साल भर साग सब्जी या फल गुजारे भर के होते थे। सबसे अधिक काम और आमदनी आम की फसल से होती थी। कच्ची अमियों से लेकर आम के सबसे बाद में पकने वाले देसी टपोरों तक लारियाँ भर-भर कर शहर जाती थीं। उन दिनों बागों के मालिक भी सैर सपाटे को सपरिवार आते थे। जिस भी बाग का मालिक आता उस दिन उसके रखवाले को दिनभर उनके खाने और आराम की व्यवस्था करनी पड़ती। पर मालिक-मालकिन लौटते समय जब पैसे और उपहार देते तो बड़ों की सारी

थकान उतर जाती और बालकों की आँखे चमक उठती। वे उन्हें दूर तक जाते हुए देखते और उनके जल्दी ही दोबारा आने की प्रभु से प्रार्थना करते।

हीरा के पिता तब हर दिन पेड़ों से आम उतारते, बोरियाँ भरते और लारियों में लदवाते। पर कुछ देर बाद ही पेड़ों पर और पके आम नजर आने लगते। वे दो टोकरा आम भरकर सड़क किनारे बैठ जाते। उन्हें देखकर दूसरे भी ऐसा करने लगे थे इससे सड़क किनारे बीसियों आम के टोकरे सज जाते थे। आते-जाते मुसाफिर कुछ देर विश्राम करने और आम खाने के लालच में रुक जाते। वे आम खरीदते और ठण्डा पानी और छाया मुफ्त पा जाते। तपती दुपहरी में मुसाफिर के लिए इससे बड़ा उपहार क्या हो सकता है? कुछ मुँह से, कुछ आत्मा से बाग लगाने और रखाने वालों को दुवाएँ देते। बहुत बार ट्रक बस थोड़ी ही देर को रुकती और सवारियाँ सवारी में बैठे ही आम माँगती तो हीरा और उसका दोस्त डमरू दौड़-दौड़ कर उन्हें आम पकड़ाते। मौसम गर्मी का होता सो मुसाफिर खाने से अधिक पानी को बेचौन हो जाते। तब माँ सुबह नदी से बड़ी मेहनत से भरकर लाए अपने पानी के मटके मुसाफिरों के लिए एक के बाद एक खाली कर देती। उसके लिए तपी धूप में प्यासों को पानी पिलाना बड़े पुण्य का काम था। तब ये बिसलरी-फिसलरी कहाँ थीं। कुवें या मटके का ठण्डा मीठा पानी जितना पी सको पी लो बस। भरने, ले जाने का कोई चक्कर नहीं।

हीरा का ध्यान थाली पर गया। थाली खाली है और उसके मुँह का निवाला भी न जाने कब का निबट गया था। उसे ख्याल ही नहीं था। उसने रंजन को आवाज लगाई–''ओ रंजन, दो रोटियाँ ला।''

रंजन रोटियाँ रख गया। चार छः निवाले स्वाद से खाने के बाद हीरा फिर अतीत में विचरने लगा। उसे वह घटना याद आ गई जब उसके सेठ का परिवार बगीचा घूमने आया था। सेठानी, एक रिश्तेदार सेठानी और उनके गोल-मटोल हीरा के हम उम्र तीन शरारती लड़के। ड्राइवर छोड़ गया था कि शाम को वापस ले जायगा। परन्तु शाम से रात और फिर रात से सुबह हो गई तो बालक रोने लगे और सेठानियाँ चिंतित हो गई। कुछ ही घंटो बाद शहर को जाते और तुरंत वहाँ से वापस लौटते वाहनों से खबर मिली कि शहर में दंगा हो गया है। पता नहीं कब तक शहर में जाना न मिलें।

इस खबर ने जितना चिंतित सेठ परिवार को किया था उससे अधिक हीरा के माँ और पिता को। सुख सुविधाओं में रहने वाले और अच्छा खाने वालों की व्यवस्था कैसे हो सकेगी। यहाँ तो एक समय साग-सब्जी मिली तो बहुत समझो। कभी-कभी तो दाल, चावल भी आधा-अधूरा ही रहता है। हीरा के पिता

ने पत्नी को एक ओर बुलाकर बूझा–''इनके खाने का इंतजाम कैसे होगा?'' माँ ने हँसते हुए कहा–''खाने का तो मैं जोड़-तोड़ करके कर ही लूँगी। न चार कटोरी हुई एक ही अच्छी मसालेदार बन जाये तो खा लिया जायगा। मुझे तो अधिक चिंता इनके कपड़ो की है। सेठानी तो बगैर नहाए और ठाकुर जी को भोग लगाए कौर भी नहीं तोड़ेगी।''

यही हुआ भी। बालको ने हीरा और उसके साथियों के साथ नदी में नहा भी लिया और खाया भी। पर दोनों सेठानियाँ दिन भर निराहार रहीं।

शाम तक एक समस्या और आ गई। बगीचों में पके आम के ढेर लगने शुरू हो गए और लारियों के आने का कोई उपाय नहीं था। रात को हीरा के बापू को तरकीब समझ में आई क्यों न दो गाँव पार तीसरे बड़े गाँव में कल पैंठ है उसी में आम बेक दिए जाय। उसने बस्ती के दूसरे लोगों से सलाह की और सुबह पास के गाँव से चार घोड़ा-गाड़ी मंगाकर आम लाद दिए गए।

शाम को जब हीरा का बापू लौटा तो वह दो थान कपड़ा-एक छींटदार और दूसरा सादा लिए था। अगले दिन सुबह वह टमटम में बैठाकर अपने दोस्त को उसकी सिलाई मशीन सहित ले आया। सबसे पहले दोनों सेठानियों के लिए लहंगा व कुर्ती सिले गए। इसके बाद लड़कों के कपड़े दोपहर तक कपड़े तैयार हो जाने पर दोनों बहनों ने नदी पर जाकर स्नान किया। हीरा की माँ ने बड़े प्रेम से भोजन परोसा। एक तो माँ का आदर भाव उस पर सेठानियों की तीन दिन की भूख। सेठानियों को ऐसा स्वाद मिला कि वे देर तक खाती रहीं।

अगले दिन से काफी कुछ ठीक चलने लगा। बापू घोड़ा-गाड़ी में आम भरकर पास के गाँवों में बेक आता। माँ और बस्ती की अन्य सभी औरतें सेठानियों की सेवा में लगी रहती। कभी उनके कपड़े धोना, कभी पंखा झलना, कभी नहाने की व्यवस्था करना और कभी खाने की। लड़के तो दिन भर बस्ती के बालकों के साथ उधम मचाते। वे पेड़ों पर चढ़ना, जानवरों की सवारी और तैरना सीख रहे थे। कभी सब बालक मिलकर कबड्डी खेलते कभी गुल्ली डंडा। कभी किसी घर में कोई फटी पुरानी किताब हाथ लग जाती तो सेठ बच्चे उसको पढ़कर सुनाते या गिनती और पहाड़े सुनाकर अपनी पढ़ाई का रौब दूसरों पर गांठते। परन्तु दोड़ने, तैरने में बस्ती के बच्चों से पिछड़े जाते। शहरी बच्चे बस्ती के बालकों के लिए कौतुहल थे और सेठ बालकों में जंगली व पालतू जानवरों और विविध प्रकार के पौधों को देखने जानने की उत्सुकता थी। सेठानियाँ कभी-कभी घर परिवार के लिए चिंतित हो जाती। बापू बराबर शहर की खबरे जानने की

कोशिश करता रहता। धीरे-धीरे स्थिति सामान्य होने की खबर मिलने लगी और एक दिन सेठ जी का ड्राइवर गाड़ी लेकर उन्हें लेने आ गया।

सेठानियाँ और उनके बालक तो घर जाने की खुशी में थे पर बस्ती के बालक कुछ उदास हो गए थे। हीरा को भी उनका जाना अच्छा नहीं लग रहा था। बापू ने अच्छे पके आमों का टोकरा लारी में रख दिया और माँ ने बाल्टी भर ताजा दुहा दूध। गाड़ी चलने को हुई तो बस्ती के सभी बड़े छोटे इकट्ठे हो गए। सेठानियों ने महिलाओं से गले लगकर और सभी को हाथ जोड़कर विदा ली। वे बार-बार आठ दिन से की गई अपनी सेवा के लिए सबको धन्यवाद दे रही थीं और माँ व बापू हाथ जोड़कर उन्हें ऐसा कहने को मना कर रहे थे। जाते-जाते बड़ी सेठानी ने माँ के हाथ पर कुछ रुपए रख दिए।

पन्द्रह दिन बाद सेठजी अपने मुंशी और तीन चार लोगो के साथ आए। वे हीरा के घर के बाहर की जमीन की जाँच करने और कुछ हिसाब लगाने लगे। सब लोग अचंभित थे। परन्तु आगे बढ़कर सेठजी से कुछ बूझने का किसी का साहस नहीं था। नाप-तोल पूरी हुई तो मुंशीजी ने बताया–''सेठजी ने यहाँ एक कुआँ खुदवाने का फैसला किया है। इस खबर से बस्ती भर में आनंद आ गया था।'' बाग की सिंचाई और जानवरों के लिए पानी तो बाग के पास कच्चे जोहड़ से मिल जाता था। परन्तु पीने का पानी फलांग भर दूर नदी से लाना पड़ता था। सेठानियों ने इसे देखा था और बस्ती की महिलाओं के लिए यह उपहार उनके सप्ताह भर की सेवाओं के बदले दिया था। सेठजी ने चरखी और छतरी लगवाकर कुआँ बनवाया था।

हीरा घूंट-घूंट पानी पी रहा था। उसने फिर आवाज लगाई। रंजन एक रोटी ला। रंजन रोटी का कटोरेदान उठा लाया और हीरा की थाली में आखिरी रोटी रखते हुए बोला–''बस चाचा अब मत माँगना। यही आखिरी है। आज दो रोटी अधिक खा गए हो। आधे घंटे से खाना ही खा रहे हो।'' हीरा ने निवाला तोड़ते हुए महसूस किया ठण्ड और बढ़ गई थी। कुछ बाहर की ठण्ड और कुछ पिए ठण्डे पानी का असर। हीरा को हल्की कपकपी सी आ गई। हीरा अब जल्दी खाना खत्म कर घर जाने की सोच ही रहा था कि उसे कंबल ओढ़े डमरू आता दिखाई दिया। साथ में मास्टर अभय भी थे। हीरा ने अपनी रोजी-रोटी के लिए यह चाय की दुकान खोली थी और डमरू ने डेरी खोल ली थी। पहलवानी करने और डटकर खाने में तो उसकी रुचि थी ही। डेरी का धंधा भी उसके अनुकूल ही था। घर का दूध घी रहे तो जी भर खाया जा सकता

है। हीरा ने उन्हें सामने बेंच पर बैठने का इशारा किया। दोनों बैठ गए। हीरा ने डमरू की ओर देखकर सवाल किया–''क्या खबर है?''

''सब दुरूस्त है। बस रहीसजादों की एक कार जवाब दे गई है। बेचारे कोस भर से धकेल कर नदी के इस पार तक तो ले आए हैं। पर चली नहीं। दो गाड़ी के अन्दर लेटे हैं और दो सोहन की दुकान के चबूतरे पर।''

''आए थे यहाँ खाने का हुक्म करने। उन्हें फाइव स्टार में भी ना सुनने की आदत नहीं है। पर आज मुझसे ना सुनने को मिली।''

''कुछ बोले नहीं।''

''अकड़े थे हल्का-सा। मैंने समझा दिया। चले गए।''

''एकदम ठीक किया।''

अभय ने उनका समर्थन किया–''यही सही तरीका है लाइन पर लाने का।''

हीरा, डमरू तो साथ खेले कूदे थे बचपन की दोस्ती थी। पर अभय से उनकी दोस्ती दस बारह बरस की उम्र में हुई। अभय कंधे पर बस्ता और हाथ में तख्ती लिए जब हीरा के बाग से पगडंडी पर सरपट स्कूल को जाता दिखता तो हीरा का मन भी स्कूल जाने को ललचाया। आम का सीजन निबट जाने पर हीरा और डमरू भी अभय के साथ कुछ महीनों के लिए स्कूल जाते। हीरा आते जाते अभय को अपने बाग में सुस्ताने को कुछ देर बैठा लेता। अभय उम्र में और दरजे में हीरा डमरू से बड़ा था। वह कभी-कभी इनकी पढ़ाई में मदद करता। बस यहीं से तीनों की दोस्ती शुरू हुई। हीरा डमरू की पढ़ाई तो दर्जे तीन के आगे न चल पाई। परन्तु अभय ने पाँचवी तक गाँव में और इण्टर तक की पढ़ाई शहर जाकर की। बाद में गाँव के उसी स्कूल में अध्यापक हो गया जहाँ तीनों पढ़ते थे। अध्यापक हो जाने के कुछ सालों बाद अभय ने हीरा की बस्ती में ही जमीन खरीद ली और बाद में अपने परिवार के साथ आकर यहीं रहने लगा। तीनों की दोस्ती आज भी उतनी ही गहरी थी जितनी बचपन में थी और अभय आज भी हिसाब-किताब और कागज पत्र पढ़ने में उनकी पहले जैसी ही मदद करता था। तीनों बस्ती भर के तीज त्यौहारों के काम सम्भालते और सभी की मदद करते थे।

डमरू और अभय के आ जाने पर हीरा ने रंजन, सामू को घर भेज दिया। रोज का यही नियम था। हीरा ने कहा–''मैं आप लोगों के आने से पहले बचपन के वे दिन याद कर रहा था जब यहाँ सेठ लोग आया करते थे। हम कितनी खुशी से उनकी आवभगत करते थे और अब आज-कल के ये लड़के-रत्तीभर तरस नहीं आता इन पर।'' तुम दोनों को याद है जब दो सेठानियाँ आठ दिन तक हमारे घर रही थीं। बस्ती भर के लोगों ने कितनी सेवा की थी, उनकी। डमरू ने हामी

भरी–''हाँ भैया खूब याद है। हम तुम भी तो दौड़-दौड़ कर उनके काम करते थे।''

डमरू–''सेठानियों के छींटदार लहंगे बनवाए गए थे। हँसी आती थी उन्हें देखकर। पर चाचा के डर से क्या मजाल कोई हँसी उड़ाता।''

अभय ने समझाते हुए कहा–''भैया वो समय बड़ों की लिहाज रखने का था हँसी उड़ाने का नहीं था।'' हीरा ने गम्भीर होते हुए कहा–''फिर सेठानी ने भी कुआँ खुदवाकर हमारे किए का कई गुना लौटा दिया था भाई। वरना नदी से पानी ढोते-ढोते हालत खराब हो जाती थी।''

अभय ने बात आगे बढ़ाई–''इतनी दूर क्यों जाते हो। अभी उस घटना को अधिक दिन कहाँ हुए हैं जब एक्सीडेंट में महिला का पैर टूट गया था और बाकी को भी गहरी चोट आई थी। तब बस्ती के ही लोगों ने उन्हें चारपाईयों पर लिटाकर सरकारी अस्पताल तक पहुँचाया था और तीन दिन उनके खाने और दवाओं का इंतजाम किया था।''

''हाँ कुछ अधिक न सही सबको एक-एक कंबल तो वे भी दे गए थे और खर्च हुए पैसे भी ड्योढ़े कर लौटाए थे।'' डमरू ने हामी भरी।

''अरे ना भी कुछ देते ना सही करने वालों के मन में वापस पाने की लालसा नहीं थी। इन्सानियत के नाते जितना बन पड़ा कर दिया।''

''उन दिनों का तो अब जिक्र ही बेकार है। आजकल के मजनुओं का उन सेठ साहूकारों से क्या मुकाबला? वे पहले कमाते थे तब सैर करते थे।''

''ठीक कहते हो भाई। मोटा पहनना और सादा खाना-यही उनकी जीवनचर्या थी। दान पुण्य में एक दूसरे से बढ़कर रहते थे और आज के ये नौ जवान फकत ऐय्याशी में लगे हैं। शहर में महँगा पड़ता है सो गाँव में चले आते हैं मुँह उठाकर। जैसे सब कुछ इनका बपौती हो।''

''इनकी ऐसी ओछी हरकते न होती तो आज यह दुर्दशा न होती।''

अब से कुछ वर्ष पहले जहाँ ये तीनों दोस्त बाहरी लोगों का स्वागत करने, दुर्घटनाओं में फंसे की मदद करने के लिए सदैव तत्पर रहते थे साथ ही बस्ती वालों को भी प्रेरित करते थे अब दूर ही से उन्हें फटकार लगाने लगे थे। शहरी लोग बस्ती में आते घूमते, खाते और आनंद लेते और आराम करते थे। पर विगत वर्षों में जब इलाके से लड़कियाँ गायब होने लगी तो इन्होंने एक ऐसा संगठन सा बना लिया था जो बाहरी लोगों पर नजर रखता था। इनके इशारे पर बस्ती के सैकड़ों लोग लाठी, डंडे लेकर दौड़ पड़ते थे। कितने ही अभी तक इनसे मार खा चुके थे।

रात काफी बीत चुकी थी। तीनों दोस्त बस्ती में पहुँचकर कल मिलने का वादा कर अपने-अपने घरों की ओर बढ़ गए।

अंतहीन

आनंद वर्मा बॉस के साथ कुछ जरूरी बातों में उलझे थे। तभी उनके मोबाइल की घंटी बजी। जेब से मोबाइल निकाल कर बगैर नम्बर देखे ही स्विच ऑफ कर दिया। दो घंटे बाद दफ्तर से निकल कर मोबाइल देखा तो उनके दोस्त विजय की तीन मिस्ट कॉल थी। वो अभी फोन मिलाते कि विजय ने फिर फोन किया—''हैलो, आनंद, भाई, इतना स्विच ऑफ क्यों रखते हो? मैं पिछले दो घंटे से बराबर ट्राई कर रहा हूँ।''

''हाँ बोलो क्या बात है?''

''आज शाम का क्या कार्यक्रम है ?''

''कुछ विशेष नहीं।''

''ठीक है तब आज रात का खाना तुम लोग हमारे साथ लोगे। ऋतु बहुत दिनों से कह रही है।''

''नहीं भाई शान्ति कहीं जाना नहीं चाहती। मैं कोई वादा नहीं कर सकता।''

''भाभीजी से मैं खुद बात कर लूँगा। तुम बस समय से घर पहुँच जाओ।''

''ठीक है।'' आनंद ने मोबाइल जेब में रख लिया। तभी बस आई और वह उसमें सवार हो गया। खिड़की के पास वाली सीट ले बैठ गया और बस के अंदर के माहौल से निर्लिप्त हो बाहर देखने लगा। बस ने शीघ्र ही रफ्तार पकड़ ली और आनंद के विचारों ने भी। ठीक एक साल पहले का घर का खुशहाल माहौल उसकी नजरों में घूम गया। हँसते खेलते बच्चे और सदा गुनगुनाती मुस्कुराती बीवी। उसे सब याद आने लगा। परन्तु इस खुशहाल परिवार को ऐसा ग्रहण लगा कि उसका साया अब इस जीवन में तो हटना मुश्किल है। डर है कि कहीं वह अगली

पीढ़ियों और अगले जन्म भी पीछा न करे। घर में कदम रखते ही मन बोझिल हो जाता है। समझ नहीं आता पत्नी को कैसे दिलासा दे। परिवार को सुरक्षा देने की जिम्मेदारी उसी की थी। वह न दे सका। अब पछतावे के अलावा कुछ नहीं है।

आनंद ने घर में प्रवेश किया। छोटे बेटे ने नमस्ते कर उसका स्वागत किया। आनंद का मन हल्का हुआ। आज पत्नी के चेहरे पर भी उदासी कुछ कम थी। वह पानी ले आई। थोड़ी घरेलू बातों के बाद पत्नी ने कहा—''मैं चाय बनाती हूँ।''

आनंद को जरा सहारा मिला। वह बोला—''नहीं तुम जल्दी से बच्चों के लिए कुछ बना दो और तैयार हो जाओ। हमें विजय ने खाने पर बुलाया है।'' पत्नी शांत रही और चलने की तैयारी करने लगी।

आनंद और शांति विजय के यहाँ पहुँचे तो विजय और ऋतु ने उनका स्वागत किया। पुरुषों में वही दफ्तर और राजनीति की बातें छिड़ गई। महिलाएँ इनसे शीघ्र ही ऊब कर अपने घरेलू विषयों पर बातें करने लगी। साथ ही खाने की तैयारी भी हो रही थी। विजय के बच्चे अंकल आण्टी के अधिक दिनों में आने की शिकायत कर रहे थे। ऋतु ने कहा—''आप लोग इतने दिनों में आए और तब भी बच्चों को साथ नहीं लाए हो। मैंने तो सभी को आने के लिए कहा था।''

शांति—''छोटे बेटे की तबियत ठीक नहीं है। इसीलिए नहीं आए और हम भी जल्दी ही लौटेंगे।''

ऋतु खाने की तैयारी में जुट गई। वह मदद के लिये कभी बच्चों और कभी विजय को छोटे-छोटे काम सौंप रही थी। साथ ही शान्ति से बातें भी कर रही थी शीघ्र ही खाना तैयार हो गया। सबने रूचकर खाया। खाने के कुछ देर बाद चाय का दौर चला। बच्चे अपने टी.वी. कार्यक्रमों में व्यस्त हो गए और बड़े ड्राईंग रूम में चाय की चुस्कियाँ लेने लगे।

अनायास ही आनंद के मुँह पर अपनी बेटी का नाम आ गया। जबकि विजय और ऋतु उसका जिक्र कर शान्ति को दुःखी नहीं करना चाहते थे। पर अब जब जिक्र छिड़ ही गया तो ऋतु ने आहिस्ता से पूंछा—''भाई साहब अनुभूति का कुछ पता लगा क्या?''

आनंद ने नकारात्मक सिर हिलाया। कुछ देर सब मौन रहे। विजय ने कुछ सांत्वना देने के ख्याल से कहा—''हमें हार नहीं माननी चाहिए आनंद। अपना प्रयास जारी रहना चाहिए।''

''और क्या प्रयास किया जाय? कितना प्रयास किया जाय? कुछ सुराग मिले, कोई उम्मीद नजर आए तभी तो आगे प्रयास संभव है। हम जो कर सकते थे कर चुके।''

''नहीं हमें बराबर पुलिस, मीडिया और समाज सेवी संस्थाओं से सम्पर्क बनाए रहना चाहिए।''

शान्ति ने गर्दन नीचे झुका ली। उसकी आँखों से कुछ बूंद आंसू टपक गए। जिन्हें उसने चुपचाप पोंछ लिया। आनंद की आँखों के कोर भी गीले हो गए। उनकी बेटी अनुभूति जो स्नातक की छात्रा थी एक वर्ष पहले अपहरण कर ली गई थी। तमाम कोशिशों के बाद भी वे उसका पता नहीं लगा पाए। यही दुःख शान्ति और आनंद को रात दिन कचोटता रहता था। उन्होंने लगभग सभी रिश्तेदारों और मिलने-जुलने वालों से किनारा कर लिया था। क्योंकि हर जगह वही जिक्र होता, जो शान्ति के लिए कई दिनों की बेचौन का सबब बन जाता था।

विजय ने शांन्ति को समझाते हुए कहा—''भाभीजी आप धैर्य रखें। मुझे पूरा यकीन है कि हमारी बच्ची एक दिन सकुशल घर लौटेगी।''

आनंद ने कप मेज पर रखते हुए गंभीर स्वर में कहा—''तुम उसके घर लौटने की बात कहते हो। पता नहीं अभी तक जिंदा भी है या नहीं?''

शान्ति सिर झुकाए हुए ही गम्भीर स्वर में बोली—''मरने की खबर ही मिल जाती तो तब भी कलेजा ठण्डा हो जाता अधिक डर तो इसी बात का है कि जिंदा है तो पता नहीं किस हाल में कहाँ किन हाथों में...।'' इतना कहकर शान्ति सुबकने लगी।

विजय और ऋतु उन्हें दिलासा देते रहे। कपों में अधपी चाय ठण्डी हो गई। आनंद और शान्ति उठकर खड़े हो गए। आनंद व ऋतु उन्हें छोड़ने सड़क तक आए, सभी लगभग मौन थे ।

आनंद और शान्ति की आँखों से छलका दुःख और मेहमानों के जाने के बाद के सूनेपन से उत्पन्न सन्नाटा विजय के घर में देर रात्रि तक पसरा रहा। अगली सुबह सब कुछ कार्य कलाप सामान्य तरीके से होने लगे। परन्तु शाम को विजय के घर लौटने पर चाय पीते वक्त ऋतु ने अनुभूति का जिक्र छेड़ दिया। वह शान्ति के दुःख से दुःखी थी और उसके हाव-भाव से लग रहा था कि दिन में उसने शायद इस मसले पर गम्भीरता से विचारा होगा और कई बार भावुक हुई होगी। ऋतु ने चाय का घूट पीते हुए गम्भीर भाव से कहा—''भले

लोगों की ही भगवान क्यों परीक्षा लेता है। बेचारी शान्ति की हालत देखी नहीं जाती। न जाने किस ने किस जन्म का बैर निकाला है इन लोगों से।''

''कुछ स्पष्ट भी तो नहीं है कि किसी ने जान बूझकर साजिश रची है या बच्ची ही नादानी कर गई।''

''ऐसा तो सोचना ही व्यर्थ है। अनुभूति जैसी समझदार लड़की ऐसा गलत कदम उठाएगी, विश्वास नहीं होता। यह सब इन्ही बेखौफ लोगों का काम है जो भोली-भाली लड़कियों को बहका फुसलाकर या डरा धमकाकर गलत रास्ते पर डालने का धंधा कर रहे हैं। वे ही जगह-जगह कितनी ही शर्मनाक और खौफनाक घटनाओं को अंजाम दे रहे हैं। इस सब में उन्हें मोटा पैसा जो मिल जाता है और हमारी पुलिस तो उन्हें खुली छूट देती ही है। मरना हर तरह से औरत को ही है।''

''ऐसी घटनाओं के पीछे औरत का लोभ और मंद बुद्धि भी कम जिम्मेदार नहीं है। वह स्वयं लालच में फंसती है और स्वयं को भौंड़े तरीके से प्रस्तुत कर रही हैं।''

''पर उस प्रदर्शन को देखने और बोली लगाने वाला पुरुष है। पुरुष का क्षणिक सुख और पैसे का दंभ उसे बाजारू भड़कीली औरत की तरफ ले जाता है। आज विश्व पटल पर औरत को इस नजर से देखने का पुरुष का हक बलवती होता जा रहा है। मूल में धन है। जो धन पहले स्थानीय स्तर पर औरत के शोषण का कारण था आज वह अन्तर्राष्ट्रीय रूप ले चुका है। धनाढ्य देशों के नागरिक पर्यटन के बहाने गरीब देशों में जाय या स्वदेश में ही विदेशी माल का भोग करें उनके लिए दोनों हाल में पर्याप्त साधन उपलब्ध हैं।''

''फिर भी मर्यादाओं को संजोना औरत का दायित्व है क्योंकि अधिक पश्चताप वह स्वयं ही करती है। तब जिन हालातों को बर्दास्त नहीं कर पाती उनको न्यौता ही क्यों देती है।''

''तुम ऐसा कैसे कह सकते हो? औरत हालातों को न्यौता देती है? अभी कुछ दिनों पहले एक धनी तानाशाह ने सुन्दरियों के लिए एक भोज का आयोजन किया था। इसमें शामिल होने के लिए सुन्दरियों की फीगर, वेट, हाइट और कलर जैसे सौन्दर्य के मानक निर्धारित किए थे।''

''और सुन्दरियों ने देश समाज, धर्म और साम्प्रदायिक मान्यताओं को धता बताकर वहाँ अपनी उपस्थिति दर्ज कराई। इतना ही नहीं नारीत्व की मर्यादाओं को ठेंगा दिखाते हुए मेजबान की निगाहों में आने को उसका भरपूर मनोरंजन किया।''

''जहाँ तक भागीदारी और जिम्मेदारी का सवाल है। वह किसी एक के माथे नहीं मढ़ सकते हैं। आज समाज के विविध पक्ष इस सम्बन्ध में गैर जिम्मेदार रवैया अपना रहे हैं। जिसकी चर्चा की आवश्यकता है वहाँ मौन, जहाँ दण्ड की आवश्यकता है वहाँ उदार, जहाँ निगरानी की जरूरत है वहाँ आँखे बंद किए है। मीडिया ने तमाम अचर्चित विषयों को चर्चा का विषय बना दिया है। जिसका असर नकारात्मक अधिक हो रहा है। साल भर के बालक से नब्बे साल तक के बूढ़े को एक जैसा मनोरंजन परोसा जा रहा है।''

''टॉप टैन सबको एक से कार्यक्रम जो परोस रही है। हर जगह तो उन्हीं का राज है। हीरो तो बेचारे बराबर के ठुमके लगाकर भी पिछड़ रहे हैं।'' स्त्री अपनी परिभाषा बदल रही है। चंद दशकों पहले ममता दया, धर्म की वाहिका आज माता-पिता की हत्या जैसे जघन्य अपराधों को अंजाम दे रही है।

''यह एक लम्बी बहस है। मूल प्रश्न यह है कि तमाम प्रयासों योजनाओं और गतिविधियों के बाद भी वैश्यावृत्ति का धंधा बंद क्यों नहीं हो रहा है? क्यों बार-बार मासूम लड़कियों को उठाकर उसमें झोंक दिया जाता है और फिर वहाँ से लौटने के उसके सारे रास्ते बंद कर दिए जाते हैं।''

''निश्चित यह एक गम्भीर सवाल है और यह स्थिति किसी भी देश समाज के लिए शर्मनाक है। पर खाली यह उम्मीद लिए रहना कि पुरुष ही नारी का पूरा उद्धार कर देगा बेमानी है। इस संबंध में महिला को स्वयं भी सीमाएँ, तय करनी होंगी। एक दूसरे की मदद को आगे आना होगा। पूरी सुरक्षा आत्म नियंत्रण में ही निहित है अन्य कोई भी उसे नहीं दे सकता है।''

ऋतु ने सहमति में सिर हिलाया—''हूँ, किसी एक दो दोष देना या उसी से पूरे हालत पर काबू पा लेने की उम्मीद रखना ठीक नहीं। दोनों ही पक्षों को अपने-अपने ढंग से कार्य करना होगा और दोनों का उद्देश्य एक ही बना रहना भी जरूरी है।''

बच्चे खेल खत्म कर लौट आए थे। उनके शाम के नाश्ते का समय हो गया था। ऋतु उठकर रसोई में चली गई। बच्चे पापा को दिन भर की घटनाओं का ब्यौरा देने और अपनी फरमाइशे करने लगे।

स्मार्ट फोन

मासूम श्रेय की मुश्किल से आँख लगी थी। वह अभी भी रह रहकर सुबकियाँ ले रहा था। सुप्रिया उसके बगल में लेटी उसे थपकियाँ देती हुई उसके भोले चेहरे को ध्यान से देख रही थी। विगत कुछ महीनों से श्रेय की शैतानियाँ बढ़ती जा रही थी। डेढ़ दो साल की उम्र तक उसकी जिन शरारतों पर सबको आनंद आता था अब वे ही श्रेय को डाँटे जाने का कारण बन रही थी। श्रेय का चीखना, रोना, जिद्द करना और सामान को उठाकर फेंक देना कभी-कभी सुप्रिया के लिए असाह्य हो जाता था और न चाहते हुए भी वह श्रेय को दो चार चपत लगा देती थी। परन्तु आहिस्ता-आहिस्ता वह उदंड हो रहा था और मार का उर उसके मन से निकल रहा था। श्रेय जितना जिद्दी होता जा रहा था। सुप्रिया उतनी ही सहज हो रही थी। वह सोच रही थी—शायद उस रोज निम्मी को डाँटकर उसने गलती की थी। कम से कम वह चार छः घंटे तो श्रेय को सम्भाल ही लती थी। साथ ही दिन भर घर के छोटे बड़े कामों में हाथ बटा देती थी। श्रेय की एक साल की उम्र तक कोई समस्या नहीं थी। सुबह मेहरी पूरा काम निबटा देती थी और दिन भर निम्मी रहती थी। पर इसके बाद श्रेय का मचलना और निम्मी का उसके खिलौने या खाने का समान लेने का खेल-खेल में प्रयास करना निम्मी के डाँटे जाने का कारण बनने लगा। उस रोज भी तो यही हुआ था। निम्मी श्रेय को लॉन में खिला रही थी और सुप्रिया अगले दिन की किट्टी पार्टी की तैयारी कर रही थी। श्रेय के चीखने की आवाज सुनकर वह बाहर आई तो देखा कि निम्मी के हाथ में श्रेय का खिलौना था और श्रेय, निम्मी के बालों को अपने दोनों हाथों से पकड़कर खींच रहा था। निम्मी खुद को छुड़ाने का प्रयास कर रही थी

परन्तु अब श्रेय की पकड़ भी धीरे-धीरे मजबूत हो रही थी। जिससे निम्मी खुद को छुड़ा नहीं पा रही थी। वह श्रेय का खिलौना लौटाकर उसे शांत करने की कोशिश कर रही थी पर श्रेय बुरी तरह चीख रहा था। यह सब देखकर सुप्रिया को तेज गुस्सा आ गया। उसने निम्मी को जोर से डाँट दिया। वह सुबकने लगी। फिर सुप्रिया श्रेय को समझा कर निम्मी के बाल छुड़ाने की कोशिश करने लगी। इत्तेफाक से उसी समय निम्मी की माँ आ गई। बेटी को रोते देख उसने कारण बूझा तो निम्मी ने सारा दोष श्रेय पर रखते हुए खुद को बचाने की कोशिश की और साथ ही सुप्रिया द्वारा डाँटे जाने को भी बताया। इससे निम्मी की माँ गुस्से में आ गई और अपनी भाषा में सुप्रिया को भला बुरा कहते हुए बेटी को ले गई। उस समय तो सुप्रिया ने भी उसे फटकार लगाई। पर बाद में महसूस हुआ कि शायद उसने गलत किया। आखिर निम्मी भी तो अभी बच्ची ही है। यदि उसका मन खिलौने से खेलने का हो ही गया तो इसमें क्या बुरा था। परन्तु अब कोई फायदा नहीं था। निम्मी को दूसरी अधिक पैसों का काम मिल गया था। काम भी आसान था। दो माह के बच्चे को खिलाने का। अतः दो तीन साल तो उसके लिए बगैर झंझट वाले हैं वह लौटकर आने वाली नहीं और न ही अब श्रेय उससे सम्भलने वाला है। पिछले छः माह में वह स्कूल भी जाने लगा है। जहाँ से और नई-नई शरारतें सीख रहा है।

स्कूल से भी अक्सर श्रेय की कोई न कोई शिकायत आती रहती है। ''कैसे सम्भाले इस नटखट को?'' सुप्रिया कभी-कभी यही सोचकर परेशान हो जाती है। नीरज के पास सिर्फ पैसा है। समय बिलकुल नहीं। डॉक्टरी का पेशा है ही ऐसा। एक बार चल पड़े तो मनुष्य पूरी तरह उसी का हो जाता है। रात में सोते श्रेय को एक बार दुलार लेने के अतिरिक्त नीरज से अन्य किसी सहयोग की उम्मीद रखना व्यर्थ है। श्रेय भी पापा से महंगे खिलौने पाने से अधिक कोई उम्मीद नहीं रखता है। उसकी सारी जरूरते सुप्रिया ही पूरी करती है। इन हालत में सुप्रिया किससे सहयोग की उम्मीद करें? सुप्रिया यही सब सोच रही थी कि फोन की घंटी बज उठी। आज उसका किसी से भी बात करने का मूड नहीं था। पर वह जानती है कि यह समय उसकी माँ के फोन आने का है। यदि न उठाया तो वे न जाने क्या-क्या सोचने लगेंगी। वे अक्सर कहती हैं—''तुमसे श्रेय नहीं सम्भलता तो मेरे पास छोड़ दो। मैं पाल दूँगी।'' पर यह भी कहाँ संभव है। बच्चे को अपने से अलग करना भी तो आसान नहीं है। जैसे भी हो माँ का फर्ज तो उसी को निभाना है।

सुप्रिया ने बड़े अनमनेपन से फोन उठाया—"हलौ...मम्मी नमस्ते।" "हाँ जी नमस्ते। मम्मी के अलावा और कहीं बात नहीं होती है क्या? फोन उठाते ही मम्मी कह दिया।" उधर से आवाज आई। फोन सुप्रिया की मम्मी का नहीं दीदी की सहेली तनु का था।

''अरे दीदी आप। काफी दिनों बाद फोन किया। इसीसे अन्दाज नहीं लगा पाई।'' सुप्रिया ने सम्भलते हुए कहा—''सुना है आजकल हमारी छुटकी-मुटकी सुगृहणी बनने में लगी है। सब कुछ छोड़कर पूरी तरह से बेटे और पति को सम्भाल रही है।''

''सब कुछ मैं नहीं छोड़ रही हूँ दीदी अपने आप ही छुट रहा है। पूरा दिन घर में कोई न कोई काम लगा रहता है।''

''घर का काम लगा रहने का यह मतलब नहीं है कि तुम पूरी तरह घर में बंद हो जाओ। मूड फ्रेश करने के लिए घर से निकलना उतना ही जरूरी है जितना घर सम्भालने को घर में रुकना। तुमने मिसेज खरे की किट्टी में जाना क्यों छोड़ दिया?''

''श्रेय को किसके भरोसे छोड़ू दीदी और इसकी बढ़ती शैतानियों के कारण इसे कहीं ले जाना भी तो मुमकिन नहीं है।'' सुप्रिया ने उदासी भरा जवाब दिया।

''लगता है तुम्हीं दुनियाँ का पहला बच्चा पाल रही हो। मेरी देवरानी तुम्हारी ही हम-उम्र है। दो-दो बच्चों की जिम्मेदारी सम्भाल रही है और पहले से अधिक स्मार्ट हो रही है। अपना कोई भी शड्यूल नहीं छोड़ा है उसने। बल्कि सारी शॉपिंग भी खुद करती है। एक तुम हो कि बस श्रेय को लेकर बैठ गई। जानती हो तुम्हारे लिए तुम्हारी दीदी और मम्मी कितनी परेशान रहती हैं। भले ही मैं तुमसे बात न करूँ पर हम जब भी बातें करते हैं उसमें सब से अधिक बातें तुम्हारे बारे में ही होती हैं। आण्टी कह रही थीं कि न तुम समय पर खाती हो न आउटिंग को निकलती हो। मीता तो इससे भी अधिक परेशान है। कह रही थी-'सुप्रिया को हमने ऐसे तो नहीं पाला था जैसे वो रहने लगी है। उस रोज बुआजी के यहाँ उसे देखकर बहुत दुःख हुआ। न ढंग से कपड़ा पहना था न ही कायदे का मेकप। अपनी उम्र की लड़कियों में वही सबसे डल दिख रही थी।' आखिर तुम्हे हो क्या गया है?''

इसके पहले कि सुप्रिया कोई जवाब देती तनु को बड़ी कर्कश आवाज सुनाई दी। लग रहा था सुप्रिया के घर के बाहर कोई चिल्ला रहा था। वह शायद कोई शिकायत कर रहा था। तनु जब तक कुछ समझ पाती सुप्रिया ने 'दीदी मैं अभी आई।' कहते हुए फोन रख दिया।

पड़ौसी शर्मा अंकल श्रेय की शिकायत करने आए थे। आज उसने उनके लॉन में पत्थर फेंका। जो वहाँ धूप सेक रही उनकी माँ को लगा। वे बेचारी तेज बोल और चल नहीं पाती हैं। जब शर्माजी बाजार से लौटे तो माँ ने उनसे शिकायत की। श्रेय की यह हरकत उनसे बर्दाश्त नहीं हुई। इसीलिए शिकायत करने आए थे।

अंकल की शिकायत वाजिब थी। सुप्रिया सॉरी के अलावा कुछ कहने की स्थिति में नहीं थी। किसी तरह अंकल को शांत कर सुप्रिया जैसे ही कमरे में आई कि फोन की घंटी फिर बजने लगी। सुप्रिया झूंझला गई। सब मुझे ही समझाना चाहते हैं। सब मेरी ही गलती महसूस करते हैं। अब सबको हर दिन कहाँ तक समझाऊँ कि मेरे इस बदलते स्वभाव का कारण श्रेय की बढ़ती शरारते हैं। फोन बराबर बज रहा था। सुप्रिया ने झूंझलाते हुए फोन उठा लिया। तनु ने प्रश्न किया—''कौन महाशय थे? क्यों चिल्ला रहे थे?''

''पड़ौसी अंकल श्रेय की शिकायत लेकर आए थे।'' सुप्रिया ने संक्षिप्त उत्तर दिया।

''बड़े अच्छे पड़ौसी हैं तुम्हारे। बच्चे की शिकायत करने चले आए। ऐसा क्या किया श्रेय ने?''

''पड़ौसी तो अच्छे ही हैं। आज तक इसकी शैतानियों को हँसकर टालते रहे हैं। पर आज इसने उनके घर में पत्थर फेंका, जो उनकी बूढ़ी माँ को लगा। ऐसे में कोई भी शिकायत करेगा दीदी।''

''बड़ी नादान हो तुम। अपने बच्चे की जगह दूसरे की तरफदारी कर रही हो। अगर अपने बच्चे की कोई गलती दिखती भी है तो उसे डाँटने का अधिकार केवल हमारा है। अब समझ में आया कि लड़का शैतान क्यों हो रहा है। लगता है तुम हरदम औरों की ही तरफदारी करती हो। इसी से वह चिढ़ जाता होगा।''

''इसकी शरारतें हैं ही ऐसी तो मैं इसकी तरफदारी कैसे करूँ। मुझे तो शर्मिंदगी महसूस होती है। माफी माँग कर ही पीछा छुड़ाती हूँ सबसे। अब तो यह अक्सर मार खा जाता है मुझसे। आज भी पिटकर ही सोया है।'' इतना कहते-कहते सुप्रिया रूआंसी हो गई।

तनु का स्वर हमदर्दी भरा और अधिकार पूर्ण हो गया। उसने सुप्रिया को प्यार भरी झिड़की देते हुए कहा—''क्या कहा—तुमने लड़के को मारा है और तुम अक्सर उसकी पिटाई करती हो? यह तो हद हो गई सुप्रिया। तुम नन्हे बालक पर जुल्म क्यों कर रही हो। अब बच्चों से मार पिटाई का जमाना नहीं रहा।''

''तो मैं क्या करूँ? आप ही बताइए दीदी।'' इतना कहते-कहते सुप्रिया को लगभग रोना आ गया।

तनु ने उसे समझाते हुए कहा—''चिंता मत करो। मैं जल्दी ही तुम्हारी समस्या का कोई उपाय ढूँढ़ती हूँ। हिम्मत रखो और अपना ख्याल करो। सबसे अहम् तुम्हारी सेहत है। वरना सारा काम ठप्प हो जाएगा।'' सुप्रिया ने—''ठीक है।'' कहते हुए फोन रख दिया।

तीन दिन बाद सुप्रिया लॉन में बैठी धूप का आनंद ले रही थी। श्रेय के स्कूल से आने में अभी एक घंटा बाकी था और आज नीरज ने कहीं घूमने जाने का प्रस्ताव रखा था। सुप्रिया ने नीरज से साफ कह दिया कि वह ऐसी जगह जाना चाहती है जहाँ नीरज के साथ उसके और श्रेय के अतिरिक्त कोई न हो। पूरी तरह से पारिवारिक पिकनिक। बगैर किसी औपचारिकता के। भले ही हम शहर के बाहर किसी छोटी जगह पर जाए और कहीं ढाबे में खा लें पर ड्रेस मेकप की चिंता बिल्कुल न रहे। वह क्लबों की औपचारिक पार्टियों से ऊब गई है। वहाँ मनोरंजन और आनंद से अधिक चिंता इसी बात की होती है कि अपनी ड्रेस और लुकिंग किसी से कम तो नहीं। केवल नीरज की खुशी के लिए ही वह इन पार्टियों में जाती है। उसे खुद कोई खुशी नहीं मिलती। हर बार नए तरीके से बनने संवरने की चिंता कई दिन पहले से लग जाती है। आज की आउटिंग एकदम सादी और औपचारिकता रहित रहे बस। सुप्रिया अभी यह सब सोच ही रही थी कि तनु का फोन आ गया। सुप्रिया ने नमस्ते की तो तनु बोली ''क्या बात है आज हमारी छुटकी बड़ी चहक रही है।''

सुप्रिया जैसा सोच रही थी। तनु को बता दिया। तनु कुछ खफा सी बोली—''हूँ, तो इधर हम तुम्हारी समस्याओं को सुलझाने की कोशिश कर रहे हैं और उधर तुम उनसे भागने की सोच रही हो। समस्याओं से लड़ना पड़ता है सुप्रिया रानी। हम तुम्हें यूँ ही नहीं छोड़ सकते हैं। हम सबकी खुशी के लिए तुम्हें अपने पुराने शड्यूल पर लौटना ही होगा।'' सुप्रिया चुप सुनती रही। उधर से तनु की आवाज फिर आई—''सो गई क्या?''

''नहीं-नहीं। आप बताइए दीदी मैं सुन रही हूँ।''

''हाँ तुम्हारी समस्या को लेकर मैंने तीन चार से बात की। उनका कहना था बच्चों के साथ थोड़ी परेशानी तो होती है पर ऐसा नहीं कि हमें अपने प्रोग्राम छोड़ने पड़े इसमें सबसे अहम् तो यही है कि तुम हर कीमत पर अपनी मेड सर्वेंट को बनाए रहो। पर उस पर भी कड़ी नजर रखना जरूरी है और

श्रेय जैसी उम्र के बच्चों के साथ तो अधिक परेशानी नहीं है। तुम उसे एक स्मार्ट फोन ले दो। आज कल बच्चों के इतने प्रोग्राम मौजूद है कि घंटा दो घंटा यूँ ही बालक मजे से खेलते रहते हैं। न गिरने चोट खाने का डर न किसी से झगड़ा झंझट।''

सुप्रिया धीमें से बोली–''स्मार्ट फोन?''

''हाँ स्मार्ट फोन। जानती नहीं हो क्या? लगता है अभी तुमने खुद भी नहीं लिया है। दो सैट ले आओ आज ही। इतना कमा रहे हो किस लिए। नीरज को कह देना, मैंने कहा है। वह न ले पाए तो मेरी ओर से खरीद लो मैं पैसा दे दूँगी।''

सुप्रिया ने फिर संक्षिप्त उत्तर दिया–''ठीक है दीदी। मैं कह दूँगी।''

शाम को सुप्रिया नीरज के साथ घूमने निकली तो एक स्मार्ट फोन खरीद लिया गया। नीरज ने कारण जानने की कोई उत्सुकता नहीं दिखाई। उसके स्टेट्स के हिसाब से ऐसे छोटे-मोटे गिफ्ट बीवी को देते रहना मामूली बात थी। लगभग एक सप्ताह में श्रेय अच्छी तरह से मोबाइल चलाना और अपनी जरूरत के प्रोग्राम लगाना सीख गया। सुप्रिया को एक नई फुल टाइम मेड मिल गई। धीरे-धीरे सुप्रिया की दिनचर्या पुरानी पटरी पर लौटने लगी। अब वह अपने किट्टी, क्लब और सहेलियों को पूरा समय दे सकती थी। अपने लिए भी समय निकाल सकती थी। सुप्रिया खुश थी और उससे भी अधिक उसकी माँ और दीदियाँ खुश थीं। सुप्रिया बेटे के भविष्य से अनभिज्ञ व निर्लिप्त स्मार्ट फोन पर गोशिप के लिए बैठ गई और उसने श्रेय को स्मार्ट फोन पर उसका मनपसंद कार्टून लगाकर दे दिया।

गोवर्धन

गोवर्धन महाराज की जय, गोवर्धन महाराज की जय..। बोलते हुए सबने परिक्रमा पूरी की और इसीके साथ गोवर्धन पूजा का कार्यक्रम पूरा हुआ। सभी ने सभी को यथोचित अभिवादन कर आशीर्वाद लिया। लम्बे समयान्तर के बाद नीरा ने भी मैके में गोवर्धन पूजन का किया। इस कालावधि ने इस छोटे से शहर को महानगर में बदल दिया। नीरा का पति विगत तीन वर्ष से विदेश में हैं और इस बार वे नीरा व बच्चों को भी साथ ले जाने वाले हैं। नीरा को पिता ने इसीलिये मयके बुला लिया कि सबसे मिल ले। पता नहीं फिर कब उसका स्वदेश आना हो। नीरा बच्चों से घिरी बातों में मशगूल थी कि तभी उसकी भाभी ने अपने बेटे को आवाज लगाई—''विनय ये पुए छत पर डाल दो।''

आश्चर्य से नीरा ने कहा—''भाभी छत पर क्यों?''

''बंदर खा लेंगे।''

''भला बंदर क्यों खा लेंगे? यह तो ग्वाले को दिया जाता है।''

विनय ने पुए उठाते हुए कहा—''लो अब बुआ तो ग्वाले को ढूँढ़ेगी। यहाँ क्या गाँव है जो ग्वाला मिलेगा ?''

नीरा ने विनय को समझाते हुए कहा—''शहर में भी ग्वाले रहते हैं।''

माँ की काँपती आवाज आई—''बेटी तुम छोटे शहर में हो वहाँ मिलते होंगे। यहाँ तो अब गाय भी दर्शन को नहीं। ग्वाला कहाँ ढूँढ़ा जायगा ?''

नीरा ने प्रश्न किया—''क्या शहर से जानवर अब चरने नहीं आते हैं।''

पिता—''अब यहाँ मैदान कहाँ है? आकर क्या इमारतों को चरेंगे।''

नीरा जब स्टेशन से घर आई थी तो अंधेरा घिर चुका था और वह सबसे मिलने के उत्साह में इतनी खोई थी कि इलाके में हुए इस परिवर्तन की ओर

उसका ध्यान न गया। अतः वह पिता की बात का कोई जवाब न दे पाई। बस आश्चर्य से उनकी ओर देखा। कुछ सैकेंड रुक कर उसने अपनी बात को आगे बढ़ाया–''जानवरों के साथ वे छोटे-छोटे लड़के आते थे। कितने शौक से यह सब खाते थे। कितने पहले से गोवर्धन के बारे में पूंछने लगते थे। माँ तुम तो सदा उन्हें गुड़-पानी पिलाती थी। गोवर्धन के पुओं के साथ दिवाली की मिठाई भी देती थी। याद है जब तुमने एक बार उसकी ईद की लाई सेवई उसे ही कितने प्यार से खिला दी थी तब वह जान गया था कि अम्मा हमारे घर का पका नहीं खाएँगी तो अगले रोज बाल्टी भर गाय का दूध यहीं दुह कर दे गया था।''

पिता गहरी साँस छोड़ कर बोले–''अरे बेटा किस जमाने को याद कर रही हो। अब शहर में पहले वाला माहौल नहीं रहा। अब हिन्दु और मुसलमान एक दूसरे की बस्ती में जाते हुए घबराते हैं। किसी कारण जाना भी पड़े तो अंधेरा घिरने से पहले ही लौट आते हैं।''

नीरा को जैसे इस सब पर यकीन नहीं हो रहा था। वह बोली–''और वे सिब्बू माली के बच्चे ? वे भी अब यहाँ नहीं रहते क्या ? तुम कभी-कभी उनके यहाँ भी तो आज का पूजा भिजवा देती थी। वे भी गाय पालते थे। माँ तुम्हीं तो कहती थीं-जो गाय की सेवा करे वही ग्वाला है। जात से क्या होता है। उसी के यहाँ भिजवा देना।''

नीरा की बात पर बच्चे हँस पड़े। पिता गम्भीर हो गए। वे बोले–''सिब्बू माली का एक बेटा बम्बई भाग गया है और दूसरा स्मग्लिंग के चक्कर में जेल काट रहा है। सिब्बू कई साल हुए मर गया और उसकी घरवाली बेटी के यहाँ किसी गाँव में रह रही है।'' नीरा की जिज्ञासा और बढ़ गई। उसने प्रश्न किया–''उसकी गायों का क्या हुआ?'' पिता ने जवाब दिया–''गायों का क्या होना था। न दाना न भूसा, न ठीक से देखभाल। बेचारी समय से पहले ही बूढ़ी हो गई। सिब्बू की घरवाली ने उन्हें कसाई के हाथों बेक दिया।'' नीरा ने आश्चर्य से कहा–''कसाई के हाथ यह जानते, हुए भी कि कसाई के हाथों बेकने पर उनका क्या हाल होगा।''

''बिना दूध की गायों को कौन पालता?''

''जिसने जीवन भर उनसे कमाया खाया। गाँव ही ले जाती। वहीं चर लेती।''

''गाँव में भी अब जंगल कहाँ रहे?''

नीरा के भाई जो अभी तक इस चर्चा से अलग थे। वे भी बोल पड़े–''और तुम्हारे वे नदीम और फरीद ग्वाले अब शहर इस्लामिक कमैटी के संचालक हैं।

गाय भैंस का धंधा तो कब का बंद कर चुके। इस बार के दंगों में सबसे ज्यादा गाय उन्हीं के इलाके में कटीं। आगजनी में उनकी कमैटी ने खूब हिस्सेदारी निभाई। अब भी कितने हिन्दुओं के घरों पर कब्जा जमाया हुआ है। कचहरी में सबके मुकदमें चल रहे हैं।'' इतना कहते-कहते भाई जोश में आ गए। सभी शांत हो गए। कुछ मिनट बाद बच्चों की फुसफुसाहट और दबी आवाज हँसी में बदल गई। एक बोला–''और हमारी बुआजी ग्वाला ढूँढ़कर रहेगी। आप छोटे शहर में रहती हो बुआ। वहाँ ये सब होंगे। यहाँ तो बंदर भी दिन भर निकलें तो गनीमत है। सब रात के पटाखों से डरे कहीं दुबके बैठे होंगे।''

नीरा शांत शून्य में देखती हुई सोच रही थी–''जिन गायों से पीढ़ी दर पीढ़ी पली जिनका दूध पीकर बड़े हुये उनका भी कत्ल । उन्हीं को कसाई के हाथों बेक दिया। यह कैसी तरक्की? कैसा धर्म?''

परस्पर

कुशल-क्षेम

अवध कई दिन से असमंजस में था। उसे समझ नहीं आ रहा था-घर जाय या न जाय। लम्बे समय से घर जा नहीं पाया था इसीलिए जाने की इच्छा बहुत थी। परन्तु ऑफिस का बढ़ा काम बार-बार इरादा डिगा रहा था। चला गया तो रुका काम हफ्तो सिर दर्द बन जायगा और यदि न गया तो मन काम में न लगेगा। पिता भले ही आश्वस्त कर देते हों कि सब ठीक है पर जाकर देखे बगैर विश्वास नहीं होता है। बड़े लोग बच्चों को परेशानी से बचाने के लिए अपनी कितनी ही तकलीफें बर्दास्त कर जाते हैं। दूर बैठे को अच्छा ही कहते रहते हैं। आखिर एक शाम अवध अपने फैसले पर पहुँच गया। उसने साहब को चार दिन की छुट्टी की अर्जी बढ़ा दी। उसी रात रिजर्वेशन करा लिया और अगले दिन सुबह ही पिता को फोन कर दिया कि वह चार दिन की छुट्टी पर घर आ रहा है।

माँ ने सुना तो सुकून मिला—"चलो, त्यौहार के ही बहाने सही बालक घर आते रहें तो करीब से उनकी दुःख तकलीफ जान ली जाती है। वरना दूर से भूखे भी यही कहेंगे बड़ी मौज में हैं। खूब खाया है।" माँ बेटे अपनी-अपनी तैयारी में लग गए। ठीक त्यौहार के दिन अवध माता-पिता के पास पहुँच गया।

एक तो त्यौहारी पकवान, फिर माँ ने बेटे की पसंद का ही सब कुछ बनाया। अवध स्वाद ले, लेकर देर तक खाता रहा। खा पीकर दोस्तों से मिलने निकल गया। घर लौटा तो माता-पिता से देर तक बातें करता रहा। घर, पड़ौस, रिश्तेदारी और तबियत की बहुत सी समस्याओं और जानकारियों पर बात होती रही। सोया तो सुबह देर तक सोता रहा। माँ ने दो तीन बार चाहा जगा दे।

पर थका है, बहुत दिनों बाद घर आया है, ठीक से आराम करना भी जरूरी है। यही सोचकर चुप रही। अवध अपनी नींद पूरी कर उठा। पूरा दिन हँसी खुशी में बीत गया। बेटा जो कहता माँ शौक से पूरा करती। बेटे की हर बात मान लेने को जैसे उसने प्रण कर लिया था। पहले दिन भर अवध की जिन छोटी-छोटी बातों पर उसे फटकारती थी अब उन्हें हँस हँसकर बर्दास्त कर रही थी। इतना ही नहीं अपनी समझ से भी बेटा क्या चाहता है? क्या खाना पसंद करेगा? उसे माँ का किस तरह बोलना रहना पसंद है? इन सबका भी भरपूर ख्याल रख रही थी। वह बेटे को स्वस्थ और प्रसन्न देखकर अत्यंत संतुष्ट थी। बेटे के आने से पहले उसके मन में जो शंकाए सवाल और परेशानियाँ थीं बेटे से मिलकर वे सब समाप्त हो गई थीं । माँ ने राहत की साँस ली। परन्तु दूसरा दिन बीतते तक अवध की परेशानी बढ़ने लगी। माँ सन्तुष्ट हो गई थी परन्तु वह जिन समस्याओं को समझने जानने यहाँ तक आया था उसे उनका कोई जवाब नहीं मिल रहा था।

तीसरे दिन अवध ने दिन में कई बार माँ से उसकी तबियत के बारे में बूझा। घर में सब कुछ ठीक तो है। इस पर विविध प्रकार से सवाल किए। माँ उसे बार-बार आश्वस्त कर रही थी। वह पूरा यकीन दिलाने की कोशिश कर रही थी कि कहीं कोई परेशानी नहीं है। वह अकारण चिंता न करे। चार दिन को आया है आराम से रहे। परन्तु माँ के बार-बार यकीन दिलाने पर भी अवध को न तो सब कुछ सही का यकीन हो पा रहा था और न ही वह समस्या को जान पा रहा था।

असमंजस की स्थिति में अवध टहलने निकल गया। मौहल्ले के दोस्त और बच्चे बूढ़ों से दुवा सलाम कर आगे बढ़ा। कुछ देर में अवध मण्डी चौराहे पर पहुँच गया। वह कुछ फलों का मोल भाव कर रहा था कि उसे पास में खड़े युवक की आवाज कुछ पहचानी सी लगी। जो दो लोगों से हिसाब कर रहा था। अवध ने ध्यान से देखा। अवध खुश हो गया-अरे यह तो रानू है। कितना बड़ा हो गया है। कुछ साल पहले ही तो टैम्पू के साथ चलता था। दौड़-दौड़ कर सवारियों को बुलाना, उनसे पैसे लेना और टैम्पू के पावदान पर बैठकर दिन भर टैम्पू की सैर करना उसके काम थे। अवध और उसके मौहल्ले के कितने ही साथी वर्षों रानू के टैम्पू से ही स्कूल आते जाते थे। अवध ने फल वाले को दो किलो सेब तौलने को कहा और जैसे ही रानू ने अपना हिसाब पूरा किया अवध ने उसके कंधे पर हाथ रखते हुए कहा–''कहो रानू क्या हाल हैं?''

रानू ने पल भर को अवध को देखा और तुरंत पहचान कर उछलता सा बोला—''अच्छा अवध भैया, आप कब आए? कैसे हो?''

''हम तो मजे में हैं। तुम सुनाओ। टैम्पू कैसी दौड़ रही है?''

''टैम्पू नहीं भैया अब तो वैन ले ली है। अब आपका जमाना नहीं है। आजकल तो माता-पिता वैन से कम पर अपने बालकों को स्कूल भेजना ही पसंद नहीं करते हैं। अब धंधे में रहना है तो कुछ तो नया करना पड़ेगा।''

''वाह-वाह तरक्की पर हो। किसी दिन अपनी वेन की हमें भी सैर करा देना।''

''कैसी बात करते हो भैया। आधी रात को हुक्म करो तुरंत हाजिर हो जाऊँगा। वह देखो सामने खड़ी है।'' रानू ने सड़क के उस पार खड़ी गाड़ी की ओर इशारा किया।

रानू ने अपना मोबाइल नम्बर अवध को दिया। फिर किसी दिन मिलने का वादा कर दोनों अपने-अपने रास्ते चले गए।

अवध ने रास्ते से कुछ ऐसी बेमेल व बे बेमौसमी, खराब और महंगी सब्जियाँ खरीदी जिन्हें उसके बचपन में पिता द्वारा लाने पर माँ देर तक बड़बड़ाती रहती थी और खाने के स्वादिष्ट न बनने का दोष कई दिन तक उन सब्जियों पर मढ़ती रहती थी। कुछ इस तरह की चाट पकौड़ी खरीदी जिन्हें छुटपन में लाने पर माँ अधिकतर भड़क जाती थी। उसे लम्बा भाषण देती थी और देर तक इस तरह के खाने के दुष्परिणाम गिनाती रहती थी।

अवध जब घर पहुँचा तो माँ उसके लिए खीर पका रही थी। पिता कुछ लिखा पढ़ी में उलझे थे। अवध ने रसोई से प्लेटें उठाई और लाई खाद्य सामग्री को पिता, माँ और अपने लिए परसा फिर माँ को उसकी प्लेट देकर पिता के पास चला गया। पिता बोले—''तुम्हारी माँ तुम्हारे लिए खीर बना रही है और तुम बाजार का हलुवा ले आए। इसे खाने से तो तुम्हारा पेट खराब हो जाता है। हलुवा ही खाना था तो घर में बनवा लेते।''

माँ रसोई में काम जरूर कर रही थी परन्तु उसका पूरा ध्यान अवध पर ही लगा था। इसके पहले कि अवध कोई जवाब देता माँ ने ऊँची आवाज में कहा—''आप भी बात-बात पर बच्चे को टोकते रहते है। अपने शहर आया है तो यहाँ का खाना देखकर खाने का मन तो होगा ही। खीर कुछ देर बाद खा लेगा। वैसे भी खीर के पकने में अभी समय लगेगा। तब तक भूख लग जाएगी।''

आँच मंदी कर माँ अपनी प्लेट लेकर कमरे में आ गई। माँ बड़े स्वाद से प्रसन्नचित खा रही थी। पिता भी खा रहे थे। पर माँ जैसे प्रसन्न नहीं थे और

माँ को खुशी-खुशी खाते देखकर अवध की तो जैसे भूख ही मर गई थी। वह खा अवश्य रहा था। परन्तु उसका अधिक ध्यान माँ के हाव-भाव पर था। माँ बीच-बीच में हलुवे की तारीफ भी कर रही थी। पर अवध को वह फीका लग रहा था। माँ इससे कहीं अधिक स्वादिष्ट हलुवा बनाती है। ऐसा नहीं कि अवध को माँ के बनाए हलुवे से यह हलुवा अधिक पसंद है। बल्कि वह तो यह सब कुछ और ही उद्देश्य से लाया था। जो पूरा नहीं हो पा रहा था। अवध बेमन से मुस्कुराने का अभिनय करते हुए देर तक हलुवा और समोसा खाता रहा। अब अवध को अपनी लाई सब्जियों से थोड़ी उम्मीद थी उसका चाट फार्मूला फेल हो गया था।

खीर से निबट कर माँ ने सब्जियों का थैला खोला। अवध उस समय चौके में ही था। वह माँ की प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा कर रहा था। माँ ने सब्जियाँ टोकरी में रखते हुए अवध से बूझा—''क्या बनाऊँ अवध? इस समय कौन सी सब्जी खाने का मन है?''

''आप जो बनाओ वही।'' अवध ने जवाब दिया।

''नहीं-नहीं इतने मन से खरीद कर लाया है। जो भी खाने का मन है बता दे। मैं वही बना लूँगी।''

अवध क्या बताता। माँ की ऐसी प्रतिक्रिया से वह अचंभे में था। उसे इन सब्जियों से कोई लगाव नहीं था। वह माँ को क्या समझाए? वह यह सब क्यों खरीद कर लाया है? फिर भी माँ का मन रखने को कुछ तो कहना ही था। बोला—''गोभी बना लो।'' माँ खाने की तैयारी में लग गई और अवध पिता के साथ भविष्य की योजनाओं पर चर्चा करने लगा।

चौथे दिन अवध की बेचौनी बहुत बढ़ गई। उसे कुछ सूझ नहीं रहा था। करे तो क्या करें? कल शाम की गाड़ी से उसे चले जाना है। जिस लिए आया है वही समस्या नहीं सुलझी है। माँ बराबर कभी उसके ले जाने का नाश्ता बनाने, कभी कपड़े समेटने और कभी पैकिंग का सामान इकट्ठा करने में लगी है। उससे अधिक बाते करने का न तो समय मिल रहा है और न ही सीधे-सीधे बूझने पर सही जानकारी मिलने की उम्मीद है। अवध ने पिता से ही माँ की अनुपस्थिति में जोर देकर कहा—''आप मुझे सही-सही बताओ माँ की तबियत एकदम ठीक चल रही है? आप उनका रेगुलर चेकप करा रहे हो?''

पिता हँसकर बोले—''नाहक परेशान हो रहे हो। देख नहीं रहे हो वह चार दिन से कितनी खुश है। दौड़-दौड़ कर सब काम संभाल रही है। तबियत ठीक

न होती तो कैसे करती? अब उम्र बढ़ रही है तुम्हें कुछ कमजोर नजर आ रही होगी। बस इतनी सी बात को लेकर ही परेशान हो रहे हो। तुम अपने कैरियर पर ध्यान दो। तुम्हारी माँ की देखभाल को अभी मैं ही काफी हूँ।''

अवध चुप हो गया। पर उसका मन शांत न हुआ–''क्या हालात इतने ही सामान्य हैं जितनी सहजता से पिता ने उनका बयान कर दिया है। नहीं सब कुछ उतना ठीक नहीं है जितना पिता कह रहे हैं। कहीं कुछ तो गड़बड़ है।''

रात के खाने के बाद अवध घर के बाहर टहलने लगा। उसने माँ को भी टहलने के लिए कहा था। पर उसने थकने का बहाना कर दिया। अवध पशोपेश में था क्या माँ सच में थकी है। ऐसा कैसे हो सकता है। माँ तो कभी थकती नहीं थी और उसके साथ घूमने फिरने के नाम पर तो बिलकुल भी नहीं। तब क्या उसका अनुमान सही है कि माँ कि तबियत समान्य नहीं है। तब आखिर माँ और पिता छिपा क्यों रहे हैं। वह चार दिन में कुछ अधिक न कर पाता तो कम से कम किसी अच्छे डॉक्टर को दिखा सकता था। आवश्यक जाँच करा सकता था। इससे उसे सन्तुष्टि हो जाती बस। इसमें माँ-पिता को क्या आपत्ति है या यह कोई बड़ा रहस्य है कि जो उसे किसी दिन अचानक सुनाया जायगा। यही सब विचारते हुए अवध को करीब के घर से टी.वी. पर चल रहे किसी पुराने सीरियल का परिचित सा म्यूजिक सुनाई दिया। उसे अचानक याद आया कि माँ भी इसे शौक से देखती है। उसे अच्छी तरह याद है। माँ पर चाहें जितना काम रहता था वह इस सीरियल को देखने का समय निकाल ही लेती थी। यह विचार आते ही अवध घर की ओर बढ़ चला। वह बड़बड़ाया–''अच्छा तो माँ थकी नहीं है वरन् अपना पसंदीदा सीरियल देखने के लिए उसने थकने का बहाना किया है। अब देखता हूँ माँ अपनी बीमारी और कमजारी को कैसे छिपाती है। माँ का असली रूप देखने का यही सबसे अच्छा मौका है।''

अवध घर में आया। वह सीधा माँ के पास बैड रूम में पहुँच गया। उसका अनुमान एकदम सही था। माँ वास्तव में सीरियल देखने में व्यस्त थी और यह सीरियल का सबसे महत्त्वपूर्ण दृश्य चल रहा था। अवध ने झपट कर सामने रखा रिमोट उठा लिया और तुरंत सीरियल हटा कर खेल समाचार चौनल लगा दिया। वह इतनी सहजता से बैठ गया जैसे उसने कुछ किया ही नहीं है। वह हर क्षण माँ की प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा कर रहा था। कुछ सैकेण्ड में ही माँ की प्रतिक्रिया हो भी गई। पर उस प्रतिक्रिया ने अवध की उम्मीद पर पानी फेर दिया। यह उसके विचार के एकदम विपरीत थी। माँ बोली–''चल ठीक ही

किया जो तूने खेल समाचार लगा दिए। तेरे साथ मैं भी देख लूँगी। अकेले तो मुझे आधी बात समझ में ही नहीं आती है। खिलाड़ी भी तो देश का नाम करते हैं। उनके बारे में जानना भी जरूरी है।''

अवध से कुछ भी कहते न बना। वह पलंग पर तकिए का सहारा लेकर अधलेटा सा बैठ गया। कुछ देर बाद उसने आँखें बंद कर ली। माँ का उधर ध्यान गया। वह बोली–''अरे क्या हुआ? सर में दर्द है क्या? दिन भर घूमता रहा है ठण्ड लगी होगी। ला विक्स लगा दूँ।''

अवध ने कोई जवाब न दिया। उसके मन में आया कहे–''मेरे पास दिमाग ही कहाँ है। दर्द किसमें होगा? दिमाग होता तो क्या चार दिन में इतनी सी समस्या भी न सुलझा पाता।'' अवध के पास चुप रहने के अलावा कोई चारा नहीं था। यह माँ बेटे के बीच का मामला था। किसी भी रिश्तेदार या दोस्त से इसमें मदद नहीं मिल सकती थी। माँ से सीधे सवाल नहीं किया जा सकता था क्योंकि यह उससे ही संबंधित मसला था और पिता से वह जितना बूझ सकता था बूझ चुका था।

कुछ देर बाद माँ खाना बनाने चली गई। अवध अपनी अगली छुट्टियों का हिसाब लगाने लगा–''अब समय अधिक नहीं है। जो समस्या पिछले चार दिन में नहीं सुलझ पाई थी उसकी आधे दिन में सुलझने की उम्मीद ना बराबर थी। अब पिता की बात पर विश्वास कर लेने के अलावा और कोई रास्ता नहीं था। वह कोशिश करेगा उसे अगली छुट्टियाँ जल्दी मिल जाए। वह माता-पिता की इकलौती संतान है इसीसे माँ के प्रति उसकी जिम्मेदारी और बढ़ जाती है।''

माँ खाना बनाने के साथ-साथ अवध का सामान भी इकट्ठा कर रही थी। कभी वह कोई डिब्बा तो कभी छोटा बड़ा बैग रख जाती। कुछ देर बाद पिता कमरे में आए। सामान देखकर बोले–''अवध बेटा अपना सामान अभी पैक कर लेना। चलते समय हड़बड़ाहट में कुछ छूट न जाय।''

अवध ने बगैर पिता की ओर देखे ही जवाब दिया–''पहले माँ का सामान लाना तो पूरा हो जाय। देख लू कितना पैक करना है। क्या छोड़ना है?''

''नहीं-नहीं छोड़ना बिल्कुल नहीं। मैंने इतनी मेहनत से सब बनाया है। महीने भर भी खराब ना होने वाली चीजें हैं।'' माँ ने कमरे में आते हुए कहा।

''पर इतना सब कैसे ले जाया जायगा?'' अवध ने सामान की ओर इशारा कर कहा।

पिता समझाते हुए बोले—''तुम सब बांध लो। ले जाने की चिंता मत करो।''

माँ ने याद दिलाया—''आप रानू को फोन कर दो। वह गाड़ी लेकर आ जायगा। सामान के उठवाने में भी मदद कर देगा।''

''रानू को।'' अवध ने आश्चर्य से कहा।

''हाँ क्या तुम रानू को भूल गए हो? वही तुम्हारी स्कूल टैम्पू वाला छुटकू। उसने अब गाड़ी ले ली है। हम लोग तीन चार बार उसकी गाड़ी से गए हैं। सामने डायरी रखी है उसी में उसका नम्बर लिखा होगा।'' माँ ने एक साँस में ही इतना सब कह डाला।

''नहीं मैं भूला नहीं हूँ। वह कल ही मुझे मिला था। उसका नम्बर मेरे पास है। मैं फोन कर दूँगा।''

माँ आज भी वैसी ही व्यस्त थी जैसी अवध के आने के दिन व्यस्त थी बस अंतर था तो केवल इतना कि उस दिन उसका चेहरा थकी होने पर भी मुस्कान भरा था। उसके अंदर का उत्साह उसे और अधिक कुछ करते रहने को प्रेरित कर रहा था और आज की थकान धीरे-धीरे उसके शरीर को शिथिल और चेहरे को उदास बना रही थी। भले ही वह इस संबंध में कुछ न कहे पर अवध सब भांप रहा था। वह माँ की इस उदासी को दूर करने में असमर्थ था क्योंकि उसका ड्यूटी पर जाना निश्चित था छुट्टियों को और नहीं बढ़ाया जा सकता था। खाना तैयार होते ही माँ ने अवध को खाने के लिए आवाज लगाई परन्तु अवध माँ से खाना बना लेंने और सबके इकट्ठा खाने की बात कह कर दोस्तों को फोन करने में व्यस्त हो गया।

घंटे भर बाद सबने साथ बैठकर खाना खाया। माँ का ध्यान अवध की थाली पर था। वह उसे बार-बार कुछ और ले लेने को कह रही थी और अवध उसे अपना खाना भी ठीक से परस कर खाने पर जोर दे रहा था। पिता सहज भाव से अपना भोजन कर रहे थे। खाने के बाद देर रात तक तीनों बातें करते रहे। माँ अवध को सुरक्षा और स्वास्थ्य संबंधी बहुत सी बातें समझा रही थी और पिता आर्थिक योजनाओं और बचत योजनाओं की जानकारी दे रहे थे। अवध दोनों की बातें आधी अधूरी सुनता हुआ हाँ हूँ कर रहा था।

सुबह माँ अपने नियत समय उठ गई। पिता भी अपनी दिनचर्या में व्यस्त हो गए। परन्तु अवध जागकर भी देर तक लेटा रहा।

यही सुबह दस बजे के करीब का समय रहा होगा। अवध और उसके पिता नाश्ता कर चुके थे और माँ नाश्ता कर रही थी तभी रानू ने गाड़ी का

हार्न बजाय। अवध ने उठकर गेट खोला और रानू सीधा अंदर चला आया। उसने माँ के पैर छूकर कहा—''आण्टी आप अभी तैयार नहीं हैं। जल्दी तैयार हो जाओ देर हो जायगी।''

अवध की माँ ने उसे आश्चर्य से देखते हुए कहा—''कहाँ के लिए देर हो जाएगी। भैया की गाड़ी रात ग्यारह बजे की है तुझे का सुबह ग्यारह बजे समझ में आया। बैठ चल नाश्ता कर ले।''

''मैं नाश्ता कर चुका हूँ। आप जल्दी तैयार हो जाओ। मुझे बारह बजे बच्चों को लेने जाना है।''

''अरे जाना है तो जा। मैं क्यों तैयार हो जाऊँ?''

रानू कुछ बोलने वाला था कि अवध ने उसे चुप रहने का इशारा किया। वह प्रश्नसूचक निगाहों से अवध को देखने लगा और माँ उठकर रसोई में चली गई। अवध ने धीमी आवाज में रानू को कुछ समझाया। अवध की माँ ने नाश्ते का थोड़ा सामान प्लेट में लाकर रानू को पकड़ा दिया। रानू ने प्लेट लेते हुए कहा—''आण्टी आपको मेरे साथ चलना है बस दो मिनट में तैयार हो जाओ।''

''कहाँ जाना है? कुछ बोलेगा भी।''

''आपने चार महीने से अपना चैकप नहीं कराया है। डॉक्टर के यहाँ चलना है।''

''पिछले महीने ही तो गई थी मैं। तू भूल गया है।''

''नहीं मैं तो चार महीने से इधर आया ही नहीं।''

''ठीक से याद कर।''

''चलो तो कहीं घूमने ही चलो। अब मैं आया हूँ तो कहीं तो चलो।''

''तेरा दिमाग खराब हुआ है। आज भैया को जाना है। मैं उसकी तैयारी कर रही हूँ। तुझे घूमने की सूझ रही है।''

''चलो तो भैया के लिए कुछ खरीदारी ही कर लाओ।'' रानू ने नाश्ता खत्म कर प्लेट रखते हुए कहा।

अवध की माँ थोड़े गुस्से में बोली—''लगता है आज तू मेरे हाथों मार खाएगा। कभी डॉक्टर कभी घूमना और कभी बजार ये सब क्या रट लगाई है। सुना नहीं भैया को जाना है। मेरे पास आज फुर्सत नहीं है और खुद तुझे भी बच्चों को लेने जाना है तब क्यों चलने-चलने के पीछे पड़ा है।''

''मार तो आज मुझे खानी ही है आपसे या भैया से। आपको ले जाने की जिद्द में आपसे और न ले जा पाया तो भैया से।''

अवध की माँ ने अवध को घूरा। वह दूसरी ओर मुँह किए मुस्कुरा रहा था। अवध को घुड़कते हुए माँ ने कहा–''अच्छा तो यह सारी तेरी कारस्तानी है। तूने इसे इस समय बुलाया है?''

अवध ने हल्का सा सिर हिलाया

''क्यों बुलाया भला। यह तो बता मैं बीमार दिखती हूँ तुझे।''

रानू ने अवध का बचाव करते हुए कहा–''आण्टी अब मैं आ ही गया हूँ तो चलने में बुराई क्या है?''

''एक ये बेवकूफ दूसरा तू मिल गया। बेवक्त का राग अलापने लगे दोनों।'' रानू को जाने का इशारा करते हुए माँ ने कहा–''चल पहले तू भाग यहाँ से। नहीं तो बहुत मार खाएगा।'' इतना कहते तक माँ ने स्केल उठा लिया। ''इससे मैं बाद में निबट लूँगी।''

अवध ने रानू के कंधे पर हाथ रखा और उसे लेकर आहिस्ता से दरवाजे की ओर बढ़ गया। माँ देर तक दोनों को प्यार भरी गालियाँ सुनाती और चिल्ली रही। वह दोनों की शरारती बुद्धि, बचपने और अड़ियलपन का बखान कर रही थी और ईश्वर इन्हें सदबुद्धि दे ऐसी दुआ भी कर रही थी। अवध ने रानू को सौ का नोट थमाते हुए रात दस बजे आने के लिए कहकर चलता कर दिया और खुद देर तक माँ के रौद्र रूप का आनंद लेता रहा।

भय

सड़कों पर शाम की भागमभाग शुरू हो गई थी। यह समय बालकों के खेल मैदान की ओर दौड़ने और कर्मचारियों के घर लौटने का था। घर की जरूरतें अथाह होती हैं जो हर दिन पूरा करने पर भी अधूरी ही रह जाती हैं। इन अथाह जरूरतों के लघु अंश रोजमर्रा के सामान की खरीदारी में अधिकांश रुकते-रुकते घरों को लौट रहे थे। परन्तु गणपत इन अथाह जरूरतों में कभी अधिक नहीं उलझा था। उसका छोटा सा निजी संसार था और घर गृहस्थ अलग। आज का दिन उसके लिए विशेष जिम्मेदारी या कहें संयम का था। सुबह ही उसकी पत्नी दुर्गा ने उसे कसम खिलाकर भेजा था कि वह दफ्तर से सीधा घर आएगा। इसी वचन को निभाने को गणपत ने आज अपने दोस्तों के बुलावे को ना कह दिया और स्वयं को समझाता सम्भालता घर की ओर चल पड़ा।

जिस रास्ते गणपत अपने घर की ओर बढ़ रहा था उसी रास्ते श्यामा अपने बेटे पवन के साथ अपनी बीमार मौसी को देखकर लौट रही थी। पवन

की उम्र बालपन को पार कर उस अवस्था में थी जब लड़का खुद को बड़ा हुआ महसूस करने लगता है और माँ उसे बड़ा हुआ मानने को तैयार ही नहीं होती है। इसीसे हर किशोर की अनिवार्यता हो जाती है कि सबसे पहले वह माँ को ही अपने बड़े होने का एहसास कराए। इस एहसास कराने के प्रयास में वह तेज बोलना, चलना, कुछ बनने, करने का जज्बा दिखाना, अपने ज्ञान का प्रदर्शन करना, माँ को सलाह और संरक्षण देने जैसा व्यवहार अनजाने ही करने लगता है। पवन भी इसी स्वभाविक व्यवहार से कभी श्यामा से चार छः कदम आगे तो कभी पीछे चल रहा था। वह कभी मोबाइल पर बातें करता बढ़ता और बीच सड़क पर चलने लगता। कभी मोबाइल जेब में रख श्यामा को तेज चलने को कहता। श्यामा के दुकानों पर रुकने, सामान के मोल-भाव करने से झूंझलाकर खुद उससे दस-बीस कदम आगे निकल जाता।

गणपत भी अपने पुराने अधफटे बैग को बगल में दबाए घर की ओर बढ़ रहा था। खुराक की कमी और पीने की आदत ने उसे समय से पहले ही बूढ़ा बना दिया था। कमर को सीधा रखने का प्रयास करने पर भी वह अधिक देर सीधी नहीं रह पाती थी। गेहुवाँ रंग पक्के रंग में बदल चुका था और चेहरा स्थाई रूप से मुरझाया सा रहने लगा था। इस पर उसे उसके विचार से आज अपनी शाम की खुराक भी नहीं मिली थी सो कदम भी बहके-बहके से पड़ रहे थे। श्यामा, पवन और गणपत काफी देर तक कभी साथ तो कभी आगे पीछे चलते रहे। गणपत ने महसूस किया—''लड़का कुछ शरारती लगता है। बीच-बीच में मोबाइल पर बातें करता है। कहीं इसकी नजर मेरे बैग पर तो नहीं?'' यह ख्याल आते ही गणपत ने बैग को हाथ में कसकर पकड़ लिया। कुछ देर बाद दूसरे हाथ में लिया। इतने पर भी वह सन्तुष्ट न हुआ, बैग को घुमाकर उसकी तनी को कलाई पर लपटने की कोशिश करने लगा। बैग आवश्यकता से कुछ अधिक ही घूम गया। ठीक इसी समय पवन उसके बगल से निकला और बैग उससे टकराते-टकराते बचा। पवन तेजी से आगे निकल गया। गणपत ने उसे शंकित निगाहों से देखा और बैग को मतबूती से पकड़ लिया।

श्यामा ने गणपत को बैग घुमाते और पवन से टकराते-टकराते बच जाने को देखा तो उसका माँ का व्यक्तित्त्व जाग गया। अब उसे पवन एकदम छोटा बालक नजर आने लगा। उसने पवन के सारे बड़प्पन को एक किनारे करते हुए उसे डाँट लगाते हुए कहा—''तुम आगे पीछे क्यों भाग रहे हो। कुछ भी देख कर नहीं चल रहे हो। मेरे साथ चलो।''

पवन हल्के विरोध के बावजूद कुछ देर के लिए श्यामा के साथ चलने लगा। तभी उसके फोन की घंटी बजी और बातें करते-करते पवन फिर श्यामा से कुछ कदम पीछे रह गया। गणपत अब उनसे दूरी बनाकर पीछे चल रहा था। लड़के के फिर पीछे आ जाने और फोन पर बातों का बहाना कर बहुत धीमा चलते हुए गणपत तक पहुँचने की कोशिश ने गणपत को परेशान कर दिया। यद्यपि रिक्शे के बीस रुपए खर्च करना उसके लिए किसी विलासिता से कम नहीं था। यदि वह बीस रुपए का कोई खाने का सामान घर ले जाता तो बालकों के चेहरे खिल जाते, बूढ़ी माँ घंटो असीसती। पर इस समय बालकों, बूढ़ों से अधिक उसे दुर्गा का ख्याल आया। यदि बैग सुरक्षित घर न पहुँचा तो वह पहले हंगामा कर घर सिर पर उठा लेगी, फिर रोएगी और महीने भर राशन की जोड़ तोड़ में घुटती रहेगी। यही सब विचार कर गणपत ने एक रिक्शा रोका और बगैर पैसा तय किए ही बैठ गया। रिक्शे में बैठने के बाद उसने घर का पता बताया और रिक्शे वाले से बोला—''जितना जल्दी हो सके पहुँचा दो भाई।''

रिक्शे में बैठकर गणपत ने कुछ राहत की साँस ली। अब वह अपने बैग को पहले से अधिक बेहतर तरीके से सम्भाल सकता था। उसने बैग को दोनों घुटनों के बीच कसकर पकड़ लिया और कंधे से अंगोछा उतार कर उससे बैग को ढक दिया। अधिक तसल्ली के लिए उसने अपना दायां हाथ बैग पर मजबूती से रख दिया और बाएँ से रिक्शे के किनारे को पकड़ लिया। गणपत के माथे से पसीना बह रहा था परन्तु उसने पसीना पोछने की कोशिश नहीं की। उसका पूरा ध्यान और ताकत बैग की सुरक्षा में लगी थी। अब तक उसे पूरा यकीन हो गया था कि लड़का किसी अराजक तत्व से जुड़ा है। महीने के पहले सप्ताह में ही तो छिनैती और लूट मार की घटनाएं अधिक होती है। हो न हो लड़का मोबाइल पर अपने किसी साथी को उसका हुलिया समझा रहा था। मिनट भर ही तो लगती है बगल से तेज मोटर साइकिल निकाल कर ले जाते हुए झपट्टा मारने में। हे प्रभु बस किसी तरह घर पहुँचकर बैग दुर्गा को सौंप दूँ। फिर वह जाने और उसका काम जाने। आगे कभी बैग में वेतन रखकर चलने की गलती नहीं करनी है। पर तभी उसे ख्याल आया-चार पाँच महीने पहले उसका एक साथी जेब में वेतन रख कर फैक्ट्री के गेट से कुछ दूर ही चला था कि उसकी जेब कट गई थी। उसको सुनकर ही दुर्गा ने उसे अपने एक साहब के घर से यह पुराना बैग ला दिया था। इसी में वह हर दिन अपना खाने का डिब्बा रखकर लाता था और उसी डिब्बे में महीने में एक दिन

वेतन रखकर ले जाता था। दुर्गा इस दिन का महीने भर इंतजार करती थी चार छः दिन तक डिब्बा खोलकर उसकी ओर प्रश्नसूचक निगाहों से देखने के बाद दुर्गा का खुशी भरा यह दिन आता था।

गणपत की गली आ गई। उसने रिक्शे वाले को रोक दिया। चौकन्ने हिरन की तरह चारों दिशाओं में नजरें दौड़ाई। जब उसे विश्वास हो गया कि गली के पास कोई अनजान सन्देहास्पद नहीं है तो वह बैग को अंगोछे में लपटते हुए आहिस्ता से रिक्शे से उतरा फिर दाएँ हाथ से बैग को छाती के सामने पूरी सावधानी और मजबूती से साधकर बाएँ हाथ से कमीज की जेब से एक मुड़ा दस का नोट और चिल्लर रिक्शे वाले के हाथ पर गिनवा दिए। इसके बाद गणपत तेज कदमों से गली में बढ़ गया। वह लगभग सुरक्षित स्थान पर पहुँच गया था।

इधर श्यामा ने जबसे गणपत को पवन की ओर बैग घुमाते हुए देख लिया था। वह गणपत पर बराबर नजर बनाए थी। भले ही गणपत श्यामा और पवन से पीछे चल रहा था पर श्यामा कभी फल कभी सब्जी के मोल भाव या कभी पवन को डपटने के बहाने गणपत की हरकतों की निगरानी कर रही थी। गणपत को रिक्शा तय करने के लिए बहके-बहके कदमों से दो चार कदम दाएँ-बांए चलते हुए वह देख रही। इसी बीच पवन भी उससे पिछड़ गया तो वह मुड़ कर खड़ी हो गई और घूरती सी निगाहों से गणपत को देखने लगी। गणपत के एक रिक्शे में बैठ जाने ने उसे कुछ राहत दी थी। वह रिक्शे को दूर तक जाते हुए देखती रही और फिर आसमान में हल्का सा हाथ उठाकर गहरी साँस लेते हुए प्रभु को धन्यवाद दिया।

''जल्दी चलो। खड़ी क्यों हो गई?'' कहता हुआ पवन उसके बगल से तेजी से निकल गया।

श्यामा भी तेज कदमों से पवन के पीछे चलने लगी। अब उसे पवन की अधिक चिंता नहीं थी। उसका ध्यान गणपत के हुलिए पर केन्द्रित हो गया—''कैसा अजीब इन्सान था? न जाने क्यों आधा घंटे से उनका पीछा कर रहा था। धूर्तता भरी सारी हरकते। पता ही न चले कदम किधर बढ़ाएगा और उस पर उसके हाथ का वह बैग। न जाने क्या था उसमें। मेरे बच्चे की ओर क्यों घुमाया था बैग? कुछ बेहोश करने की दवा हो सकती है। आज मैं साथ न होती तो निश्चय ही यह मेरे बेटे का अपहरण कर लेता। क्या देर लगती है हल्का सा बेहोश करो और साथी सवारी लेकर आस-पास मण्डरा रहे हों, उठा

ले जाओ।'' इसी विचार के साथ श्यामा ने आते जाते कुछ तिपहिया वाहनों और कारों पर नजर दौड़ाई। वह आहिस्ता से बुदबुदाई—''किसी के माथे पर तो नहीं लिखा है। इनमें से कोई भी उसका साथी हो सकता है। अच्छे कपड़े पहने, मोबाइल लिए बालकों को ही पैसे वालों का समझकर उठा लिया जाता है। फिर ऊँची फिरौती की माँग। न दो तो बालक को ही मार डालें।'' इतना सब एक साथ सोचते और तेज चलते हुए श्यामा की साँस कुछ तेज चलने लगी। खून का दौरा बढ़ा तो विचारों में और उबाल आया। अब उसे वह अनजान अधबूढ़ा आतंक वादियों का साथी नजर आने लगा—''न जाने बैग में क्या भरा था। बम भी तो हो सकता है। इसी इंतजार में हो दस बीस इकट्ठे दीखें और फेंक दे। हम दोनों पर तो बराबर निगाह रख ही रहा था।''

पवन और श्यामा मुख्य सड़क से कालोनी की और जाने वाली सड़क पर मुड़ गए। जरा देर बाद पवन श्यामा से यह कहता हुआ लगभग मैदान की ओर दौड़ने लगा—''मम्मी आप घर जाओ। मैं खेलने जा रहा हूँ।'' पवन गणपत और श्यामा की मनोदशा से एकदम अनजान था। उसका खेल का समय हो गया था। साथियों ने मैदान में विकिट जमा दिए थे। दूसरी पार्टी की बैटिंग चल रही थी। पवन की अपने साथी से मोबाइल पर कुछ ही मिनट में मैदान में पहुँचने की बात हो चुकी थी। शीघ्र ही मैदान में पहुँचकर पवन ने मैदान के इसी सिरे से जिधर से वे लौट रहे थे अपना मोर्चा सम्भाल लिया और हाथ उठाकर व जोर से चिल्लाकर अपनी पार्टी को अपनी उपस्थिति की जानकारी दे दी।

श्यामा भी अपनी कालोनी में प्रवेश कर चुकी थी। यहाँ अपना मैदान था जिसमें उसका बेटा अपने साथियों के साथ सुरक्षित खेल सकता था। सामने ही तीसरी मंजिल पर अपना घर नजर आ रहा था। सामने बालकनी में फैले कपड़े इस घर को श्यामा का अपना होने का एहसास करा रहे थे।

अपने ब्लॉक के करीब सात आठ महिलाएँ खड़ी बातें कर रही थीं। ये सब जाने पहचाने चेहरे थे। जो अपनी ही कालोनी के लोग थे। सभी से नमस्कार करते हुए श्यामा आगे बढ़ गई। वह धीरे-धीरे सीढ़ियाँ चढ़ने लगी। अब वह सुरक्षित थी।

दीक्षांत

जेठ की तपी दुपहरियों से झुलसे बाग बगीचे, खेत मैदान और त्रस्त पशु पक्षियों, इन्सानों या कहें प्राणीमात्र पर जब बरसाती छींटे पड़ते हैं तो उनका रोम-रोम पुलकित हो उठता है। हर मन से एक नई रागनी निकलती है जो साहित्य की विविध विधाओं में आदि काल से आज तक हुए वर्षा के चित्रण को अधूरा सा दर्शा जाती है। हर प्राणी अपने-अपने स्वर में वर्षा का बखान करता हुआ उसका भरपूर आनंद लेता है। परन्तु यही सुहानी बरसात जाते-जाते चारों तरफ इतनी गंदगी बिखेर जाती है कि जिधर निकलो मन जुगुप्सा से भर जाता है। फिर वर्षा गई नहीं कि गली मौहल्ले वालों और पड़ौसियों में अपने-अपने इलाके और घरों को साफ करने की होड़ सी लग जाती है। धर्मकारों ने तो इसके लिए एक बड़े त्यौहार का ही नियोजन कर डाला। जो जितनी घर द्वार की सफाई करे उसने त्यौहार उतना ही उत्साह से मनाया। यह एक मान्यता ही बन गई है।

बरसाती गंदगी हटाने का सफाई का ऐसा ही दौर चल रहा था। वर्मा जी इस वर्ष अधिक पैसा खर्चने के मूड में नहीं थे। अतः उन्होंने दो दिन के लिए एक लेबर बुलवा लिया। घर के आस-पास घास साफ करने और बाहरी दीवारों को झाड़ने का काम उसे बताकर दफ्तर चले गए।

भूरा चुस्त और मेहनती जवान था। उसने दो दिन में उम्मीद से अधिक काम कर दिखाया तो वर्मा जी ने उसके काम को और बढ़ा दिया। थोड़ा पेंट और ब्रश मंगा दिया गया और भूरा को मकान के बाहरी हिस्से का पेंट करने का काम दे दिया गया। भूरा खुश हो गया। वह एक सप्ताह से खाली घूम रहा था। घर में त्यौहार कैसे मनेगा? उसे यही चिंता सता रही थी। अब सप्ताह भर का काम मिल जाने से उसकी समस्या सुलझ गई थी।

यद्यपि भूरा पेंटर नहीं था। पर साइट पर कभी जरूरत पड़ने पर थोड़ा बहुत काम कर लेता था। इसीलिए वह विशेष सतर्कता बरतते हुए पूरी लगन से काम कर रहा था। वर्मा जी शाम को आकर भूरा का काम जाँचते। कहीं कुछ चूक होने पर समझाते और अच्छा दिखने पर तारीफ करते। इससे भूरा का काम में मन लग गया। एक दिन वह बोला–''अंकल जी वैसे हम इस काम को अधिक नहीं जानते हैं। पर आप हिम्मत बंधाएँ है तो त्यौहार से पहले निबटा लेंगे।''

''तुम किस काम को अच्छे से जानते हो?'' वर्मा जी ने प्रश्न किया।

''राजगीर का काम सीख रहे हैं। काफी आ भी गया है। हमारा मिस्त्री एक महीना दूसरे शहर में काम करने गया है। लौटेगा तो हम भी उसके साथ काम शुरू कर देंगे।''

''कितना काम सीख लिया है?''

''काम तो सभी सीख लिया है। बस अब काम शुरू करना है। थोड़ा बहुत जरूरत पड़ी तो मिस्त्री से सलाह लेते रहेंगे।''

''जुड़ाई, पल्सतर, स्लैब सब?''

''हाँ जी। बस स्लैब में अभी अकेले नहीं कर पाएँगे।''

वर्मा जी यूँ ही कभी-कभी भूरा से बातें कर लिया करते। कभी उसके घर परिवार के बारे में, कभी पढ़ाई-लिखाई के बारे में और कभी काम के बारे में। भूरा खूब बढ़-चढ़ कर उनके सवालों का जवाब देता। भूरा को इस तरह बात किया जाना भी अपनी तारीफ का हिस्सा जान पड़ता।

भूरा का काम समाप्ति पर आ गया था। एक दिन का काम शेष था। उसके बाद भूरा का पूरा हिसाब देकर छुट्टी की जानी थी। शाम को भूरा को पैसे देते हुए वर्मा जी ने उसे दो सौ रुपए अधिक देते हुए कहा–''बाजार से कन्नी, वसूली लेते जाना और सुबह दो बोरी सीमेंट और एक ठेली बालू लदवा लाना। ऊपर कुछ ईंटे बची है। मार्केट की ओर की दिवार को चार-चार रद्दे उठा दो।''

''नहीं साहेब हम अभी नहीं कर पाएँगे।'' भूरा ने नोट लेने से मना करते हुए कहा।

''क्यों, तुम तो कह रहे थे तुमने पूरा काम सीख लिया है।''

''सीखा है साहेब पर अभी कर नहीं सकते।''

''क्यों नहीं कर सकते?'' वर्मा जी ने आश्चर्य से कहा।

''अभी जब तक हमारा मिस्त्री नहीं आ जाता हम राजगीर का काम नहीं कर सकते। ना ही औजार खरीद सकते हैं।''

‘‘उसमें मिस्त्री की सलाह की जरूरत नहीं पड़ेगी। केवल सीधे-सीधे चार रद्दे लगाने और प्लस्तर करना है।’’

‘‘नहीं ये बात नहीं है अंकल जी। काम तो हम से पूरा आता है। मगर कर नहीं सकते।’’

वर्मा जी को हल्की हँसी आ गई। बोले—‘‘क्या कह रहा है भूरा। काम आता है। कर नहीं सकते। क्या मतलब है इसका?’’

‘‘ऐसा है जी कि जब हमारा मिस्त्री आ जाएगा तो हम उसे कुछ देंगे। तब वह हमें औजार देगा। तभी हम अपने से काम कर सकते हैं।’’

‘‘क्या दोगे तुम उसे?’’

‘‘यही कुछ कपड़ा, बर्तन और मिठाई। बहुत से तो दारू पीते हैं। तो बोतल भी देनी पड़ती है। पर हमारा मिस्त्री नहीं पीता। तो उसे खाने-पीने का और सामान देना रहेगा। बगैर अपने मिस्त्री को यह सब दिए काम नहीं करेंगे साहेब। अब जिसने हुनर सिखाया है, दस सालों से साथ काम पर लगाए है उसे भेंट पूजा दिए बगैर कैसे काम कर सकते हैं? हमार काम फलि ना।’’

भूरा के जाने को देर हो रही थी। वह साहेब को नमस्ते कर साइकिल लेकर चला गया। वर्मा जी उसे दूर तक जाता हुआ देखते रहे। वे उच्च शिक्षा संस्थानों में गुरू शिष्य संबंधों पर विचार रहे थे।

गनीमत है

काव्या की शादी क्या हुई कि अपना घर शहर सब कुछ जैसे पराया हो गया। विगत छः सालों में वह कितना आ पाई है यहाँ। कभी एक दिन तो कभी दो दिन और कभी-कभी तो मात्र कुछ घंटे ही। यह आना भी कोई आना हुआ। अपने शहर में आकर भी किसी से मिल न पाओ। फोन पर बात करने भर से ही संतोष करना पड़ता है। फोन तो वह ससुराल से भी करती रहती है। फर्क ही क्या हुआ? पर इस बार उसने अपनी सासु माँ और पतिदेव दोनों को साफ समझा दिया है कि वह हफ्ता दस दिन से पहले लौटने वाली नहीं है। इस बार अच्छे से जाकर सबसे मिलेगी। उसे इसकी स्वीकृति भी मिल गई है। मौसम आज ठीक है। धूप की तपन को कम करते बादलों के आसमान में तैरते टुकड़े और कुछ नम हुई हवा निकल पड़ने को काफी है। इरादा पक्का होते ही काव्या ने सुबह छोटी बहन कविता से आज स्कूटी छोड़ जाने को कहा। कविता ने तुरंत प्रतिकार किया—''क्या दीदी आप भी। अभी भी स्कूटी पर चलोगी।''

''बेशक।''

''नहीं मेरे कहने का मतलब है कि अब आपकी कुछ इज्जत है। फिर स्कूटी पर चलना आपके लिए ठीक भी नहीं है। ट्रैफिक बहुत बढ़ गया है। आपने कब से स्कूटी नहीं चलाई है।''

''नहीं चलाई है तो क्या चलाना भूल गई हूँ। मैं तुमसे अधिक सालों इन सड़को और इस शहर में घूमी हूँ। मुझे ट्रैफिक से मत डराओ।''

पापा दोनों की नोंक-झोंक सुनकर बाहर आ गए और दोनों का समझौता कराते हुए बोले—''अरे यह तुम्हें डरा नहीं रही है वरन् अपनी स्कूटी बचाना

चाह रही है। तुम स्कूटी के ही पीछे क्यों हो? गाड़ी ले जाओ। अभी ड्राइवर आता होगा। तब तक तैयारी करो।''

काव्या ने गर्दन को जोर से ना में हिलाते हुए कहा–''नहीं। गाड़ी आप ही रखिए और कविता को लेते जाइए। मुझे तो आज स्कूटी से ही चलना है।''

मम्मी-पापा दोनों हँस पड़े। पापा बोले–''बेटा कविता आज तुम स्कूटी छोड़ ही दो। मेरे साथ निकल चलो। अब किसी को लाभ की बात समझ में नहीं आती है तो क्या किया जाय।''

कविता के पास पापा की बात मान लेने के अलावा और कोई रास्ता नहीं था। हल्के विरोध के बाद वह तैयार होने चली गई। काव्या भी तैयार होने लगी। माँ ने टोका–''अकेली-अकेली तैयार हो रही हो। बच्चों को तैयार नहीं करोगी?''

''ऊँहूँ, बिलकुल नहीं। आज इन्हें आप ही सम्भालिए। ये मुझे कहीं न ठीक से बैठने देंगे ना बातें करने देंगे।''

बच्चों ने भी मम्मी की हाँ में हाँ मिलाई–''हाँ-हाँ आप ही जाओ। हम वैसे भी इतने मजेदार खेल छोड़कर आपके साथ जाने वाले नहीं हैं। बस लौटते में हमारे लिए एक बड़ी आइस्क्रीम लेती आना।'' काव्या की बेटी ने उसके थोड़ा करीब आते हुए धीरे से कहा–''और मेरे लिए बड़ी वाली केक लाना।''

काव्या ने सभी की शर्तें मान ली। खाना खाया और निकल पड़ी अपने पुराने रास्तों पर।

गली पार हुई तो काव्या को ख्याल आया कि उसने वरीयता क्रम तो तय किया ही नहीं। बहुत जनों से मिलना है लेकिन पहले कहाँ जाना है। अभी तक यह निश्चित ही नहीं है। एक पल को उसने सोचा कि रुककर दो चार घर फोन करें। कौन मिल पायगा कौन नहीं। यह निश्चय कर ले। पर तुरंत उसे ख्याल आया कि पास वालों से तो थोड़ा देर से भी मिला जा सकता है पहले दूरी वालों को देखा जाय। इस क्रम में उसकी सहेली शायरा पहले नम्बर पर थी। शहर के एक छोर पर उसकी ससुराल थी और दूसरे पर मयका। शादी से पहले भी जब काव्या को शायरा से मिलना होता था तो करीब उतनी ही दूरी तय करनी पड़ती थी जितनी अब उसकी ससुराल के लिए तय करनी थी। बस दिशा का अंतर आया था। काव्या ने शायरा की ससुराल की ओर स्कूटी मोड़ दी।

काव्या और शायरा की दोस्ती बहुत पुरानी थी। दोनों ने छठी से एम.ए. तक की पढ़ाई साथ-साथ की थी। काव्या का घर कॉलेज के पास था। इसीलिए बहुत बार खाली समय रहने या पढ़ाई सबंधी समस्या सुलझाने के लिए शायरा

काव्या के साथ उसके घर आ जाती थी। दोस्ती बढ़ी तो शायरा के घर वालों ने भी काव्या और उसके घर वालों से मिलने की इच्छा जाहिर की। आरंभ में काव्या अपनी मम्मी व भाई के साथ शायरा के यहाँ गई थी। आहिस्ता-आहिस्ता दोनों परिवारों में विश्वास जमा तो कभी-कभी काव्या को अकेले भी शायरा के यहाँ जाने की अनुमति मिल गई थी। उन दोनों की दोस्ती में कभी धर्म या धन आड़े नहीं आया। शायरा के परिवार की हैसियत काव्या के घर से कई गुना अधिक थी। पर काव्या के घर में सभी के पढ़े लिखे और सलीकेदार होने की वजह से शायरा के घर के लोग उनकी इज्जत करते थे। विशेष रूप से काव्या की मम्मी से शायरा के घर की महिलाएँ काफी प्रभावित थी। शायरा भी उनसे कुछ अच्छा सीख लेंगी। इसी उम्मीद में वे शायरा और काव्या की दोस्ती बनी रहे इसके लिए सहयोग बनाए रहती थीं।

शायरा की शादी के बाद भी यह आना जाना बना रहा। शायरा की शादी तो दूसरे शहर में हुई थी। पर उसके पति इसी शहर में एक दफ्तर में काम करते थे। उन्होंने काव्या के परिवार से मेल-जोल में कभी ऐतराज नहीं किया। बस काव्या ही दूर थी। कम समय के लिए आती थी। इसीसे विगत चार साल से शायरा से मिल नहीं पाई थी। वैसे इसकी कमी दोनों सहेलियाँ फोन और फेसबुक से पूरी कर लेती थी।

विचारों में खोई काव्या कहीं सपाट तो कहीं उखड़ी सड़क वाले ऊबड़-खाबड़ रास्तों को पार करती हुई तेजी से बढ़ रही थी। शहर में बहुत से नए चौराहे बन गए थे। कहीं सड़कें चौड़ी हो गई थी और कहीं की चौड़ी सड़कें अतिक्रमण की मार से संकरी हो गई थीं। काव्या देख रही थी विगत वर्षों में बहुत कुछ बदल गया था। लगभग आधा घंटे बाद काव्या शायरा के इलाके में पहुँच गई। यहाँ भी बहुत कुछ बदल गया था। शायरा जिस दुमंजला घर में रहती थी। पहले वह दूर से नजर आता था। काव्या देख रही थी अब यहाँ भी बहुत से दुमंजला तिमंजला घर बन गए हैं। काव्या धीमी गति से सतर्कतापूर्वक शायरा के घर को तलाशती बढ़ने लगी। काव्या की याददाश्त अच्छी थी। इसी से बगैर किसी कठिनाई के शायरा के घर पहुँच गई। शायरा सुबह के भोजन पानी से निबट कर घर समेट रही थी। बेटा स्कूल और पति दफ्तर जा चुके थे। काव्या ने धीरे से दरवाजा खटखटाया। शायरा–''कौन है?'' कहती हुई दरवाजे के करीब पहुँच गई।

काव्या ने धीरे से कहा–''काव्या।''

शायरा दरवाजा खोलकर विस्मित सी काव्या को देख रही थी–''कब आई मैडम?'' कहते हुए शायरा ने काव्या का हाथ पकड़ लिया।

''यूँ समझो कि अभी'' काव्या ने कहा। दोनो सखियाँ खिलखिलाती हुई कमरे में दाखिल हुई और सोफे पर बैठ गई।

घर, परिवार, रिश्तेदारी और अतीत की ढेरों बातें करते हुए दो घंटे मानो जरा देर में बीत गए। इस बीच उन्होंने एक बार पानी और चाय पिया। शायरा ने बेतकुल्फी से बूझा–''तुम दोपहर में क्या खाना पसंद करोगी काव्या। पकवान या सादा खाना?''

''कुछ भी नहीं। मैं शाम तक का खा कर निकली हूँ। बस अब चलने की इजाजत दो।'' काव्या बोली।

''बेटा स्कूल से आने वाला है। उसके लिए मुझे कुछ तो बनाना ही है। आप भी खा लेना। मैं कुछ अलग नहीं करूँगी।'' शायरा ने अपनेपन से कहा।

''बेटे के स्वाद का पूड़ी पकवान सब बनाओ। मेरे लिए नहीं।''

''हाँ उसके लिए हर दिन सोचना पड़ता है। खाने में बहुत परेशान करता है।''

''परेशान तो करेगा ही। अकेला जो है। तुमको कितना समझाया है। उसके लिए एक भाई बहन ले आओ। देखना बगैर कहे खाने लगेगा। हमने तो तीन साल में अपनी गृहस्थ पूरी कर ली थी। दो बच्चों की ही सोच रहे थे। भगवान ने तीन दे दिए। छोटे बेटा बेटी जुड़वाँ हैं। अब तीनों लड़ते झगड़ते हैं। उलझन होती है। पर खाना खिलाने की कोई पेरशानी नहीं। छीन झपट कर और डटकर खाते हैं।'' काव्या ने शायरा को समझाने के लिहाज से कहा।

शायरा ने पानी का गिलास काव्या के सामने लाकर रख दिया पर उसकी बात का कोई जवाब न दिया। काव्या ने फिर टोका–''अब चुप क्यों हो। यही ठीक समय है। बच्चा बड़ा हो जाय तो उसे दूसरा बच्चा बर्दाश्त करना बड़ा मुश्किल होता है। अब और देर मत करना।''

शायरा का चेहरा उतर गया। आहिस्ता से बोली–''पर अब संभव नहीं है काव्या। मेरे बेटे को जीवन भर अकेले ही रहना होगा।''

''क्या कह रही हो तुम?''

''जो हकीकत है वही।''

''क्यों, ऐसी क्या मुश्किल हो गई है?''

शायरा काव्या के एकदम करीब आकर बैठ गई। उसने दो साल पहले अपने साथ हुई घटना को बहुत धीमी आवाज में काव्या को सुनाया–''सर्दी

खत्म होने वाली थी। मेरा तीसरा महीना पूरा हो गया था। अचानक एक दिन पेट में तेज दर्द महसूस हुआ। बच्चा स्कूल और शौहर दफ्तर जा चुके थे। मैं कुछ देर बर्दाश्त करती रही। फिर ख्याल आया कि कोई गड़बड़ न हो जाय। इस ख्याल ने मुझे डरा दिया। पति को फोन किया तो वे बोले–तुम नर्सिंग होम जाकर चौक-अप करा लो। जरूरी लगे तो मुझे फोन कर देना। मैं पहुँच जाऊँगा।'' मैने तुरंत घर बंद किया और आटो लेकर नर्सिंग होम पहुँच गई। जगह और लोग परिचित थे। मेरे बेटे का जन्म वहीं हुआ था। एक के बाद एक डॉक्टर ने मेरे कई टेस्ट करा दिए। मेरे बार-बार पूंछने पर भी कोई बीमारी या कारण नहीं बता रहा था। मुझे दर्द निवारक इंजैक्शन लगा दिया गया था। जिससे मैं एकदम ठीक महसूस कर रही थी। मैं उठकर चलने ही वाली थी कि नर्स ने मुझे कहा–''मैडम आपको बड़े डॉक्टर बुला रहे हैं।'' मैं हैरान थी कि अब क्या समस्या है? मैं डॉक्टर के कमरे में दाखिल हुई। उन्होंने मुझे कुछ इस तरह देखा कि मैं कोई बहुत मुश्किल में हूँ। वे मुझे बैठने का इशारा करते हुए गंभीरता से बोले–''आपके साथ कोई आया है?''

''नहीं।''

''कोई बात नहीं। बाद में बुला लीजिएगा। आपको भर्ती होना पड़ेगा।''

''पर क्यों? मैं तो अब ठीक हूँ।''

''यह आप कह रही हैं। आपकी रिपोर्ट नहीं।''

''क्या है रिपोर्ट में।''

''आपको बताना उचित नहीं होगा। तुरंत इलाज की आवश्यकता है। आप भर्ती हो जाय।''

''मैं अपने पति को फोन कर सकती हूँ ?''

''हाँ जरूर कर दीजिए। कहिए वे कुछ पैसों का इंतजाम कर चार पाँच बजे तक आ जाय। जरूरत पड़ सकती है।''

भर्ती के कुछ घंटो बाद ही चैक-अप के नाम पर मुझे आपरेशन थिएटर में ले जाया गया। मैं तुम्हारे जीजा जी को फोन कर चुकी थी। पर मुझे अपनी चिंता से अधिक बच्चे की फिकर थी। अतः मैंने कहा कि वे पहले घर जाय। बच्चे के खाने का इंतजाम कर उसे पड़ौस वाली भाभी जी के पास छोड़कर यहाँ आएँ। इस सबके साथ पैसे की भी व्यवस्था करनी थी। इसी में इन्हें नर्सिंग होम पहुँचते पाँच बज गए। तब तक मेरा आपरेशन किया जा चुका था। डॉक्टर ने इन्फैक्शन को कारण बताया और उसके लिए पूरा यूट्रस रिमूव

करना जरूरी था। यह भी समझा दिया। मेरे शौहर डॉक्टर से बहस कर रहे थे और डॉक्टर और उसके सहयोगी इन्फैक्शन के फैलने को बचाने के लिए ऐसा किया जाना जायज ठहरा रहे थे।

''तुमने अंकल आण्टी को खबर क्यों नहीं की?'' काफी देर से शायरा की बात सुन रही काव्या ने तर्क दिया।

मुझे इस चीज का तनिक भी एहसास नहीं था कि मेरा आपरेशन होने वाला है। मैं इसे केवल सामान्य चौक-अप समझ रही थी।

''बाद में सभी लोग आ गए होंगे। तुम्हारे मयके और ससुराल वाले। फिर उस डॉक्टर और नर्सिंग होम पर केस क्यों नहीं किया?''

शायरा ने गहरी साँस लेते हुए गर्दन ना में हिलाई—''नहीं कोई नहीं आया काव्या। तुम्हारे जीजा जी ने किसी को खबर ही नहीं लगने दी। बस पूरा चैक-अप एक बार दूसरी जगह कराया जिसमें कोई समस्या नहीं थी। वह भी मेरे भावी स्वास्थ्य को लेकर। वे इस घटना का प्रचार नहीं करना चाहते थे। बहुत दिनों बाद मैंने केवल अम्मी को बताया। बाकी कोई नहीं जानता। गनीमत है शौहर अच्छे हैं। वरना तुम तो जानती हो हमारे यहाँ इतनी बात पर...।''

शायरा कुछ कहते-कहते रुक गई पर काव्या पूरी बात समझ गई। दोनों कुछ देर शांत रही। काव्या ने जग से गिलास में पानी उड़ेलते हुए शायरा को गौर से देखा। वह अतीत के किसी बुरे ख्वाब में खोई थी। पानी पीकर उठते हुए काव्या ने शायरा से कहा—''अपना और बच्चे का ख्याल रखना शायरा। अब मैं चलती हूँ।''

उदार

परिवार नियोजन की योजनाओं ने मध्यम वर्ग को छोटे परिवारों के रूप में थोड़ी राहत क्या दी कि बच्चों की परवरिश ही टेढ़ी खीर हो गई। इसका भी अहम् हिस्सा बच्चों की शिक्षा के व्यय और व्यस्तता ने माता-पिता की सारी सोच और सामाजिक परिवेश को ही बदल दिया। पहले महानगरों में और अब छोटे कस्बों तक में बच्चों के स्कूल में प्रवेश से कक्षा पास होने तक का समय इतना संजीदा हो गया कि माता-पिता का हर दिन बालकों के शैक्षिक कार्यक्रमों से तय होने लगा। बालक का स्कूल प्रवेश न हुआ मानो माता-पिता का दाखिला हो गया। बालक परीक्षा दे और माता-पिता पाठ रटे यह आम रिवाज चल निकला। आहिस्ता-आहिस्ता मौहल्ले पड़ौस, रिश्तेदारी और मित्र वर्गों में बालको की शिक्षा की बढ़ती प्रतियोगिता ने लोगो को आपसी मेल-जोल, दूसरे की प्रशंशा करना, अपने बच्चे की सहज क्षमता को आँक पाना आदि बहुत से संवेदनात्मक मुद्दों पर रूढ़ बना दिया। अब यह शायद अनिवार्यता ही बन गई है। इस परिश्रम के परिणाम तो कुछ हद तक सुखद मिल रहे हैं। परन्तु यह पूरी प्रक्रिया इतनी तनावग्रस्त हो चली है कि बच्चों की परीक्षा खत्म होते ही बच्चे माता-पिता सब उससे कुछ समय के लिए दूर भाग जाना चाहते हैं। पर्यटन की बढ़ती सुविधाएँ इस पलायन को और प्रोत्साहित कर रही है। माता-पिता बच्चे इसी बढ़ती प्रवृत्ति के कारण पर्यटन पैकेज पर नजर बनाए रखते हैं और मौका पाते ही अपने बजट व छुट्टियों के हिसाब से निकल पड़ते हैं।

उस दिन का माहौल भी खुशनुमा था। एक दिन पहले ही बच्चों की वार्षिक परीक्षा समाप्त हुई थी। साल भर पस्त पाँच छः हम उम्रों के परिवार ने एक

छोटी सी पिकनिक का आयोजन किया था। घूमने खाने के बाद थोड़े विश्राम के ख्याल से वे एक पार्क में बैठ गए। शीघ्र ही बच्चे अपनी टीम बनाकर भाग दौड़ के खेल में व्यस्त हो गए। बड़े बारी-बारी से अपनी-अपनी रुचि अनुसार कोई गाना, कोई किस्सा, तो कोई चुटकुला सुनाकर सबका मनोरंजन करने लगे। परन्तु कुछ देर बाद ही बातों का सिलसिला चल निकला। जो विभिन्न मुद्दों से होता हुआ एक खास चर्चा पर आकर ठहर गया और इस मुद्दे पर शीघ्र ही गर्मागर्म बहस छिड़ गई। अभी तक का एक जुट दल दो गुट्टों में बँट गया-पुरुष और महिला वर्ग। बहस की जड़ में वही आए दिन कि साल दर साल चलती समस्या थी कि परिवार में किस तरह काम का नियोजन किया जाय और बच्चों को अधिकाधिक समय दिया जाय। इसमें पुरुष वर्ग से तमाम तर्क उदाहरण और दलीलें आ रहीं थीं कि हमारी अब कोई निजी दिनचर्या नहीं है। हम हर समय बच्चों के कार्य को तैयार रहते हैं। पर महिला वर्ग इतने से संतुष्ट नहीं था। उधर से अभी भी असंख्य घरेलू कार्यों की फहरिश्त पेश की जा रही थी जिन पर पुरुष ध्यान नहीं देते थे या करते भी थे तो इतना बिगाड़ कर की उल्टा लेने के देने पड़ जाय। जितना समय काम करने में न लगे उससे अधिक संवारने में लग जाय। महिलाओं का तर्क था कि आज महिलाओं का बाहरी कार्य और व्यस्तता बढ़ रही है। अतः पुरुषों को अब अपनी सदियों पुरानी बेतुकी अकड़ को छोड़ कर घरेलू काम में महिलाओं की पूरी तरह मदद करनी चाहिए। पुरुष वर्ग आसानी से हार मानने वाला नहीं था। वे इमानदारी से अपनी क्षमता और समझ से घरेलू काम सम्भालने का दावा कर रहे थे। अंत में सबको अलग-अलग अपने-अपने अनुभवों और कार्यों को बताना तय हुआ। दो चार ने अपने कार्य गिनवाए। उनकी बीवियों ने भी हामी भरी और दोनों के सहयोग से घर के खुशनुमा माहौल को स्वीकारा।

कुछ की पत्नियां नौकरी वाली थीं। उनका कहना था कि हमारी तो गृहस्थ बगैर दोनों के बराबर सहयोग किए चल ही नहीं सकती है। उनकी पत्नियों ने भी सहमति जताई—''अब हमारी तो इसे मजबूरी कहो या जरूरत। दोनों को सुबह पाँच बजे से रात ग्यारह बजे तक दौड़ना ही पड़ता है। न करें तो बच्चे बर्बाद हो जाएँगे।''

पुरुषों में एक अति उदार या यूँ कहें पूरी तरह नर-नारी के दायित्व भेदों को मिटा चुके पति बोल पड़े—''मेरे घर में मर्दों की परम्परा केवल बाहरी कार्य सम्भालने की रही है। हमारे पिता, ताऊ, चाचाओं ने कभी घर में पानी

का गिलास भी भर कर नहीं पिया। पर मुझे अपनी बीवी को घर में बंद नहीं रखना था। सो मैंने उसे बाहरी काम सौंपे। जिन्हें वह खुशी-खुशी निभाती है। मैं भी अपने परिवार की पुरानी मान्यताओं को छोड़कर स्वयं खाना लेकर खा लेता हूँ और जरूरत पड़ने पर बच्चों को भी खिला देता हूँ।'' कुछ ने उनकी पत्नी की ओर देखा। उसने सहमति में सिर हिलाया और बोलीं–''हाँ जी यह तो सही है। ये छोटा मोटा काम करने में संकोच नहीं करते हैं। वरना इनकी पहली पीढ़ी के किस्से सुनकर तो घबराहट होती है।''

इस हौसला अफजाई से पति और उत्साहित हो गए। अब वे अपनी बात वहाँ उपस्थित हर शख्स तक पहुँचाना चाहते थे। उन्हें यह विश्वास हो गया था कि यहाँ उपस्थित पतियों में वे सबसे अधिक उदार पति हैं और उनकी बीवी सबसे खुशहाल पत्नी है। हो भी क्यों न? वे रत्तीभर भी कार्य को मान अपमान से नहीं जोड़ते हैं। उनका अहम जरा भी उन्हें उनके काम से विचलित नहीं करता है। इसी जोश में उन्होंने अपनी बात को पत्नी से मुखातिब होते हुए आगे बढ़ाया–''पुरानी पीढ़ी पर क्यों जाती हो? इसी पीढ़ी में देखो ना। भाई-साहब किस तरह दिन भर भाभी को दौड़ाते हैं। अपना काम निबटाया और बरामदे में बैठ गए। फिर दो तीन घंटे कोई किताब या पेपर पढ़ते हैं। किसी की मजाल नहीं कि उनसे उस समय रत्तीभर काम की कह सके। उल्टा उतने समय उन्हें वहीं बैठे चाय पानी सब चाहिए। जबकि मैं चाय बनाने, झूठे बर्तन उठाने तक से गुरेज नहीं करता हूँ।''

साथियों ने थोड़ी प्रशंसक नजरों से उन्हें देखा। महिला वर्ग से आवाज आई–''भाई साहब समय का यही तकाजा है। आप सही कर रहे हैं।'' इस सबसे वे इतने जोश में आ गए कि एक ऐसा वाक्य बोल दिया जो शायद घर से बाहर जाना उचित नहीं था। पत्नी की ओर इशारा करते हुए कह गए–''मैं तो इनके छोटे कपड़े धोने तक से परहेज नहीं करता हूँ।''

इस बात पर साथी कुछ व्यंग से मुस्कुराए और उनकी अर्धांग्नि जरा शर्मा गई पर महफिल हम उम्रों की थी। अतः सभी ने कुछ पल एक दूसरे की ओर देखा और फिर पूरा वातावरण जोरदार ठहाकों से गूंज गया। पर शत प्रतिशत सहमति, खुशी या सुख कहीं भी होना संभव नहीं हैं। यह इन्सानी समाज है। जब लगता है सब सहमत हैं तभी कोई न कोई अपनी असहमति दर्ज कराने आगे आ जाता है। इसी वृत्ति के चलते यहाँ भी एक असंतुष्ट ने खुशनुमा माहौल का रूख बदल दिया। शायद ये अपने पति की असमय, अनावश्यक, निरर्थक और

बेतुकी सेवाओं से त्रस्त थीं। बोल पड़ी—''भाई साहेब ये कैसी पत्नी सेवा है। सेवा ही करनी है तो बर्तन उठाकर रखने से क्या भला होगा? कभी पूरे चौके के बर्तन माँज कर भी देखो। खाना परसा खाया बस। कभी यह जानने की भी कोशिश करो कि उस खाने के बनाने में कितना पसीना बहाना पड़ता है? दिन के कितने घंटे बीवी को चौके में बिताने पड़ते हैं और उनके आंतरिक वस्त्र धोकर तो आपने जैसे पत्नी सेवा का झंडा ही गाड़ दिया है। भाई साहब मदद ही करनी है तो कभी डबल बैड के चादर और कंबल धोकर देखो या होली, दिवाली चार छः पर्दे ही धो लिया करो। बच्चों का फैलाया घर और बूढ़ों के पसारे कामों से निबटने का अंदाजा है आपको। मेहमानों का आना और जाना कितना काम छोड़ता है इस पर तो शायद आपने कभी सोचा भी नहीं होगा...।''

वे अपने आवेग में बोल रहीं थीं और पति महोदय की सारी पत्नी सेवाओं पर पानी फिर गया था। अभी तक की उनकी खुशहाल पत्नी पर लोग तरस खाने लगे थे।

दाम सूची

मीरा जिस छोटे कस्बे में जन्मी, पली, बढ़ी और पढ़ी शादी के बाद उसी कस्बे के दूसरे मौहल्ले में पति ज्ञानी के साथ गृहस्थ जीवन शुरू किया। ज्ञानी अपनी माँ की इकलौती संतान थे। जब तक माँ गाँव में घर जमीन की देखभाल करने में समर्थ थी वहाँ रही और बाद में बेटे के परिवार के साथ आकर रहने लगी।

समय के साथ मीरा और ज्ञानी की दो बेटियाँ हुई। नौकरी बहुत बड़ी नहीं थी। बस अपना घर बना लिया था इसीसे कुछ राहत थी। बड़ी बेटी पढ़ने में सामान्य रही। उसकी शादी पास ही के शहर में कर दी गई। छोटी बेटी पर ज्ञानी जी की उम्मीदें टिकी थीं। बेटी ने उन्हें पूरा भी किया और पढ़ाई पूरी कर एक मल्टीनेशनल कम्पनी में नौकरी पा ली। बस समस्या थी कि पहली नियुक्ति ही घर से काफी दूर हुई। इससे मीरा को छोटी बेटी का जाना बहुत खला। सास के स्वर्गवास ने उसे और अकेला कर दिया। घर में सदस्यों की घटी संख्या ने बाजार की खरीदारी और घरेलू काम को भी घटा दिया।

ज्ञानी की तरक्की हुई तो बाहर जाने के अवसर बढ़ गए। विगत सप्ताह जब वे अपनी छोटी बेटी से सरकारी काम से किसी बड़े शहर में जाने की चर्चा कर रहे थे तो बेटी ने जोर देकर कहा—''पापा मम्मी को भी साथ लेकर जाना। घर में वह अकेली क्या करेंगी और वे अभी कहीं दूर जगहों पर गई भी नहीं हैं। उनका खर्च मैं दूँगी।''

बात ज्ञानीजी को भी ठीक लगी। उन्होंने अपने साथ पत्नी का भी रिजर्वेशन करा लिया। नियत तिथि को पति-पत्नी दोनों बड़े शहर के एक बड़े होटल में जाकर ठहर गए।

मीरा पहली बार किसी बड़े होटल में ठहरी थी। छोटे कस्बे में रहने वाली और द्वितीय श्रेणी के सरकारी कर्मचारी की पत्नी के जीवन में ऐसे मौके बामुश्किल ही मिलते हैं। यह तो इत्तफाक ही था कि पति सरकारी काम से इस शहर में आ रहे थे जो धार्मिक दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है। इसीलिए बेटी के समझाने पर मीरा ने यहाँ आने का मन बनाया था। ज्ञानी जी तीन चार बजे तक सरकारी काम से निवृत्त हो जाते। फिर पत्नी को लेकर शहर घूमने निकल जाते। शहर साफ सुधरा और बड़े-बड़े मंदिरों वाला था। शाम के समय की वहाँ की भीड़, आरती और कीर्तन में मीरा का खूब मन रमा। जिन यात्राओं को वह निरर्थक और समय व पैसे की बर्बादी मानती थी वह उन्हें सार्थक लगने लगी। धार्मिक स्थलों पर भी इतना अनुशासन व सुरक्षा रखी जाती है इसका एहसास उन्हें यहीं आकर हुआ। इस पर मंदिरों की सफाई और अलंकरण तो देखते ही बनता था। यहाँ वह सहज महसूस करती थी। जबकि होटल का माहौल उसके लिए थोड़ा असहज था। यह एकदम अलग वातावरण था। पति मीरा को हर बात समझाते रहते-कैसे चलना है? किस तरह बोलना है? डायनिंग रूम में भोजन करने के तौर-तरीके क्या हैं? लिफ्ट आदि का प्रयोग कैसे करना है? वगैरहा-वगैरहा। मीरा हर बात को ध्यान से सुनते हुए वातावरण को समझने जाँचने की कोशिश कर रही थी। कभी-कभी अपनी जिज्ञासाओं को भी पूंछ रही थी।

दो दिन बाद मीरा रानी को कपड़ों की धुलाई और प्रेस की आवश्यकता महसूस होने लगी। वे साबुन तो घर से लेकर चली थी पर यहाँ बाल्टी और मग नहीं था। मीरा ने पति से कहा कि वे इन चीजों की व्यवस्था यहाँ कराने के लिए किसी से कहें। पति ने समझाया—''यहाँ कपड़े धोने की इजाजत नहीं है। धुलाई व प्रेस कराना पड़ता है।''

ज्ञानीजी ने अलमारी में रखा एक लाण्ड्री बैग पत्नी को दिखाते हुए उसी के साथ रखा एक पम्फलेट उनके हाथ में धमा दिया और समझाया—''इसमें हर कपड़े की धुलाई और प्रेस का रेट लिखा है। जो कपड़ा देना है बैग में रख दो और फोन कर बता दो क्या कराना है। कर्मचारी आकर ले जाएगा।'' थोड़ा रुक कर ज्ञानी जी फिर समझाने लगे—''हाँ और इस रेट लिस्ट को पहले ध्यान से पढ़ लो। बाद में पैसा देने में दिक्कत महसूस न हो।''

मीरा लाण्ड्री रेट लिस्ट को पहले धीरे-धीरे फिर थोड़ा ऊँची आवाज में पढ़ने लगी—''बनियान अण्डरवियर धुलाई सौ रुपए, शर्ट धुलाई प्रेस डेढ़ सौ रुपए,

साड़ी प्रेस डेढ़ सौ रुपए, कुर्ता पायजामा...।'' मीरा देवी एक साँस में पूरी लिस्ट पढ़ गई और फिर मुस्कुराते हुए पति को देखने लगी।

ज्ञानी जी बोले—''कुछ समझ में आया?''

''आया।''

''क्या?''

दो मिनट के मौन के बाद मीरा देवी ने कुछ वाक्य कहे—''क्यों लाखों का वेतन पाने वाले पति-पत्नी दोनों कमाते हुए भी एक फ्लैट के लिए जद्दोजहद कर रहे हैं और किस तरह एक चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी दुमंजला घर बनाकर एक मंजिल किराए पर उठा देता है।''

संवेदना

कहने को छुट्टी का दिन था पर भागवंती को घर में किसी की भी छुट्टी जैसी नजर नहीं आ रही थी। बच्चे नाश्ता कर दादी को बाय-बाय करते कोचिंग चले गए थे। बहू जल्दी-जल्दी चौका समेटते हुए वाशिंग मशीन भी लगाए थी। बेटा लैपटॉप पर आफिस का कुछ काम कर रहा था। बहू उसे काम जल्दी निबटा लेने को कह रही थी क्योंकि उन्हें कुछ ही देर में सप्ताह भर की खरीदारी के लिए निकलना था।

काशी प्रसाद एक माह पहले पत्नी भागवंती के साथ यहाँ आए थे। भागवंती को हर छुट्टी के दिन इंतजार रहता कि वह पूरे परिवार के साथ दिन भर हँसी खुशी अपने मन की बात करेगी। बच्चों को उनकी रुचि का कुछ बनाकर खिलाएगी और फिर बच्चों को लेकर सैर और बाजार को जाएगी। बच्चे जब छोटेपन में उसके पास जाते थे तो दिन भर फरमाइशें कर पकवान बनवाते थे और चाहे उसकी उंगली थाम कर बाहर घुमा लाने की जिद्द करते थे। तब उनकी पसंद के खिलौने, खाना और कपड़ा दिलवाने में उसे बड़ा आत्मिक सुख मिलता था। अब उनके पास आई है और उनके लिए यह सब न करे तो कष्ट की बात है। पर करे तो कैसे? बच्चे सुबह फास्ट फूड लेते हैं, दोपहर का खाना कोचिंग में ही होता है और शाम को बहू बाजार से कुछ न कुछ पैक करा लाती है। भागवंती के कहने पर कि वह घर में कुछ बना देगी बहू का कहना रहता है कि ''अब आप कब तक चौके में घुटती रहेंगी माँ जी। बाजार में सब कुछ मिलता है।''

चार पाँच छुट्टी के ऐसे ही दिन बीत जाने पर भागवंती का मन बहुत दुःखी हो गया। वे आहिस्ता से पति से बोली—''मेरे यहाँ आने का कोई सुख न हुआ।

न तो घर में कोई काम सम्भाल पाई और न बच्चों के मन का कुछ दिलवा सकी। उल्टा इनके लिए बोझ ही बन रही हूँ और मुझे भी समय काटना मुश्किल हो रहा है।'' काशी प्रसाद पत्नी के दुःख को समझते हुए बोले–''तुम्हें समय काटना मुश्किल क्यों है? बच्चे अपने काम में लगे हैं तुम भी अपने लिए कुछ सोच लो।''

''पर क्या?''

इस सवाल का कोई उपयुक्त जवाब काशी प्रसाद को न सूझा तो वे बात बदलते हुए बोले–''चलो हम तुम भी घूमने चलते हैं।''

''वे ही सब जगह हैं। बहुत बार पूरा शहर घूम लिया है।''

''हर जगह हर दिन कुछ न कुछ नया नजर आता है। चलोगी तो मन बहलाने का कुछ न कुछ दिख ही जाएगा।''

समय काटने का कोई और रास्ता न देखकर भागवंती ने हामी भर दी। दोनों तैयार हो गए। बेटा बहू उन्हें गाड़ी से घाट तक छोड़ गए। बेटे का कहना था–''जब घर लौटने की इच्छा हो फोन कर देना। मैं लेने आ जाऊँगा।''

घाट पर श्रद्धालु कम और सैर सपाटे वाले अधिक घूम रहे थे। घाट की गंदगी एवं वैचारिक सोच के बदलाव से लोगों का स्नान से मोहभंग हो रहा था। तमाम लोग स्नान की इच्छा होते हुए भी स्नान नहीं करते थे और बाकी तो ऐसा भाव ही नहीं रखते थे। कुल मिलाकर घाट पर ठण्डी हवा लेने वालों की संख्या अधिक थी। घाटों की दुर्दशा और लोगों की अश्रद्धा ने भागवंती के मन को दुःखी कर दिया। पर काशी प्रसाद और वह तो अभी पुरानी मान्यताओं से ही जुड़े थे। पवित्र नदी के घाट तक आकर बगैर स्नान किए लौट जाना उनके लिए बड़ा मुश्किल था। उन्होंने स्नान किया फिर मंदिर दर्शन और हल्के जलपान के बाद बाजार की ओर बढ़ गए।

कुछ वर्ष पहले भागवंती इस बाजार में घूमी थी। पर उसमें और आज में बहुत फर्क था। पटिया किनारे लगी दुकानों की जगह बड़े-बड़े शो रूमों ने ले ली थी। सड़क चौड़ी हो गई थी। वाहनों की संख्या कई गुना बढ़ गई थी। सड़क पार करने में चार बार सोचना पड़ता था। इस सबसे भी अधिक किशोरियों के अधूरे और बेतरतीब पहनावे भागवंती को असहज कर रहे थे। काशी प्रसाद के कहने पर कि वे चाहे तो बच्चों के लिए कुछ खरीद सकती है। भागवंती उनके साथ दो तीन कपड़े के शोरूम में गई। लेकिन उन्हें वह कपड़े की दुकान सी लगी ही नहीं। कुछ देर रुकी एक दो चीज का दाम देखा और फिर चुपचाप वहाँ से उतर आई। काउंटर पर बैठी युवतियों के फैशन और बेरूखी ने उन्हें शीघ्र ही यह अहसास करा दिया कि यह बाजार उनके लिए उपयुक्त नहीं है।

फिर इस उम्र में एक दुकान से दूसरी पर जाने के लिए आठ दस सीढ़ियाँ चढ़ना उतरना उनकी हिम्मत से बाहर था। साथ ही यहाँ का वातावरण उन्हें पसंद नहीं आ रहा था। वे बोली—''क्या अब इस शहर में पहले जैसे बाजार नहीं रहे। जहाँ सब दुकानें करीब-करीब हों। एक के बाद एक देखते चले जाओ। यहाँ तो लगता है जैसे अधूरा कपड़ा पहनने वालियों की कोई प्रतियोगिता चल रही है। आखिर ये लड़कियाँ इतना कम कपड़ा क्यों पहन रही हैं? क्या अब कपड़े इतने महंगे हो गए हैं जो आधे ही खरीदे जाएँ?''

काशी प्रसाद जोर से हँसे—''अब लम्बे समय बाद कहीं जाओगी तो ऐसा ही होगा। तुम करीब चार साल पहले यहाँ आई थीं। तब में और अब में बहुत परिवर्तन हुआ है। आज कल बाजार कुछ ही महीनों में अपनी शक्ल बदल लेते हैं। एक ने जहाँ तोड़-फोड़ कर दुकान को नया रूप दिया कि एक होड़ सी लग जाती है और रातों रात खुली दुकानें ए। सी। युक्त बड़े शो रूमों का रूप ले लेती हैं। अब वह समय नहीं रहा जब दुकानदार छोटी-छोटी दुकानों को ठसाठस भरकर रखते थे और उसका कई गुना सामान गट्ठर बंधा गोदामों में ठसा रहता था। अब कम सामान को बड़ी जगह में फैलाकर रखने का फैशन है। आओ, रेट पढ़ो, पसंद आया तो तुरंत पैक करा लो। अब न दुकानदार के पास इतना धैर्य है कि वह सुबह से शाम तक हर ग्राहक को तह की तह खोलकर दिखाता और लपेटता रहे न ही ग्राहक के पास समय है जो सौ चीजों की अल्टा पल्टी करें।''

''हाँ शायद कपड़े का अभाव ही है जो किशोरियों को आधे अधूरे सस्ते कपड़े पहनने पर मजबूर कर रहा है।''

काशी प्रसाद फिर हँस दिए—''ये सस्ते कपड़े नहीं हैं और न ही पहनने वालों के ख्याल में अधूरे। समय के साथ ऐसा ही फैशन चल निकला है। भाग दौड़ की जिंदगी में ये थोड़े सुविधाजनक हैं। दूसरे-बाजार में जो अधिक उपलब्ध है अधिकांश उसी का तो इस्तेमाल करेंगे।''

''वजह जो भी हो मुझे तो यह तर्क संगत नहीं लगता। न ही यहाँ से मेरी कुछ खरीदने की इच्छा है।''

''चलो छोटे बाजार में देख लेते हैं।''

इतना कहकर काशी प्रसाद ने एक आटो रिक्शा रोका और दोनों बैठकर एक पुरानी बस्ती की ओर चल पड़े।

यहाँ का बाजार थोड़ा भागवंती के अनुकूल था। उन्होंने एक दो घरेलू सामान और कुछ बच्चों का खेल का सामान खरीदा। कपड़ों की खरीदारी

का उनका मन यहाँ भी नहीं हुआ। एक तो बच्चों का सही नाप उनके पास नहीं था। दूसरे आधुनिक कपड़ों के डिजाइन उनकी समझ से बाहर थे। भले ही बच्चे छोटे थे पर डिजाइन तो उनके भी किशारों जैसे ही थे। जो भागवंती को बिल्कुल नहीं भा रहे थे। हलाँकि बच्चे प्रतिदिन करीब ऐसे ही कपड़े पहन कर निकलते थे परन्तु अभी तक भागवंती का उस तरफ ख्याल न गया था। आज युवा होती लड़कियों को ये बचकाने कपड़े पहनकर घूमते देखा तो उन्हें ये अधूरे वस्त्र पूरे नारी समाज का अपमान सा लगने लगे। उन्होंने मन बनाया कि वह आज ही जाकर बहू को समझाएँगी कि लड़की के अब तक जो कपड़े खरीद लिए सो ठीक है आगे से ध्यान से खरीदे। दो तीन साल में लड़की बड़ी हो जाय तो ऐसे कपड़े कतई ना पहनाए। संख्या भले ही कुछ कम थी। पर भागवंती की नजर में यहाँ भी बेढंगे कपड़े पहने किशोरियाँ घूम रहीं थीं। भागवंती उन्हें देखती तो कुछ न कुछ कहती। काशी प्रसाद बार-बार उन्हें समझाने और उनका ध्यान दूसरी ओर लगाने का प्रयास करते। जब तक भागवंती कुछ और विचारती फिर अगला कोई वैसा ही दृश्य सामने आ जाता और वे दुःखी हो जाती। भागवंती के दुःख का कारण मात्र किशोरियों के वस्त्र ही नहीं थे वरन उनका किशोरों के साथ घूमने चलने बात करने का ढंग सब कुछ नारी की शालीनता के प्रतिकूल था और उनकी नजर से नारी की शालीनता ही उसकी खूबसूरती का सबसे बड़ा आधार होती है। यदि सलीके से कपड़ा ना पहना हो तो खूबसूरत से खूबसूरत स्त्री भी अनाकर्षक ही लगती है। वे समझ नहीं पा रही थीं कि आखिर इन किशोरियों और युवतियों के माता-पिता उन्हें यह क्यों नहीं समझा रहे हैं। काशी प्रसाद ने भागवंती का ध्यान पुरानी बिल्डिंगों को तोड़ कर नए ढंग से बन रहे घरों की ओर मोड़ने का प्रयास किया और धीरे से समझाया कि अब हमारे से दो पीढ़ी अगली जवान हो चुकी हैं। इनकी जरूरतें जैसी हैं इन्हें वैसा रहने दो। तुम्हें इसमें अधिक उलझने की जरूरत नहीं हैं। फिर किशोरों को ही दोष क्यो देना जब प्रौढ़ भी वैसा पहन रहे हैं। भागवंती ने देखा वास्तव में कुछ चालीस पार कर चुकी महिलाएँ भी अत्याधुनिक वस्त्रों में घूम रहीं थी। अभी तक उनका इस ओर ध्यान नहीं गया था। कुछ घंटे घूमने के बाद वे एक पार्क में जाकर बैठ गए।

शाम के चार बज चुके थे। कुछ ही देर में यहाँ भी अविवाहित युवा जोड़े आने शुरू हो गए। धीरे-धीरे उनकी संख्या बढ़ने लगी। भागवंती को उनके लिबास और तौर तरीके बर्दाश्त करना मुश्किल हो गया। वे बोली—''ये

आजकल के जवान किसी लायक न रहे। न इनमें कोई लिहाज है न ही किसी के प्रति दया धर्म। पता नहीं कौन सी पढ़ाई पढ़ रहे हैं। जब खान-पान और विचार ही ठीक न रहा तो पहनावा तो बिगड़ ही जाएगा। अब हमें यहाँ से चलना चाहिए।''

''कहाँ चला जाय? घर या घूमने?'' काशी प्रसाद ने प्रश्न किया।

''सीधे घर।'' भागवंती बोली।

वे थक चुकी थीं और वातावरण से भी ऊब गई थी। इसीसे अब घर लौटने की जरूरत महसूस हो रही थी। बुढ़ापे की यही समस्या है। जी दस तरह की चीजें खाने को मचलता है और पेट बर्दाश्त नहीं करता। घर में मन लगना मुश्किल होता है। हर दिन घूमने की इच्छा होती है और टाँगे जवाब दे जाती हैं। भागवंती और काशी प्रसाद धीरे-धीरे बस स्टॉप की ओर बढ़ चले।

बसों में भीड़ बढ़ गई थी। बस के आते ही लोग दौड़ते थे। इतनी भीड़ में चढ़ना उन दोनों के लिए मुश्किल था। वे कम भीड़ वाली बस के आने का इंतजार करते काफी देर तक खड़े रहे। भागवंती ने कहा–''बेटे को फोन करो। गाड़ी लेकर आ जाय।'' काशी प्रसाद ने प्रतिकार किया–''हमें घर में कौन बहुत काम है। कुछ देर से भी गए तो क्या फर्क पड़ता है। वह अकारण अपना काम छोड़कर आएगा। कुछ देर इंतजार करो भीड़ कम हो जाएगी।'' तीन चार बस निकलने के बाद बस स्टॉप पर भीड़ कुछ कम हो गई। बस आई दोनों उसमें सवार हुए। परन्तु यह पीछे से ही इतनी भरी थी कि खड़ा होना मुश्किल हो रहा था। एक सीट पर ढाई सवारी थी। भागवंती ने कुछ उम्मीद से उधर देखा। परन्तु उस दम्पत्ति ने खिड़की के बाहर देखना शुरू कर दिया। एक सीट पर अति दुबले तीन दोस्त बैठे गपशप कर रहे थे। भागवंती ने उनसे थोड़ी जगह देने को कहा। पर उनका सपाट जवाब था–''आण्टी हमें लैपटॉप पर कुछ काम करना है। दिक्कत होगी।''

अतिनिराशा की स्थिति में भागवंती ने सीट पर बैठे दो अधेड़ों से खुशामद भरे लहजे में कहा–''आप लोग थोड़ी जगह बना लीजिए। खड़ा होना मुश्किल हो रहा है।'' उन्होंने बेरुखी से कहा–''यहाँ जगह है ही कहाँ?'' इतना कहकर वे और पसर कर बैठ गए। पत्नी की स्थिति को समझते हुए काशी प्रसाद ने उन्हें थोड़ा सहारा देते हुए समझाया–''थोड़ी ही देर की बात है। अगले स्टेशन से भीड़ छटनी शुरू हो जाएगी।''

भागवंती मौन किसी तरह खुद को साधने की कोशिश करते हुए खड़ी रही। बस झटके से रुकती या सड़क में गढ्ढा आता तो वह गिरते-गिरते बचती और

फिर सम्भल कर खड़े होने की कोशिश करती। यह जद्दोजहद चल ही रही थी कि एक पूर्णरूप से आधुनिक वेश-भूषा पर शालीनता से लैस एक किशोरी अपनी सीट छोड़ कर खड़ी हो गई। उसने भागवंती का हाथ पकड़ कर अपनी सीट पर बैठ जाने का इशारा किया। भागवंती बैठ गई। कुछ देर बाद भागवंती संभली उसने किशोरी की ओर कृतज्ञता भरी निगाहों से देखा। उन्हें यहाँ दिन भर की दीखी किशोरियाँ एक नए रूप में नजर आई। मन का क्लेष और घर कर गई धारणा धीरे-धीरे छटने लगी। भागवंती के मुँह से अनायास ही उस किशोरी के लिए ढेरों आशीर्वाद निकलने लगे और वह किशोरी मुस्कुराते हुए अपनी पीठ पर लदे भारी बैग को सम्भाल कर मजबूती से खड़ी हो गई।